

कृति–संग्रह

अमिताभ वर्मा



कृति–संग्रह

अमिताभ वर्मा

प्रकाशक
प्रिंटमॅक्स ग्राफ़िक्स
ग्राउंड फ़्लोर, 277, 6 क्रॉस, दोमलूर लेआउट
बंगलोर 560071

संस्करण: 2011

मुद्रक
नॅशनल प्रिंटिंग प्रेस
580, के आर गार्डन, कोरमंगला
बंगलोर 560095

कृति–क्रम

निवेदन

'कृति–संग्रह' आपके समक्ष है। इसमें कुछ ख़ास नहीं है। ख़ास, भला, हो भी क्या सकता है? अगर कुछ ख़ास ही लिख पाता, तो साहित्यकार न बन जाता? इंजीनियर बन कर निष्प्राण मशीनों में क्यों उलझा रहता? लेकिन आपके स्नेह और सुसंस्कार का भी जवाब नहीं, जो दूसरे–ही वाक्य में चेतावनी मिलने के बावजूद पढ़े जा रहे हैं!

बचपन में डैडी हम तीनों भाई–बहनों को सामने बिठा कर अपनी रचनाओं की प्रतिलिपियों की प्रूफ़ रीडिंग करते। टाइप किए कागज़ों का एक पुलिंदा डैडी के हाथ में होता, और एक–एक हमारे हाथों में। डैडी बताते जाते कि कहाँ कॉमा छूटा है, कहाँ पूर्ण विराम, और हम तीनों बड़ी लगन के साथ अपने–अपने पुलिंदे सुधारते जाते। कभी–कभी घर में साहित्य मंडली जमती। गरमागरम चाय–पकौड़ों के बीच कवितापाठ होता, कहानियाँ पढ़ी जातीं, और बड़ी वाहवाही लूटी जाती। मुझे इन सब में बड़ा मज़ा आता।

घर में पुस्तकों–पत्रिकाओं का अंबार था। फिर, शायद ही कोई ऐसा महीना गुज़रता हो, जब डैडी की कहानी किसी–न–किसी पत्रिका में न छपे। स्कूल का काम पल भर में निपटा कर मैं जुट जाता पुस्तक–पत्रिका पारायण में। तीन–चार साल का होते–न–होते मैंने पहली कविता लिख मारी। आग में घी का काम किया डैडी–मम्मी के उत्साहवर्द्धन ने। बस, उल्टा–सीधा जैसा समझ में आया, कागज़ काले करता चला गया।

इन काले कागज़ों का वज़न अब पसेरी भर हो चुका है। कुछ बकवास कॉपियों में है, कुछ अख़बारों–मैगज़ीनों के हाशियों पर, कुछ कागज़ के जीर्ण–शीर्ण टुकड़ों पर। रानी ने बड़े प्यार के साथ कई वर्षों से सँजोया है इन्हें। इन्हीं पसेरी भर कागज़ों से निकला छँटाक भर अर्क है, 'कृति–संग्रह'।

इन कृतियों में से जो रेडियो पर प्रसारित हो चुकी हैं, उनमें रेडियो प्रसारण की मर्यादा और मजबूरी झलकती है। ऐसी रचनाओं के शीर्षक के आगे * जोड़ा गया है।

यह संग्रह बिकाऊ नहीं है। हर चीज़ बिकाऊ होनी भी नहीं चाहिए!

11 जून, 2011 — अमिताभ वर्मा

10, सौंदर्य गार्डेनिया
13, एच एम टी मेन रोड
बंगलोर 560013

सच और सपना

कुछ सपने सच हो जाते हैं
कुछ सच सपने–से लगते हैं।

जब राह नई मिल जाए तो
मिलते हैं साथी नए–नए
कुछ मिल कर भी न मिलते हैं
कुछ न मिल कर भी मिलते हैं।

कुछ होंठ नहीं कुछ कह पाते
बस आँखें ही मिल पाती हैं
यूँ कह कर भी सारी बातें
अनकही सदा रह जाती हैं।

यादों की धूप चमकने पर
साए पड़ जाते हैं गहरे
सायों में साए हैं छुपते
कुछ छुप कर भी न छुपते हैं।

आख़िर वक़्त गुज़रता है
यादें पड़ जाती हैं धुँधली
कुछ यादें बस दुःख देती हैं
कुछ दुःख में सुख दे जाती हैं।

चौराहे का भगवान

चौराहे पर नज़र घुमाई कल, तो देखा
इक कोने में सहमा–सा भगवान खड़ा था!

इक मुद्दत के बाद मिले थे, डर लगता था
भगवान समझ कर उसे ठगा न जाऊँ
एक अज़ीज़ ने जैसे पिछली बार ठगा था!

मैंने हाथ बढ़ाया – हाथ मिलाने को
गले लगाना उसको उचित नहीं लगता था
उसने दो पैकेट मेरी ओर बढ़ाए
बोला, पूजा की सामग्री है
बाज़ार में मँहगी मिलती है
पर सस्ते में दूँगा, क्योंकि मुझको
अपनी बिटिया की शादी करनी है।

मँहगी चीज़ को सस्ता बेचोगे?
क्या पाओगे, क्या खाओगे?
बिटिया की शादी कैसे कर पाओगे?

कितने सुख से थे तुम उस सुंदर मंदिर में
ख़ूब चढ़ावे आते थे
ख़ूब भजन सुन पाते थे
कपड़े, ज़ेवर, छप्पन व्यंजन
जो चाहो कर पाते थे
क्या अब तुमने मंदिर का घर छोड़ दिया है?

कभी किन्हीं काली आँखों के सपनों में दिख जाते हो

कभी किसी बच्चे के नन्हे हाथों में छुप जाते हो
शबनम के इक कतरे में दीखे थे तुम मुझको उस दिन
तो आज नमी में आँसू की बरबस तुम घुल जाते हो।

क्यों जाऊँ मंदिर मैं तुमको शीश नवाने को
तुम मुझको हर माँ के आँचल में दिख जाते हो।

काश, तुम्हें कुछ दे पाता

काश, तुम्हें कुछ दे पाता!

कुछ ख़ास नहीं, कुछ नया नहीं, पर कुछ ऐसा
जिसे सामने पाकर तुम ख़ुश हो जातीं
आँखों–ही–आँखों में तुम मुस्कातीं
मेरी तरफ़ ज़रा झुकतीं
और तुम्हारे अधरों से शायद
इक चुंबन–सा उड़ कर
मेरे अधरों पर सहसा बिछ जाता।
काश, तुम्हें कुछ दे पाता!

वैसे तो देखो, तुमको
क्या कुछ नहीं दिया है
अमृतपान किया जब मैंने
तब तुमको ज़हर मिला है
कितनी सूनी शामें दी हैं, कितनी सूनी रातें
इन सुंदर आँखों को दी हैं कितनी ही बरसातें
दर्द तुम्हारा अगर समझ मैं पाता
काश, तुम्हें कुछ दे पाता!

जो चाहे मानव हो वैसा
कहाँ ये हो पाता है
सुख देने की कोशिश में
दुःख गहरा जाता है
दुःख और सुख की इस उलझन में
मन और भटक जाता है
दुःख हरना और सुख देना, ये बस में जो हो जाता!

काश, तुम्हें कुछ दे पाता!

आह एक जो दिल में दबी पड़ी है
टीस एक जो अब तक कहीं छुपी है
कुछ आँसू जो पलकों पर ही सूख गए हैं
मीत जो मुझसे जीवनभर को रूठ गए हैं
और भला है क्या इस सुख के सागर में
इस सागर की मदिरा पीता
मैं अक्सर पछताता!
काश, तुम्हें कुछ दे पाता!

ख़्वाब की हक़ीक़त

एक दरख़्त पर फँसी टँगी थी एक पतंग
बड़ी उम्मीद से एक बच्चा उसे निहार रहा था।
कब गिरे पतंग, आ जाए मेरे हाथों में!

ज़रा–सी हवा उसका दिल दहलाती थी
शाखें पतंग के और क़रीब आ जाती थीं
– ओह! कहीं फट न जाए।
कोई चिड़िया उस पर चोंच न मारे
कोई उससे घोंसला न बना डाले
– मेरी पतंग रहे सलामत हज़ारों साल।

बच्चा तो आख़िर बच्चा था
उकता गया, थक भी गया शायद
चला गया!

न जाने क्या हुआ पतंग को
टँगी रही, फट गई
या मिली किसी किस्मतवाले को!

एक ख़्वाब घर बनाए है पलकों पर
कई दिनों से मन भरमाता है
अब तो दिल में भी उतर चुका है।

होली

होली फिर आने वाली है।

पिछली होली पर तुमने पकवान बनाए थे
उदास पलकों पर स्वप्न सजाए थे
मुझ पर रंग डाला था
दिल को संभाला था
ढाँढस दी थी
– पिछली होली पर कुछ ख़ास नहीं किया था न
शायद इसीलिए बेकार गया साल!
उम्मीदें टूट गईं
और उम्मीदों के साथ–साथ
हम दोनों भी टूट गए
इस बार झूठी ही सही, ख़ुशी मनाएँगे
तो साल शायद ख़ुशी से गुज़रे!

बच्चों जैसी बात थी!
ख़ुशियाँ क्या, अब तो
रिश्ते भी सूख चले।

उससे पहले, दीवाली पर तुमने सोचा
ख़ाली हाथ न जाएँ, कुछ ले कर जाना ठीक है
और हुआ कुछ ऐसा
कि हाथ अब तक ख़ाली हैं, आँचल अब तक है तार–तार!

होली फिर आने वाली है
एक बार फिर हम बचपना करेंगे!

जीवन की हाला

मनुष्य क्या है, इक प्याला है
छलकती जिसमें जीवन की हाला है।

काल बारी–बारी से हमें पीता है
जबतक जाने की बारी न आए
हर कोई जीता है!

न जाने क्या–क्या मसाले हैं उसके पास
जो वह महज स्वाद के लिए मिलाता है
थोड़ी–थोड़ी पीता है
थोड़ा मुस्कुराता है।

जो उसके लिए मसाले हैं
वो हमारे लिए कई अर्थ पाले हैं
कोई दुःख है, कोई सुख
हमने उन्हें और भी कई नाम दे डाले हैं।

कैसी विडंबना है!
हर प्याला ख़ाली होने पर
बाक़ी प्याले पछताते हैं
पर एक दिन ख़ुद ख़ाली हो जाते हैं।

नए प्याले आते हैं
फिर भरती है उनमें हाला
शुरू हो जाता है एक नया दौर
जिसे हम नई पीढ़ी कह दुलराते हैं!

अब ऐसी ही सुबह होगी *

नन्हे–नन्हे कन्धों पर जब
काम का बोझ न होगा
प्यास से फटते होंठ और
जब भूख का बोध न होगा
दिनरात थकान से टूटे दिल,
हिम्मत, और जान न होंगी
ऐ दोस्त बता कर जा मुझको
कब ऐसी सुबह होगी?

छोटे–छोटे डग इक दिन
स्कूल की ओर भरेंगे
प्यास बुझेगी, भूख मिटेगी
ग़म के गर्द छटेंगे
हम सब अपनी उम्र जिएँ
घर–घर में कलह न होगी
ऐ दोस्त, अगर तू ठान ले तो
अब ऐसी–ही सुबह होगी!

दुःख–मुक्ति

मैं जब रोया, समझा सबने
क्रंदन को मेरे मुस्काना
मन तक पहुँच सका न कोई
दर्द रह गया अनजाना।

सबने अपनी परिभाषा दी
बाँधी दुःख की सीमाएँ
जो दुःख है निस्सीम साथ में
उसे नहीं पर पहचाना।

कितनी मुश्किल, पर है कितनी
इस दुःख से मुक्ति आसान
ज्यों ढलता सूरज, बढ़ती छाया
हो जाता है दिन का अवसान।

विदाई

कई दिनों से पलकें भारी–सी हैं
कई दिनों से इक लाचारी–सी है।

कितने ख़्वाब दफ़न कर डाले क्या बतलाएँ
मायूसी को हमसे यारी–सी है।

अंतिम साथी को कर डाला रुख़सत हमने
साँसों में अब बस तनहाई–सी है।

क्या जाएँ महफ़िल में उनकी जश्न मनाने
दुनिया ने क्या कम रुसवाई दी है।

तो क्या होता?

ख़ुशियाँ बाज़ार में बिकतीं भी तो क्या होता?
ख़ुशियाँ गुलशन में खिलतीं भी तो क्या होता?
मैं उन्हें छू भी न पाता, मैं उन्हें देख भी न पाता
खुशियाँ मेरे पहलू से गुज़रतीं भी तो क्या होता?

मेरे दु:ख पर आँसू बहाने वाले मैं हैराँ हूँ
कि मेरे दु:ख पर तो लोग हँसा करते हैं!

दर्द की करवट

आज फिर दर्द ने करवट ली है।

जैसे किसी पर्दानशीन नाज़ुक–सी
हसीना ने पल में घबरा कर
अपनी नक़ाब ख़ुद–ही अब पलट दी है
आज फिर दर्द ने करवट ली है।

ज्यों झिलमिला रहा हो कोई चिराग़
साहिल से खेलती हो या पानी की धार
या आसमान के हँसी वो तारे हों
निगाहों में उनकी उस तरह की बदली है
आज फिर दर्द ने करवट ली है।

होंठ हैं कि काँप–काँप जाते हैं
पंखुरी हवा में ज्यों अकेली है
जिस्म बल खा रहा है कुछ ऐसे
जैसे कि शाख–ए–चमेली है
आज फिर दर्द ने करवट ली है।

गर कहीं आफ़ताब छुप जाए
और आसमाँ पे बदली घिर आए
या यकायक ही शाम हो जाए
चेहरे ने उनके वैसी ही रंगत ली है
आज फिर दर्द ने करवट ली है।

साँझ की लाली

साँझ की लाली में क्यों
हर ज़ख़्म हरा दिखता है
बेहद ग़मगीन–सा अब क्यों
हर ओर समाँ लगता है?

तू तो मत पूछ सितमगर
क्यों हाल बना है ऐसा
तूने ही दर्द दिया और
तुझको ही बुरा लगता है?

वो आग लगाई तूने
शोख़ी है जिसमें तुझ–सी
गर इधर बुझाएँ शोले
तो धुआँ उधर उठता है।

पर शुक्र मना ऐ हमदम
जो मिले तो बस हम तुझसे
वरना अब इस दुनिया में
हम जैसा कहाँ मिलता है!

चाहत–सी बात

कोई शाम यकायक बड़ी उदास–सी लगती है
जब तेरे तस्सवुर में मैं खो जाता हूँ
रोशनी गुल कर, आँखों को मींच कर
तनहाई में खो जाता हूँ।

बंद आँखों में रोशनी नहीं आती
कोई चेहरा फिर भी उभरा आता है
जैसे वो रोशनी की हद से बाहर हो
जैसे फ़रिश्ता अँधेरे में चला आता है।

भूलने की कोशिशें नाकाम हुई जाती हैं
सोग में डूबी हर शाम हुई जाती है
तुझको चाहा तो नहीं, पर ऐ ख़ुदा
ये चाहत–सी बात क्यों हुई जाती है?

क्यों रोता है मन

यह दीपक किसके पथ में जलता है
कौन यहाँ आहें भरता है
किसे ढूँढ कर रोता है मन
जब चाँद बादलों में छुपता है?

यूँ तो बस एक झलक थी
चूड़ी की एक खनक थी
हो गया मगर मन चंचल
उफ़् कितनी अजब तड़प थी!

वह हुस्न फ़िज़ाँ में बिखरा
तो सारा आलम महका
वो पलक ज़रा–सी काँपी
प्याला मदिरा का छलका।

मिल नहीं सकेंगे तुम–हम
ये बात जानता है मन
फिर क्यों आहें भरता है
फिर क्यों रोता है ये मन?

कवि की व्यथा

एक बार इक कवि गए इक कवि सम्मेलन में
सूट–बूट में, हैट लगा कर, बनठन कर के
बनठन कर के गए, मगर थी किस्मत खोटी
भूल गए थे कवि बाँधना कमर पे पेटी।

बिन पेटी पतलून खिसकती जब भी नीचे
उसे खींचते ऊपर कविवर हो कर खीझे
थे खीझे–से कवि, तभी इक श्रोता चीखा
इस ऐक्शन के साथ गीत लगता है रूखा।

लगता गीत है रूखा, कविवर! बस भी करिए
या तो करिए बंद गीत, या पतलून न धरिए
मत धरिए पतलून, कि लगता नहीं है अच्छा
करता नहीं ठिठोली, हूँ मैं वचन का सच्चा।

बोले कवि ये माना है तू वचन का सच्चा
व्यथा मगर थोड़ी सुन मेरी भी, ओ बच्चा
बंद करूँगा गीत तो पैसा नहीं मिलेगा
आने जाने का बिल भी तब कौन भरेगा?

और अगर पतलून छोड़ दी मैंने अपनी
तो फिर सबको और भी अच्छा नहीं लगेगा
नहीं लगेगा अच्छा, पड़ेगा जेल में सोना
क्योंकि है अपराध भीड़ में नंगा होना।

एगो बात कहीं?

पुः एगो बात कहीं
मः बतलाव
पुः एगो बात कहीं
मः हाँ बोल
पुः एगो बात कहीं
मः बतलाव
पुः एगो बात कहीं
मः हाँ बाबा, बोल ना

पुः चेहरा तोहार कतरीना से नीक बाटे
बोली तोहार अलका यागनिक से मीठ बाटे
हिम्मत तोहार किरन बेदी से तीख बाटे
बस एके कमी बाटे बुद्धि के, एगो बात कहीं

मः एगो बात कहीं
पुः बतलाव
मः एगो बात कहीं
पुः हाँ बोल

मः सपना के दुनिया से धरती पे आव
कसरत कर, तनी बॉडी बनाव
कालेज में जा एडमिशन कराव
अबकी लटकिह न फेल हो के, एगो बात कहीं

पुः एगो बात कहीं
मः बतलाव
पुः एगो बात कहीं

म:	हाँ बोल

पु:	कालेज में हमरा सिक्का चलेला
	बाडी से हम्मर सिपहियो डरेला
	हमरे आगे लड़िकन पानी भरेला
	भैलू समझ हमरी बुड़बक रे, एगो बात कहीं

म:	एगो बात कहीं
पु:	बतलाव
म:	एगो बात कहीं
पु:	हाँ बोल

म:	भैंसा के आगे का बीन बजाईं
	तोतवा बा बूढ़ा, कतना पढ़ाईं
	कुआँ के मेंढ़क के का समझाईं
	फूटल हमार त किस्मत रे, एगो बात कहीं

पु:	एगो बात कहीं
म:	ना, चुप रह
पु:	एगो बात कहीं
म:	कहलीं ना, चुप रह
पु:	एगो बात कहीं
म:	चुप
पु:	एगो बात कहीं
म:	खामोस! बिलकुल खामोस!

जाना *

दिन की पेशानी पर रात की ज़ुल्फ़ें गहराने को हैं। शाम कुछ ही घंटों में ओढ़ लेगी रात की चादर। आइए, ऐसे में चुराएँ चंद लम्हे, बैठें एक दूसरे के करीब, और करें थोड़ी गुफ़्तगू। कहीं यह पल यूँ ही न गुज़र जाए!

(गीत 1)

ज़िंदगी की दहलीज़ पर हौले–हौले पग भरता कोई दाखिल हुआ। दीवानगी ने बुन डाला अरमानों का तानाबाना। वह बन गया ज़िंदगी का सबब। और एक दिन लम्बे–लम्बे डग भरता चला गया कहीं। भला ऐसे भी कोई जाता है?

(गीत 2)

वो गया – रूह में ग़म का रंग और दिल में धुँए का गुबार छोड़ कर। ज़िंदगी कितना कुछ सिखा देती है। अश्कों के सैलाब को जज़्ब करना, मायूसियों, नाकामियों को हमसफ़र बनाना। बस, इस दिल को भी समझा दे कि इसकी ज़ुबान समझने वाला अब चला गया।

(गीत 3)

जाने वाले की हर बात याद आती है, और हर याद नश्तर–सा चुभो देती है कलेजे में। वो सुर्ख़ आँखें, लबों पर वह फीकी–सी मुस्कान, वह दूर होते डगमगाते कदम, विदाई में वह धीरे–धीरे हिलता हुआ हाथ। उसका वह आख़िरी सलाम अंदर तक उतर गया ज़ेहन में।

(गीत 4)

एक तरफ़ रूमानियत है तो दूसरी तरफ़ हक़ीक़त। एक ओर मुहब्बत है तो दूसरी तरफ़ ऐशो–आराम। दिलों का प्यार सोने–चाँदी में तुला, मुहब्बत रुसवा हुई, और हो गईं बेकार सारी आहें, सारे आँसू। हर मुलाक़ात का अंजाम जुदाई है, एक और तैयारी है कहीं और निकल जाने की।

(गीत 5)

वह तैयार है जाने को। अब चला, तब चला। मुहब्बत का इज़हार और रुक जाने का इसरार, सब बेअसर हैं उस संगदिल पर। यह तरसती आँखें किसी सूने दरवाज़े पर टिकी रह जाएँ, उससे तो बेहतर यही होगा कि वक़्त ही ठहर जाए। अगर ज़्यादा देर के लिए नहीं, तो कुछ लम्हों के लिए ही सही! मैं भी तो साथ हो लूँ।

(गीत 6)

ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है। यह तो आप पर है कि दिल में धुँआ रख कर जिएँ या हर फ़िक्र को उड़ा दें धुँए में। बरबादियों का जश्न मनाएँ तो ख़ुशी के फूलों से दिल की बगिया महक उठेगी।

सच है दोस्तो! खोजने वाले सुरमई अँधेरे में भी चंपई उजाला ढूँढ निकालते हैं। ऐसे शख़्स होते बहुत कम हैं, और अगर मिल जाएँ तो उन्हें छोड़ कर कहीं जाने का दिल नहीं करता। वह हमारी सूनी राह के हमसफ़र जो बन जाते हैं।

(गीत 7)

वक़्त की चादर को थामने की कोशिश तो बहुत की, पर वह फिसल ही गई, थमी नहीं, और आ गया वक़्तेरुख़सत। उम्मीद है आज के ये नग़मे आप के दिल के तारों को झनझना ही नहीं गए होंगे, शायद आपके दिल से बेसाख़्ता ये सदा भी निकल पड़ी होगी ,,,

(गीत 8)

रात *

ज़िंदगी का सूनापन काटने को आया, तो एक रात माँग ली! टूटे ख़्वाबों की किर्च बटोरी, इस उम्मीद में, कि झूठे ही सही, सपने सच हो जाएँगे। वह ख़ुशी, जो सिर्फ़ सुनी थी, देखने को मिल जाएगी। रात आई भी, गुज़र भी गई। हाथ आई स्याही। ख़्वाबों की ख़ाक की स्याही।

(गीत 1)

वह अच्छा लगता था। फिर प्यारा लगने लगा। उसे देख कर पहली बार माँग का सूनापन खला। पलकें झुकाईं, तो सिंदूरी सपने नज़र आए। जब वह करीब आया तो यक़ीन नहीं हुआ। इस रात के साथी तो तारे हुआ करते थे। यह चाँद कहाँ से निकल आया?

(गीत 2)

रात गहराने से पहलें आँखें गहराईं। गुलाबी डोरे उभर आए। आँसू के एक कतरे ने चुगली खाई। लबों के कोने थरथराए। ललाट पर बेतरतीब बालों को सँवारा। पर ख़ुद को कैसे सँभालते? रात के अँधेरे ने सहारा दिया, तकिये ने सुकून। सिसकियाँ लेते–दबाते रात गुज़र गई।

(गीत 3)

उम्र के धागे में बड़े करीने से मोती पिरोए। एक–एक मोती एक–एक साल के बराबर। आज धीरे से गिरह खोली, तो ये मोती कितनी कहानियाँ कहते मिले। सात सौ तीस रातें और दिन भला कम होते हैं? ख़ास कर तब, जब हर दिन और हर रात अपने सीने में न जाने कितने अफ़साने सँजोए हो।

(गीत 4)

बड़े ख़ुशनसीब होते हैं वो, जो ख़्वाब नहीं देखते। उन्हें ख़्वाबों के टूटने का ख़ौफ़ जो नहीं होता। ग़रीबों की मिल्कियत ख़्वाब ही तो होते हैं, जिन्हें वे अपने दिल की अन्दरूनी तहों में पोशीदा रखते हैं। इसलिए, ख़्वाब तनहा नहीं टूटते। हर ख़्वाब की टूटन दिल का एक कोना भी तोड़ दिया करती है। अंदर–ही–अंदर जज़्ब हुए आँसुओं में डूबते–उथलाते ख़्वाब दिल की गहराइयों में दम तोड़ देते हैं।

(गीत 5)

दिन सादे कैनवस की मानिंद होता है। उसका अपना कोई रंग जो नहीं होता। जिस रंग में चाहो, रंग डालो। रात की कहानी जुदा है। हर रात एक नए रंग, एक नई फ़ितरत के साथ नुमायाँ होती है। विसाले यार, हिज्र, उम्मीद, मासूसी, शोखी, सादगी – रात सबको अपने रंग में रंग डालती है।

(गीत 6)

वैसे यह बात तो है कि इंतज़ार की घड़ियाँ चाहे कितनी भी लम्बी क्यों न हों, अगर ये इंतज़ार विसाले यार का है, तो रात की शोखी में यह दर्द भी मीठा लगने लगता है। ऐसे में अगर अरमान तड़पते भी हैं, तो क्या?

(गीत 7)

रात अगर उनकी बाहों में गुज़रे तो इच्छा होती है, सहर हो ही नहीं। हम यूँ ही बैठे रहें जोगन बने, और थमी रहे वक्त की सूई। कुछ रातें इतनी जल्दी गुज़रती हैं कि पता ही नहीं चलता – कब रात चुपके से शाम के पहलू में आकर लेटी और कब भोर की लाली ने उसकी ज़ुल्फ़ें सँवार दीं। हमें न शाम दीखी न सहर, उनकी निगाहों का जादू ही कुछ ऐसा था। अगर गुलाब की वह पंखुड़ी न चुभती तो हम यूँ ही खोए रहते सुरूर में, रस में भीगे–भीगे।

(गीत 8)

याद *

शीर्षक संगीत की महफ़िल सजी है फिर एक बार, और एक बार फिर हाज़िर हैं हम दिलकश नग़मों की सौगात ले कर। पिछले सप्ताह शुरू हुआ ईद की मुबारकबाद का सिलसिला अभी थमने भी न पाया, कि आने वाले हफ़्ते के क्रिसमस कैरल्स की धुन अभी से गूँजने लगी है। जश्न के माहौल में, आइए, शाम की इब्तिदा ऐसे गीत से करें जिससे ख़ुशियाँ छलकी पड़ रही हैं। देर है तो बस, दामन पसार कर ख़ुशियाँ बटोर लेने की।

(गीत 1)

दरख़्तों के साए गहराएँ, पंछी बसेरों को लौटें, वादी में धुँआ–सा फैल जाए, तो समझिए, उजाला बस घड़ी–दो–घड़ी का मेहमान है। सहरा हो या समंदर, रात हौले से सितारे टँकी चादर सब पर यूँ उढ़ा देगी, जैसे बचपन में माँ उढ़ाया करती थी। शफ़्फ़ाक उजाले और स्याह अँधेरे के बीच बिखर उठेगा सिंदूरी रंग, कस्तूरी की सुगंध जैसा, दो दिलों की मीठी धड़कन की गवाही के साथ।

(गीत 2)

उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो, न जाने किस गली में ज़िंदगी की शाम हो जाए। यादों के शीशे पर बरसों से जमी गर्द पोंछी, तो न जाने क्या–क्या नज़र आ गया। वे लोग, जो साथ खेले, बढ़े, मगर हमेशा के लिए अजनबी हो गए। और वह, जो इस जन्म में पराया था, पर जन्मों का साथी लगता था। दिल चुपके–चुपके उस पराए का दर्द सँजोने लगा। वह नज़र नहीं आता, पर यहीं है। उसकी छुअन अब भी महसूस होती है।

(गीत 3)

कितनी अजीब शै है ख़ुशी! न मिले, तो दिल किसी ऐसे को ढूँढता है जिसके साथ ग़म बाँट लिया जाए। ग़म बाँट कर ख़ुशियाँ तलाशना भी तो एक शगल है। अगर आपका हमदर्द इस वक़्त आपके पास नहीं है, तो मायूस मत होइए। आँखें मूँदिए, दिल पर हाथ रखिए, और देखिए, वह आज भी क़रीब है दिल के।

(गीत 4)

वक़्त की रफ़्तार और शहरों की दूरियाँ उन्हें जुदा नहीं कर पातीं जो दिल में घर बसा लेते हैं। आँखों में उनका अक्स क़ैद रहता है, दिल में उनकी ख़ुश्बू। वो दूर हो कर भी दूर नहीं होते। हाँ, दूरी का अहसास कभी–कभी एक टीस, एक चुभन बन कर तड़पा ज़रूर जाता है। काश! कुछ ऐसा हो जाता, कि वो न आते, तो उनकी याद भी न आती। शाम बेवा की माँग की तरह सूनी ही रह जाती।

(गीत 5)

वह दूर सही, पर मेरा है। सिर्फ़ मेरा। कितना हसीन है यह ख़याल और कितने ख़ुशनसीब हैं वो जो यक़ीनी तौर पर ऐसा दावा कर सकें। कहीं ऐसा न हो, जिसे हम अपना समझते रहें, वह खरामा–खरामा इतनी दूर निकल जाए कि उसके किसी और का नूर बन जाने तक हमें अहसास ही न हो पाए। रूह की कसक, दिल के दर्द, छलकती आँख और कँपकँपाते लबों की गवाही से उसे मुबारक़बाद देनी पड़े।

(गीत 6)

याद का चाँद दिल में झाँकने को था कि मायूसी की चादर ने उसे ढाँप दिया। आँखों ने बरसात की। दिमाग़ ने फटकार सुनाई। अच्छे कारीगर हो! ख़ुद ही सपनों के महल बनाते हो और ख़ुद ही फिसल कर लहूलुहान हो जाते हो? दिल ने दाग़ छुपाने की नाकाम कोशिश की। एक सिसकी ने बग़ावत की। वो जा चुका है। घर से, शहर से, ज़िंदगी से। और तीनों ही जैसे साथ ले गया है। अब क्या बचा? कुछ भी तो नहीं।

(गीत 7)

हर किसी ने साथ छोड़ा, तो रात भला कब तक साथ निभाती? वह भी रुख़सत माँग रही है। रात के अँधियारे में सकपकाए साए चुपके से अलग हो चुके हैं, हमें तनहा छोड़ कर। वक़्त नन्हे–नन्हे कदमों से नपे तुले डग भरता निकल चुका है। अब तो उसके कदमों के निशान भी धुँधला गए हैं।

(गीत 8)

ख़त *

संगीत की इस शाम का सलाम उन ग़मज़दा लोगों के नाम जिनके प्रिय उन्हें छोड़ गए। छोड़ना! कितना कठोर है न ये शब्द? चंद दिनों के लिए या उम्र भर के लिए, छोड़ने वाले की मजबूरी में या मंजूरी से, पर जो छूटता है, उसका तो बहुत कुछ छूट जाता है। जाने वाले की यादें, तस्वीरें, दिल पर मरहम नहीं लगातीं – नश्तर सा चला देती हैं। बड़ी शिद्दत से चाह हो जाती है उसके पैग़ाम, संदेश, पाती, चिट्ठी, पत्र या ख़त की। ऐसी चुभन आपने भी महसूस की है और हमारे फ़िल्मी नग़मानिगारों ने भी। उन्होंने इस चुभन को हमेशा जवान गीतों, ग़जलों में ढाल दिया। आइए, आज लुत्फ़ उठाएँ चंद ऐसे ही नग़मों का इस प्यार भरे सलाम के साथ।

(गीत 1)

पैग़ाम पढ़ लिया और ख़त को हिफ़ाज़त से रख दिया। कहीं कोई और न पढ़ ले। चिट्ठी की यही तो ख़ासियत है। जब चाहें, जहाँ चाहें, जैसे चाहें – पढ़ लें। काश, भाग्य भी ऐसे ही पढ़ा जा सकता, तो हमारे दु:ख कम न हो जाते!

(गीत 2)

अब, ये कतई ज़रूरी नहीं कि चिट्ठियाँ सिर्फ़ विरह में लिखी जाएँ, दर्द से सराबोर रहें, उदासी भरे पैग़ाम लाने ले जाने में ही इस्तेमाल हों। आप में कई ऐसे भी होंगे जिन्होंने कुछ ख़ास क़िस्म की चिट्ठियाँ लिखी होंगी। ऐसी चिट्ठियाँ जिनमें दीवानगी में कोई अपने दिल का हाल बयाँ कर दे कुछ इस तरह कि पढ़ने वाले का चेहरा शर्म से सुर्ख़ हो जाए। अरे! आपके होठों पर तो मुस्कान अभी से थिरक उठी। ज़रा इनकी बंदगी तो कुबूल फ़रमाइए!

(गीत 3)

कई श्रोता नाराज़ हो जाते हैं। कहते हैं कि हमने आपको चिट्ठी लिखी पर आपने पढ़ी नहीं, रद्दी की टोकरी में फेंक दी! आप जैसे प्यारे श्रोता की चिट्ठी का ऐसा हश्र तो कोई संगदिल ही कर सकता है। वैसे जब आपने इतने प्यार से ख़त लिखा, तो उसे भेजने में भी थोड़ा प्यार दिखाया होता। नहीं, डाकिये पर नहीं, क़बूतर पर! आपकी चिट्ठी हमें ज़रूर मिल जाती।

(गीत 4)

क़बूतर को हौले से पकड़ा उन्होंने और यह निकाला आपका महकता हुआ ख़त उस गुलाबी लिफ़ाफ़े से। लेकिन उस ख़त में आपने यह और क्या भेजा है? बिलकुल कोमल, निर्मल, किसी फूल सा मनमोहक?

(गीत 5)

ख़त, उसमें संजोया दिल, और दिल में छुपा प्यार, सब उन्हें मिल गया। देखिए, चाँद नज़रों में मुस्कुराया है, मेरे ख़त का जवाब आया है। चंदा की यह शोख़ मुस्कान – कहीं इसने वह प्यार भरी पाती चुपके से पढ़ तो नहीं डाली? आख़िर यही तो लाया था इस पाती को।

(गीत 6)

कुछ चिट्ठियाँ प्रेमियों के संदेश ले जाती हैं तो कुछ ज्ञान का भंडार होती हैं। जैसे पंडित नेहरू की वो चिट्ठियाँ जो उन्होंने अपनी बेटी इंदू को लिखी थीं। लेकिन कुछ चिट्ठियाँ ऐसी भी होती हैं जो आती ही नहीं, लिखी ही नहीं जातीं। बरसों बीत जाते हैं। बिटिया बाबुल से मनुहार कर बैठती है। मेरा मन यहाँ ससुराल में नहीं लगता। इतनी छोटी सी थी जब तुमने मेरे हाथ पीले कर दिए, मुझे दूर भेज दिया। इतनी याद आती है तुम्हारी, पर तुमने तो इतने सालों में एक चिट्ठी तक न लिखी। अच्छा! चिट्ठी नहीं लिखी, न सही, भैया को तो भेज दो एक बार! आए और आ कर मुझे ले जाए।

(गीत 7)

अरे अरे, आप तो इमोशनल हो गए। वैसे, दिल पर हाथ रख कर एक बात सच–सच बताइए। टेलीफ़ोन, ई मेल और एस एम एस के बीच भी चिट्ठी का एक अलग अस्तित्व है न? उनके हाथों के लिखे ख़त में सिर्फ़ अल्फ़ाज़ ही नहीं होते, हज़ारों रंग भी होते हैं। रंग, जो कभी फूल बन कर महक उठते हैं तो कभी सितारे बन कर चमक उठते हैं।

(गीत 8)

सुपर मार्केट

आज सुबह–सुबह दीनानाथजी आए। पूछा, "सुपर मार्केट चलोगे?"

मैं झटपट तैयार हो गया। दीनानाथजी के साथ जाने में मैं कभी ना–नुकुर नहीं करता। वे दूसरों को मूँड़ कर ख़ुद भी चाय–नाश्ता करते हैं, और मुझे भी कराते हैं। ईश्वर उनकी इस कला को और निखारे।

रास्ते में मैंने पूछा, "क्या काम है?"

वे बोले, "अरे भाई, वर खरीदने जा रहा हूँ।"

मैं जानता हूँ कि उन्होंने अपनी लड़की को पहले ही एक दूकान के शो रूम में सजवा दिया है। मैंने पूछा, "हतभागिन का क्या हाल है?"

वे बोले, "अरे यार, बड़ी दिक्कत है। दुकान वाला रोज़ आधा घंटा डिस्प्ले का पचास हज़ार रुपया मासिक ले रहा है।"

मैंने कहा, "कोई बात नहीं! आज नहीं तो कल किसी–न–किसी को आपकी जेब माफ़िक आ ही जाएगी।"

सुपर मार्केट पास आ रहा था। दुकानदारों की चिल्लपों सुनाई पड़ने लगी थी। मैंने देखा, एक बूढ़ा आदमी एक वर के गले में रस्सी डाल कर ला रहा था। वर चारों तरफ़ ताकता–झाँकता बूढ़े के पीछे–पीछे चल रहा था। तभी एक सज्जन ने वर को एक भारी थैली दिखाई। वर के पिता ने जल्दी–से रस्सी तोड़ी, और अपने बेटे को लिए–दिए दौड़ पड़ा थैली वाले सज्जन की ओर।

हाथ की रस्सी को मुर्दा साँप जैसी बेजान लटकी देख बूढ़ा विलाप करने लगा। वर का पिता उसे सींग मारने दौड़ा। बूढ़ा सहम कर पीछे हटा, और वर के पिता को घूँसा दिखाते हुए गालियाँ देने लगा। लोग जमावड़ा लगा कर बूढ़े की कथा का आनंद लेने लगे।

अब तक हम लोग एक दुकान में घुस चुके थे। दुकानदार हमें देखकर लड़कों को झाड़ने–पोंछने लगा। लड़कों के बाप पीछे लगे सोफ़ों पर तन कर बैठ गए। दीनानाथजी ने एक लड़के के पिता से कुछ पूछना

चाहा, पर उसने गुर्रा कर डपट दिया, "पहले दुकानदार से सेटल कीजिए।"

दीनानाथजी थोड़ा झेंप–से गए। संभलते हुए उन्होंने एक लड़के की ओर इशारा करते हुए पूछा, "कैसे किलो दिए?"

दुकानदार बोला, "लाख रूपए किलो!"

दीनानाथजी चौंके। बोले, "रेट बड़ा हाई कर रखा है आपने! आख़िर इस लड़के में है ही क्या?"

दुकानदार बोला, "नए–नए लगते हैं, तभी ऐसी बात कर रहे हैं। अजी साहब, ये तो आई टी इंजीनियर हैं इसलिए भाव कुछ कम हैं। उनको देखिए, उनका भाव तो और भी ज़्यादा है। पॉलिटीशियन के सुपुत्र जो हैं!"

दीनानाथजी मैदान जल्दी छोड़ कर भागने वालों में से नहीं। पूछ ही बैठे, "अच्छा! बाक़ी के रेट क्या जा रहे हैं?"

दुकानदार बोला, "वो इनकमटैक्स ऑफ़ीसर है, उसका रेट है एक पचहत्तर। अजी साहब, लड़की करोड़ों में खेलेगी! वो है बैंक में। उसका रेट है अस्सी हज़ार। और वो ...." कहते–कहते दुकानदार रुक गया। "साहब, आपको कौन–सा रेंज सूट करेगा, बता दीजिए। अपने यहाँ तो दस लाख से लेकर पचास हज़ार तक का माल है।"

"दस लाख रुपए किलो!" दीनानाथजी के नेत्र विस्फारित हो गए। लक्ष्मी उपासक दुकानदार उत्साह में दीनानाथजी की भंगिमा से अधिक ध्यान उनके शब्दों पर दे बैठा। उसने नौकर को झटपट ठंडा पेय लाने की आज्ञा दे डाली। मैं मन–ही–मन प्रसन्न हो रहा था कि दीनानाथजी पूछ बैठे, "पचास हज़ार से नीचे नहीं है क्या?"

दुकानदार ने दीनानाथजी को जैसी नज़रों से देखा, मेरे विचार में प्राचीन राजा अपने प्रतिद्वंद्वी का मस्तक मर्दन करने से पहले उसे कुछ वैसी ही नज़रों से देखते होंगे। वह चीख उठा, "रामरतन! ठंडे का ऑर्डर कैंसिल! और हाँ, इन लोगों को बाहर का रास्ता दिखा दो।"

इससे पहले कि रामरतन हमें रास्ता दिखाता, हम खुद ही सड़क पर खिसक आए। मैंने दीनानाथजी को देखा, उन्होंने मुझे। वह खिसियानी हँसी हँसते हुए बोले, "ऐसा तो होता ही रहता है!"

एक खोमचे वाले ने दीनानाथजी की कोहनी हिलाते हुए उनका ध्यान आकृष्ट किया, "साहब! आपके लायक माल तो यहाँ रखा है!"

डूबते को मानो तिनके का सहारा मिल गया। खोमचे पर बहुत सारे मरियल पुरुष बैठे थे। कुछेक ऊँघ रहे थे। एक बत्तीसी साफ़ कर रहा था। इन पुरुषों के पिता सड़क पर बैठे थे।

दीनानाथजी ने एक लड़के का भाव पूछा। खोमचेवाला बोला, “पचहत्तर हज़ार रुपए किलो!”

दीनानाथजी भूखे शेर की तरह भड़क उठे। “लूट मची है क्या? जो मुँह में आया वही बोल दोगे? पचहत्तर हज़ार रुपए किलो! हुँह!”

खोमचेवाला धिधियाया, “अजी साहब, ये भी इनकमटैक्स डिपार्टमेंट में ही काम करते हैं। बस, उम्र थोड़ी बीस है। आपकी लड़की को बच्चे भी नहीं पैदा करने पड़ेंगे – दो बच्चे पहले से ही हैं इनके। रेट तो लाख रुपए है, पर आपको खानदानी रईस समझ कर खुद ही कम कर के बता रहा हूँ।”

लेकिन फिर भी, भाव आसमान पर है तुम्हारे यहाँ”, दीनानाथजी नर्म पड़ते हुए बोले।

“साहब, हर चीज़ का दाम आसमान छू रहा है। अब अगर आप जैसे रईसों से भी दो पैसे नहीं मिलेंगे, तो हम ग़रीबों का गुज़ारा कैसे चलेगा? हें हें हें . . . अच्छा, ये लड़का कैसा लगता है?”

‘लड़के’ ने खड़ा होने के लिए मित्र का सहारा लिया, और खाँसने लगा। हाँलाकि मैं डॉक्टर नहीं हूँ, पर उस ‘लड़के’ को देखते ही मुझे पक्का पता लग गया कि मानव शरीर में कितनी हड्डियाँ होती हैं, और उनका आकार कैसा होता है। पर ताज़ा–ताज़ा रईस की उपाधि से अलंकृत दीनानाथजी का ध्यान कहीं और था। उन्होंने पूछा, “ये कैसे किलो है?”

“दस हज़ार रुपए किलो!” खोमचेवाले ने कहा।

मैंने अंदाज़ लगाया, ‘लड़का’ पैंतीस किलो से ज़्यादा नहीं था। मैं दीनानाथजी को सौदा ख़रा करने की सलाह देने ही वाला था, कि उन्होंने मेरा हाथ दबाया।

“भाई, एक हज़ार रुपए देना हो तो दो, वरना हम चलते हैं।”

“क्या कहते हैं बाबूजी, इतनी तो लागत भी नहीं है। आठ हज़ार में ले लीजिए।”

“कह दिया न! एक हज़ार में देना हो तो दो।”

ख़ैर! बात किसी तरह पाँच हज़ार पर तय हुई। दीनानाथजी हतभागिन को शो रूम से वापस बुला लाए।

एक दिन देखा, दीनानाथजी एक लड़के के साथ कहीं जा रहे थे। पूछने पर पता चला कि लड़का उनका पुत्र है और वे सुपर मार्केट जा रहे हैं।

बोले, “लड़का अच्छा तैयार हुआ है। लाख से कम में नहीं बेचूँगा।”

मैंने देखा, दीनानाथजी के सर पर सींग उग आए थे।

श्वान पुराण

कई दशकों से मैं कुत्तों के संपर्क में हूँ। या, यूँ कहें, कुत्ते मेरे संपर्क में हैं। मैं कुत्तों की रग–रग से वाक़िफ़ हूँ, कुत्ते मेरी रग–रग पहचानते हैं।

घर में श्वान महोदय का पदार्पण बड़ी आवभगत के साथ होता है। स्थिति कुछ वैसी ही होती है, जैसी तब उत्पन्न होती है जब आप अपने बिलकुल नए पड़ोसी या सहकारी से मिलते हैं।

आप उसे सीधी, और कुछ हद तक कड़ी निगाहों से देखते हैं, कुछ वैसे ही जैसे थानेदार संदिग्ध को देखता है। उधर, वह बेचारा चौपाया अपने में सिमटने की चेष्टा करता, गोल–गोल, भूरी–भूरी आँखों से आपको नापता है। आप उसे भाँपने की चेष्टा कर रहे हैं, वह आपको भाँप रहा है। दोनों तरफ़ आग बराबर लगी हुई है।

कुत्तों का नामकरण संस्कार बड़ा रोमांचकारी होता है। वैसे, इसके कुछ विधान हैं। कुत्ता अगर देहाती नस्ल का, काला, मोटा हुआ, तो इस बात की गारंटी नब्बे प्रतिशत है कि उसका नाम रखा जाएगा 'मोती'। लेकिन अगर वही कुत्ता सफ़ेद रंग का हुआ, तो उसका नाम 'टॉमी' रखा जाने की संभावना बलवती हो जाती है। अगर कुत्ता अलसेशियन या किसी समकक्ष उच्च जाति का हुआ, तो उसका नाम रखने से पहले उसके मालिक अपने समस्त ज्ञान की समीक्षा करेंगे, मोटे–मोटे ग्रंथ पलटेंगे, और फिर कुत्ते का नाम विश्व की किसी महान हस्ती, किसी मँहगी शराब या परफ़्यूम, या किसी कलाकृति के नाम पर रख देंगे।

सबसे ज़्यादा सुरीले नाम रखे जाते हैं उस प्रकार के कुत्तों के, जो देखने में बड़े नाज़ुक, और उससे भी ज़्यादा नाज़ुक मिज़ाज होते हैं। ऐसे कुत्तों को देख कर अक्सर बिल्ली का भ्रम हो जाता है। किंतु यह भ्रम निर्मूल है। ऐसे कुत्ते शक्ति परीक्षण में विश्वास नहीं रखते, जबकि इन्हें देखते ही बिल्ली पंजे झाड़ कर इनके पीछे पड़ जाती है।

कुत्तों को टहलाना किसी चुनौती से कम नहीं। कभी–कभी तो पता ही नहीं चलता कि आदमी कुत्ते को टहला रहा है या कुत्ता आदमी को। कुत्ते को टहलाने का अनुभव उसकी जाति पर निर्भर करता है।

यदि आपका कुत्ता देहाती है, तो उसे बाहर ले जाने से पहले आप अपने स्वास्थ्य पर अगर पैनी नज़र डाल लें, तो बेहतर होगा। ऐसे कुत्तों में 'ओवर टाइम' करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे, किसी कुत्ते को देख कर इस कदर झपटना कि आपकी बाँह में मोच आ जाय।

कुत्ता–मिलाप सद्भावना से भी होता है। आपका कुत्ता दूसरे कुत्ते से कुछ ऐसी बात कहता है, जिसे आप समझ नहीं पाते, सिर्फ़ अंदाज़ लगाते हैं। श्वानवार्ता कुछ देर शांतिमय रहती है। फिर भारत–पाक सम्बन्ध की तरह उसमें खटास आ जाती है। आपका दुलारा कुत्ते पर ग्रेट खली की तरह कूदता है। कुत्ता च्याऊँ–च्याऊँ करता भागता है। दृश्य कुछ इस प्रकार का है – सबसे आगे पिटता हुआ कुत्ता जान पंजे पर ले कर भाग रहा है। उससे क़रीब एक ग़ज़ पीछे आपका टॉमी या मोती चौकड़ी भर रहा है। सबसे पीछे "नो, नो" का चीत्कार करते आप घिसट रहे हैं। मार्ग पर राहगीर रुक कर बेटिकट तमाशा देख रहे हैं। गाएँ घबरा कर दौड़ने की कोशिश कर रही हैं। विकट परिस्थिति है! रुकते हैं, तो कुत्ता भागता है और मुहल्ले के कुत्तादल से पिट भी सकता है। घिसटना जारी रखते हैं, तो आपकी इज़्ज़त मटियामेट होती है। ख़ैर! किसी तरह युद्ध समाप्त होता है और आप वापस आते हैं मुहल्ले को बातचीत का नया मसाला दे कर।

इसके विपरीत, कुत्ता यदि किसी नाजुक नस्ल का हुआ, तो आपको सदा चाक–चौबंद रहना चाहिए। संभव है कि वह मार्ग में किसी छुछूंदर से इतना घबरा जाए कि उसके दिल की धड़कन दोगुनी–चौगुनी हो जाए।

अगर आपके घर कुत्ता है, तो सारा घर कुत्तामय हो उठता है। आपके शरीर से आपकी नहीं, आपके कुत्ते की महक आती है। दूसरे कुत्ते आपको वैसे ही, और उन्हीं स्थानों पर सूँघने लगते हैं जहाँ अमूमन एक कुत्ता दूसरे कुत्ते को सूँघता है। महिलाओं और पुरुषों की बजाय आप कुत्ते–कुत्तियों का आर्कषण केन्द्र बन जाते हैं।

कई लोग गाली देते हुए कहते हैं, "साला! कुत्ता!" ऐसी गाली कुत्ताकुल से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की उनकी दबी मनोकामना उजागर करती है। कुत्ते का ख़ून डेलीकेसी होता है। करोड़ों कमाने वाले फ़िल्म कलाकार अक्सर चिंघाड़ते सुनाई देते हैं, "कुत्ते! मैं तेरा ख़ून पी जाऊँगा।"

एक कुत्ता शो में देखा, एक बाला और उसका कुत्ता बारी–बारी से एक ही आइसक्रीमबार चाट रहे थे। कुत्ते के साथ सोनेवाले तो कई मिल जाएँगे। टिपटॉप महिलाएँ कुत्तों से मुँह चटवाने में गुरेज नहीं करतीं। देखने वाले मर्द छटपटाते रह जाते हैं।

भाई, इसमें छटपटाने जैसी क्या बात है? याद रखो, रॉकेट पर आदमी से पहले कुत्ता चढ़ा था। तुम भी कुत्ता बनो, तुम्हारे भी वारे–न्यारे हो जाएँगे!

हाय हसन! हम न हुए!

आज सुबह–सुबह दीनानाथजी मिल गए। आजकल वे कवि हो गए हैं। कुछ दिन पहले तक वे और कविता दो ध्रुवों की तरह थे। किन्तु अब जब दीनानाथजी कवि हो ही गए हैं, तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। मेरा जाता भी क्या है? नुकसान तो बेचारी कविता का होगा!

दीनानाथजी के कंधों पर उनके श्यामल कुंतल लहरा रहे थे। अपूर्व दृश्य था। याद आया, "रूपसि तेरा घन केश पाश!" दीनानाथजी रूपसि तो हो ही नहीं सकते, रूपसा भी नहीं हैं, पर कवि हृदय का क्या भरोसा? हो सकता है, कल कूड़े के ढेर को चाँद की उपमा दे डालें दीनानाथजी। यहाँ सब संभव है। मैं तो हर समय हर परिस्थिति के लिए तैयार रहता हूँ।

दीनानाथजी मुझे देख कर मुस्कुराए। पीकप्लावित मुँह ऊपर की ओर किया, और बोले, "एक कविता लिखी है। सुनोगे तो फड़क उठोगे।"

मैं जानता हूं, फड़कूँ या नहीं, कविता तो सुननी ही पड़ेगी। जब ओखली में सर दे ही दिया, तो मूसलों की भला क्या परवाह?

मैंने कहा, "सुनाइए!"

"सुनो!" रेक्सीन के फटे बैग से उन्होंने एक मुड़ा–तुड़ा काग़ज़ निकाला, और बैग ज़मीन पर रख दिया। ऐसा वे हमेशा करते हैं। वे दाएँ हाथ में कागज़ पकड़ते हैं और बायाँ हाथ हिला–हिला कर कविता सुनाते हैं। मेरा ध्यान उनकी कविता से ज़्यादा उनके हाथ पर रहता है। इसके दो फ़ायदे हैं। सुरक्षा पर आँच नहीं आती, और कविता सुनने की सारी पीड़ा हाथ की प्रक्रिया देख कर दूर हो जाती है।

अहा! कैसे–कैसे कोड हैं उस अद्भुत हस्तलहरी के! हाथ कभी दाईं से बाईं ओर जाता है, कभी बाईं से दाईं ओर, कभी ऊपर से नीचे, और कभी रेल के पहिए की मानिंद तीव्र गति से गोल–गोल घूमता है। मैं तो उसके घूमने का विस्तार और गति देख कर ही मुग्ध हो जाता हूँ।

मैंने भी कई बार चेष्टा की, कि अपना बायाँ हाथ–भी उसी वेग से घुमाऊँ जैसे दीनानाथजी घुमाते हैं, पर कभी सफल न हो सका। बाएँ

से दाएँ और दाएँ से बाएँ तो घूम जाता है, पर पहिए की तरह नहीं घूम पाता कमबख़्त!

मेरा सर अपनी असमर्थता पर शर्म से झुक जाता है। एक दीनानाथजी हैं जो हर किसी को जैसे चाहें घुमा लेते हैं, और एक अभागा मैं हूँ जो खुद अपना हाथ भी नहीं घुमा पाता। और, हाथ घुमाना ही क्यों, मुझे इसी तरह के और भी कई व्यावहारिक काम नहीं आते।

मेरे विचार में ऐसे व्यावहारिक काम करने की क्षमता ईश्वर हर ऐरे–गैरे को नहीं देते। जिसे देते हैं, ठोंक–बजा कर देते हैं। मैंने कई होनहारों को मुँह में उँगलियाँ डाल कर सीटी बजाते देखा है। अहा! कैसी सुरीली ध्वनि निकलती है। मैंने भी तीन महीना रियाज़ किया, पर उँगलियाँ जब भी मुँह में डालीं, हर बार उबकाई ही बाहर आई, सीटी कभी नहीं। आजतक नहीं सीख सका।

बहरहाल, इस समय मेरे सामने दीनानाथजी खड़े थे। वे दोहरी योग्यता के धनी हैं। सीटी भी बजा लेते हैं और कविता भी कर लेते हैं। उनका भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है जबकि मेरा अंधकारमय है। वे भी इस बात को जानते हैं और मैं भी।

मुझे देख कर वे मुस्कुराए, खाँस कर गला साफ़ किया, और बोले – "कविता कुछ यूँ है. . . मैं उल्लू हूँ. . ."

"वाह वाह! क्या बात कही है दीनानाथजी आपने। सत्य कहने का इतना ईमानदार प्रयास। आपने तो असंभव को संभव बना डाला है।" मैंने पहली पंक्ति पर ही तारीफ़ के पुल बाँध दिए।

वे गद्‌गद्‌ हुए। लाड़ में डपटते हुए बोले, "आगे तो सुनो! हाँ, तो

"मैं उल्लू हूँ,
"ऐ ज़माने!
"तू है उल्लू का पट्ठा।
"तू है दुबला–पतला,
"मैं हूँ हट्टा कट्टा।"

"वाह वाह दीनानाथजी! आपने तो बम ही फोड़ दिया! आपकी कविता आपके व्यक्तित्व का छुपा पक्ष उजागर कर गई। किस ख़ूबसूरती से हाथ घुमाते हुए कह दिया आपने, उल्लू का पट्ठा! मज़ा आ गया। आपकी उन्नति में मुझे रत्ती भर भी संदेह नहीं।"

"है न!" दीनानाथजी की आँखें ख़ुशी से चमक उठीं। वे बोले, "ऐसी ही बीस–पच्चीस कविताएँ और लिख डालूँगा। फिर कविता संग्रह छपवा लूँगा। दस–बारह बड़े–बड़े समीक्षकों से समीक्षा करवा डालूँगा।"

मैं जानता हूँ दीनानाथजी क्या–क्या करेंगे। उन्हें कुछ भी समझाने की ज़रूरत नहीं। वे दुनिया को समझाने में समर्थ हैं।

बीस–पच्चीस रोज़ गए दीनानाथजी का कविता–संग्रह छप गया। उन्हें दो–तीन समितियों से पुरस्कार भी मिला। मैं सोच ही रहा था कि दीनानाथजी को बधाई दे डालूँ, कि आज फिर दीनानाथजी से सामना हो गया। मुझे देख कर मुस्कुराए, बोले, "कहो, क्या चल रहा है?"

मैंने कहा, "बस! चल रहा है किसी तरह। आपकी सफलता के लिए बधाई!"

"अरे भाई, सो तो ठीक है। आज तुमसे आख़िरी बार मिलने आया हूँ। कल सुबह के प्लेन से मुंबई जा रहा हूँ।"

"मुंबई? किसी फ़िल्म कम्पनी का चक्कर तो नहीं? होशियार रहिएगा।"

"हाँ भाई, सोचता हूँ फ़िल्मों को नई दिशा दे डालूँ। बड़ी सशक्त माध्यम हैं जनमानस तक पहुँचने की।"

दीनानाथजी की सफलता असंदिग्ध है, मैंने सोचा। फ़िल्मों को क्या, वे हर किसी को नई दिशा दे सकते हैं। कितने महान हैं वे। मैं अपनी लघुता और दीनानाथजी की गुरुता की बात सोच कर हीनभावना से ग्रस्त होने जा ही रहा था कि एक ख़याल कौंधा। मैने हाथ जोड़े और भाव–विह्वल स्वर में बोला, "दीनानाथजी! मुझे भूलिएगा मत।"

दीनानाथजी ने मेरे कंधे थपथपाए, मुस्कुराए, और बोले, "बिलकुल, बिलकुल! यह भी कोई कहने वाली बात है?" और वे व्यस्त कदमों से चल दिए।

मैं गद्‌गद् भाव से उन्हें जाता हुआ देखता रहा।

विचित्र जगतम्

हे सखि! आज रविवार का दिन और हमारे भारतीय होने के कारण चलो, 'एडल्ट्स ओनली' सिनेमा देखने चलें; क्योंकि उचित समय होने पर मेंढ़क टर्राने लगते हैं, मयूर नाचने लगते हैं, और बादल गरजने लगते हैं।

||1||

रविवार को बॉक्स ऑफ़िस से टिकट की आशा करने वाला और हॉल से मायूस लौट जाने वाला – दोनों ही मूर्ख कहलाने के योग्य हैं, क्योंकि ब्लैक में टिकट उसी प्रकार उपलब्ध रहते हैं जैसे भिखारी के पास पाँच सौ रुपए का छुट्टा सदा मौजूद रहता है।

||2||

सिनेमा हॉल में तुम्हारे चारों ओर धक्कमपेल होना स्वाभाविक है। चीटियाँ गुड़ में ही लगती हैं, आम के अचार में नहीं।

||3||

वह देखो, कुछ बालक दृष्टि बचा कर हॉल में घुसने की चेष्टा कर रहे हैं। उचित ही है, क्योंकि तीव्र प्रकाश ही पतिंगों को आकृष्ट करता है।

||4||

अयि सखि! यदि तुमने छुप कर ज़मीन पर गिरा एक रुपए का नोट उठा लिया, तो इसमें लज्जा कैसी? क्या नेता या अफ़सर प्रलय होने पर भी अपना स्वभाव त्याग सकते हैं?

||5||

वह देखो! हिन्दी फ़िल्म की नामावली अंग्रेज़ी में उसी प्रकार चमक रही है जिस प्रकार बादलों के मध्य भी सूर्य का तेज अक्षुण्ण रहता है।

||6||

यद्यपि मोटी मूँछों वाला यह विलन अभी सीधा–सादा दिखता है, किन्तु कालान्तर में यह बुरे कार्यों की ओर उसी तरह प्रवृत्त होगा जैसे अफ़सर पुराना होते ही घूसखोरी की ओर प्रवृत्त होता है।

||7||

ग्रामीण होने के बावजूद हीरोइन का मिनी स्कर्ट पहनना उचित है। सियारों के साथ पला सिंहशावक दहाड़ना नहीं भूलता।

||8||

हीरो का विदेशी धुन पर हिन्दी गीत गाना चमत्कारिक रूप से नई सृष्टि करने में सक्षम है, परन्तु इसमें आश्चर्य कैसा? सूर्य और चन्द्रमा ही दिन–रात की सृष्टि करते हैं।

||9||

जिस प्रकार ईश्वर संकट में पड़े भक्तों की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हीरो भी विलन से त्रस्त हीरोइन की रक्षा की ओर प्रवृत्त होता है।

||10||

मध्यांतर तक पाँच गीत, तीन नृत्य और एक कैबरे–कम–कम रेप सीन होना उतना ही आवश्यक है जितना यज्ञ में ओम् कहना।

||11||

हे प्रिये! यदि बगल की सीट के शिशु ने तुम्हारे वस्त्रों पर वमन कर दिया, तो इसमें अनिष्ट कैसा? आधा भरा कलश ही छलकता है।

||12||

यद्यपि हीरो बारह मुस्टंडों से अकेला लड़ रहा है, किंतु इसमें हीरो की वीरता नहीं। महान डायरेक्टर और विशाल व्यक्तित्व वाला प्रोड्यूसर इसके शक्तिस्रोत हैं, जैसे रावण के प्राण उसकी नाभि में थे।

||13||

सरस्वती के समान गुणवान एवं लक्ष्मी के समान धनवान हीरोइन फटीचर नायक के प्रेम में यदि पहाड़ से कूद भी पड़े तो विलाप करने की

आवश्यकता नहीं। क्या प्रह्लाद नाना प्रकार से सताए जाने पर भी मृत्यु को प्राप्त हो सका था?

||14||

वह देखो! सुखंडी हीरो ने तगड़े विलन को उसी प्रकार पीटना आरंभ कर दिया जैसे बाघ बंदर को मारने में समर्थ होता है। अच्छे स्वास्थ्य के लाभ शास्त्रों में (अ)सत्य ही कहे गए हैं।

||15||

हे प्रिये! इससे पहले कि हीरो, हीरोइन और विलन, जिसका हृदय परिवर्तित हो चुका है, एक पंक्ति में खड़े हो कर थीम सांग गाएँ, हमें यही उचित अवसर जानकर प्रस्थान करना चाहिए। क्योंकि, जो व्यक्ति अवसर का लाभ नहीं उठाता, कालान्तर में वह दु:खी पाया जाता है।

||16||

।। इति विचित्र जगतम् ।।

आँखों की कहानी

बचपन में मुझे एक चीज़ का बेहद शौक़ था – रेलगाड़ी पर सफ़र करने का। जब कभी रेलगाड़ी पर चढ़ने का मौक़ा मिलता, मुझे बेहद ख़ुशी होती। जी चाहता, रेलगाड़ी कभी न रुके, और मैं उस पर बैठा पीछे भागते खेत–खलिहान, बाग़–बग़ीचे देखता ही जाऊँ। रेलगाड़ी में बैठे तरह–तरह के लोग, स्टेशनों पर अलग–अलग अंदाज़ में फेरी लगाते फेरीवाले, और बीच–बीच में फ़िल्मी गाने गाते हुए भिखमंगे मेरे अचरज और कौतुक का कारण बनते। कहना न होगा, उन्हें छोड़ कर स्टेशन पर उतरना मुझे उदास कर दिया करता था।

ऊपरवाला शायद मेरे इस शौक़ से वाक़िफ़ हो गया, और उसे दया भी आ गई मुझ पर। बस, ऐसी नौकरी मिली, जिसमें सफ़र–ही–सफ़र करने पड़े। शुरू में तो ऐसा लगा, जैसे अंधे को दो आँखें मिल गई हों। अगर मैं बच्चा ही रहता, तो शायद इस नौकरी से कभी न उकताता। लेकिन, हर सफ़र से होने वाली अस्तव्यस्तता और थकान मुझे जल्दी ही उबाने लगी। यह भी कोई ज़िंदगी है भला? न खाने का ठीक, न सोने का! कल तक कोई प्रोग्राम ही नहीं था, और आज अचानक ऊँट की तरह गर्दन उठाए चल दिए टूर पर। ऐसे ख़याल रोज़ परेशान करते। पर आदमी करे भी तो क्या? रोटी के लिए तो सदा साथ रहने वाले होंठ भी अलग हो जाते हैं, फिर मामूली से सफ़र से क्या घबराना? मैं अपने को तसल्ली देता। रेलगाड़ी पर चढ़ना ऐसी कड़वी दवा बन गया, जिसे पीना वजूद कायम रखने के लिए ज़रूरी हो।

एक दिन यूँ ही ऊबा–सा मैं रेलगाड़ी पर चढ़ा। पाँच घंटों से भी ज़्यादा का सफ़र था। फ़र्स्ट क्लास के उस केबिन में मेरे सिवाय कोई नहीं था। मेरे पास समय काटने को कोई किताब नहीं थी। बोरियत से भरा पहला आधा घंटा किसी तरह कटा। एक स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही मैं जायज़ा लेने नीचे उतरा। वही, हमेशा की तरह का माहौल था। एक–दो चाय–पकौड़े वाले, कुछ भिखमंगे, और मुसाफ़िरों की भीड़। यही

सब कितना आकर्षित करता था मुझे पहले! अब तो इनमें कोई ख़ास बात नज़र नहीं आती। मैं अपने केबिन में वापस घुसा।

मैं अब केबिन में अकेला नहीं रह गया था। मेरे सामने की सीट एक अधेड़ आदमी ने ले ली थी। सर पर छोटे–छोटे बाल आधे से ज़्यादा सफ़ेद थे। पैंट–बुशशर्ट पहने वे सज्जन समाज के मध्यमवर्गीय तबके का प्रतिनिधित्व करते मालूम पड़ते थे। चूँकी फ़र्स्ट क्लास में जा रहे थे, इसलिए, या तो विदाउट टिकट थे, या रेल कर्मचारी – मैंने अंदाज़ लगाया। उनकी एक तरफ़ उनका एक मित्र था, और मेरी सीट के दूसरे छोर पर एक दूसरा मित्र। उनके सामान में टिन का छोटा–सा एक संदूक और टिफ़िन बॉक्स भी शामिल था। तीनों दोस्तों की बातचीत से मिनटों में ज़ाहिर हो गया, कि वे गार्ड या वैसे ही किसी और पद पर काम करते थे।

लेकिन, मेरे केबिन में घुसने वालों की संख्या तीन नहीं, चार थी। मेरे ठीक सामने, खिड़की की बगल में, एक लड़की बैठ गई थी। सत्रह–अठारह साल की रही होगी। मोर के पंख जैसी नीली सलवार–कमीज़ में थी वह। कमीज़ का कट लो तो नहीं था, पर उसने उस छोटे–से झरोखे को भी अपनी ओढ़नी के पर्दे से छुपा दिया था। गोरी नहीं थी, पर नाक–नक़्श आकर्षक थे। मुझे अपनी तरफ़ घूरता पा कर वह सकपकाई, और खिड़की के बाहर देखने लगी।

ऐसे माई के लाल कम ही होंगे, जो लड़की के बाप की मौजूदगी में ही उस पर निगाहे–करम फ़रमाएँ। उस पर, वह खूसट तो मेरी ओर हर पाँच मिनट के बाद घूर रहा था। मैं कभी खिड़की के बाहर देखता, कभी केबिन के दरवाज़े को, और कभी उस खूसट को। इस प्रक्रिया में आँखें एक सौ अस्सी डिग्री का कोण बनातीं, जिसके बीचों–बीच वह नाज़नीन भी आ जाती। जब भी मैं उसे देखता, तो पता चलता, वह भी मुझे चोरी–चोरी देख रही है। जब ऐसा दस–बारह बार हो गया, तो दिले–बेताब ने इसे महज़ इत्तेफ़ाक़ मानने से इन्कार कर दिया। मीठी कसक और दिल के तारों का झनझनाना शुरू हो गया। हमारी निगाहें मिलने की फ्रीक्वेंसी दोगुनी हो गई। शायद मेरी बीवी भी ऐसी ही हो, मेरे कुँवारे दिमाग़ ने सोचा। या कौन जाने, यह भी वहीं उतरे जहाँ मुझे उतरना है। हमारी आँख–मिचौली दोस्ती में बदले, दोस्ती प्यार में, और प्यार शादी में। आख़िर मेरी जन्म–कुंडली भी तो लव–मैरेज की घोषणा करती है! बस, वह नीली सलवार–कमीज़ शादी के लाल जोड़े में बदल गई। केबिन सजे–धजे कमरे में रूपांतरित हो गया। हमारी सीटें जुड़ कर सुहागरात की फूलोंसजी सेज बन गई। मैं घूंघट उलटने को हाथ बढ़ा

ही रहा था, कि एक झटका लगा। गाड़ी रुक गई थी, और दोनों टिन संदूकधारी खूसट महोदय से विदा ले रहे थे। मेरा दिल थोड़ा घबराया। अबतक तो इसका ध्यान बँटाने को दो दोस्त थे। उनके उतरने पर खूसट का पूरा ध्यान हम दोनों की ओर ही होगा। लेकिन, भगवान जब देता है, तो छप्पर फाड़ कर देता है। गाड़ी दोबारा चलते ही वह उठा, और केबिन के बाहर चला गया।

मैंने लड़की का ग़ौर से मुआयना किया। अच्छी, सुशील मालूम पड़ती थी। शायद बाप के बाहर जाने से घबरा गई थी। मैंने आँखों–ही–आँखों में दिलासा दी – "घबराओ मत! मैं बड़े पक्के चरित्रवाला आदमी हूँ। आजतक कभी छेड़खानी करते पकड़ा नहीं गया।"

वह शायद समझ गई। उसकी आँखों में चैन और प्यार – दोनों नज़र आ रहे थे। मैं हल्का–सा मुस्कुराया। जवाब में वह भी मुस्कुराई और फिर शरमा कर खिड़की के बाहर देखने लगी। दस मिनट तक अगर इसका बाप न आए तो मैं बाक़ायदा बातचीत शुरू कर दूँ, मैंने तय कर लिया। लेकिन तभी धप्–धप् की ज़ोरदार आवाज़ करते हुए एक सिपाही ने हमारे केबिन में प्रवेश किया। बिना पूछे–माते, पूरे सिपाहियाना अंदाज़ में वह मेरे बगल में बैठ भी गया। राइफ़ल गोद में रख ली, और लड़की को घूरने लगा। बंदूकधारी सिपाही से तो कोई भी दहशत खा जाए। वह बेचारी तो मासूम, कमसिन थी। मैंने उसकी आँखों का भय पढ़ लिया। निगाहों में कहा – "आश्वस्त रहो, तुम्हारा बाल भी बाँका न होने दूँगा।" सिपाही ने मुझे घूरा, जैसे कह रहा हो – "बेटा! अपनी हद में ही रहो। मुझे रोका तो बंदूक चल जाएगी।"

बंदूक–वंदूक तो ख़ैर क्या चलती! तबतक उसका बाप आ गया कॉफ़ी का एक गिलास हाथ में लिए। लड़की को उसने कॉफ़ी दी। गिलास पकड़ते समय उसने मुझे देखा, मानो कह रही हो – "सॉरी! इतनी जल्दी तो ऑफ़र नहीं कर सकती न!"

सिपाही समझ गया कि वह माइनॉरिटी में आ गया है। उसने एक और सिपाही को बुला लिया। दूसरा सिपाही लड़की के बाप की बगल में बैठ गया। दोनों भोजपुरी गाने गुनगुनाने लगे। लड़की की आँखें भय से विस्फारित हो गईं। उसका बाप भी कुछ नर्वस हो गया। मुझे बचपन की एक सीख याद आ गई – समय पर किया गया उपकार बहुत दिनों तक याद रहता है। दिल ने कहा, "ससुर जी नर्वस न हों। देखिए मेरी भोजपुरी का कमाल!" सिपाहियों से दो–चार बातें कीं तो वे शांत हो गए। मैंने लड़की को देखा – "तुम्हारे भविष्य के हर संकट में भी मैं यूँ ही मदद कर सकता हूँ।" उसकी आँखों से कृतज्ञता छलक पड़ी।

थोड़ी देर बाद, अपने मित्र के आग्रह पर पहले सिपाही ने अपना रेक्सीन का हैंड बैग खोला। जब उसका हाथ हैंड बैग से बाहर निकला तो उसमें पॉलीथीन में लिपटा एक टेप रिकॉर्डर था। हम सब उत्सुक हो कर देखने लगे। सिपाही ने आहिस्ता–आहिस्ता पॉलीथीन से टेप रिकॉर्डर निकाला। किसी लोकल कम्पनी में बने उस टेप रिकॉर्डर पर फूल पत्तियों का डिज़ाइन बना था। बैटरी चेक करने के बाद सिपाही ने उसे बहुत सँभाल कर रखा। उतना ही सँभाल कर एक कसेट निकाला। अब तक हमारी दिलचस्पी आसमान छूने लगी थी। टेप रिकॉर्डर फुल वॉल्यूम पर बजते ही दोनों सिपाही झूमने लगे। वे कोई भोजपुरी गीत बजा रहे थे। ज़ोर से बजने की वजह से शोर ज़्यादा हो रहा था, संगीत और बोलों का पता कम चल रहा था। पर सिपाही थे कि आँखें बन्द कर झूमे जा रहे थे। मुझे बहुत ज़ोर से हँसी आई। मैंने लड़की को देखा। वह भी मुझे ही देख रही थी। मैं एक बार फिर हँस दिया। साथ ही वह भी हँस पड़ी।

दो–तीन गाने सुनने के बाद घड़ी पर नज़र डाली। पंद्रह मिनट में स्टेशन आनेवाला था। उसने भी मुझे घड़ी देखते देख लिया था। उसकी आँखें उदास–सी हो आई थीं। उन अंतिम पंद्रह मिनटों में शायद हम एक–दूसरे को दस मिनट देखते रहे। गाड़ी स्टेशन पर रुकी। मैंने अपना सूटकेस उठाया, और उतर गया। अभी प्लेटफ़ॉर्म के ओवरब्रिज पर चढ़ा ही था, कि देखा, दूर, वही खूसट आ रहा था। उसके साथ मोरपंख जैसे नीले कपड़ों में वह लड़की भी आ रही थी। वह उचक–उचक कर चल रही थी। बच्चा भी बता देता, उसका एक पैर बेकार था।

मैंने कदम तेज़ कर दिए। आँखों की कहानी ख़त्म हो चुकी थी। मुझे घर पहुँचने की जल्दी थी अब!

सफ़र

दिल्ली की रूह में झाँकना हो, तो वहाँ की बसों में दो–चार बार सफ़र कीजिए। क़िस्म–क़िस्म की बसें चलती हैं वहाँ। आर टी वी, ब्ल्यू लाइन, चार्टर्ड, डीटीसी, वगैरह। इन्सानों की तरह हर बस का अलहदा कैरेक्टर है, तबीयत है। कोई वक़्त की पाबंदी पर जान छिड़कती है, तो कोई जान लेने के रिकॉर्ड तोड़ती है। कोई अंगद के पैर की तरह हिलती ही नहीं जब तक पूरी बस में मुसाफ़िर भेड़–बकरियों की तरह लद न जाएँ।

दिल्ली वाले बॉस के मिज़ाज की तरह इन बसों का मिज़ाज भी जानते हैं; बल्कि उसका लुत्फ़ उठाते हैं। इस सफ़ाई से बस में चढ़ते हैं जैसे पॉकेटमार पर्स निकालते हैं पॉकेट से। लेकिन बाहरवाले क्या करें? उन मासूमों को क्या भनक कि वैन जैसी जो चीज़ आ रही है, वह भी बस है; और रेगिस्तानी साँप की तरह लोटती जो चीज़ आ रही है, उसे भी बस ही कहते हैं देहलवी ज़ुबान में। एक और पहेली है, रूट नम्बर की। अगर आपको यह इल्म नहीं कि आपकी मंज़िल जहाँ है, वहाँ कौन से रूट की बस अपनी टायरधूलि का दान करती है, तो आप तो बस, गईं काम से!

एक बार का वाकया है। मुझे क़ुतुब मीनार से मैदान गढ़ी जाना था। ओपेन यूनिवर्सिटी में आधा घंटा बाद किसी से मिलना था। बस पर चढ़ी। टिकट लिया। सोचा, वक़्त रहते पहुँच जाऊँगी। पर बसवाले पर तो सवारियाँ चढ़ाने का भूत क़ाबिज़ था। ड्राइवर इंजन स्टार्ट कर एक्सलेरेटर को दो–चार बार दबाता, कभी गियर बदल कर बस चार–छः इंच आगे बढ़ाता, पर फिर ढाक के तीन पात की तरह इंजन बंद कर सुस्ताने लगता। पूरे दस मिनट बाद, जब सारी सीटें भर गईं, तो ड्राइवर ने यूँ ख़रामा–ख़रामा बस चलाना शुरू किया, जैसे गोरी बेमन रुख़सत हो रही हो बाबुल के घर से।

दो स्टॉप गुज़रे होंगे मुश्किल से, कि ड्राइवर ने बस रोक दी। कंडक्टर पानी लाने को उतर गया। मुसाफ़िरों में कुछ औरतें थीं, जो

अपने बच्चों को स्कूल की छुट्टी के बाद लेने जा रही थीं। वे ड्राइवर से चिरौरी करने लगीं। डर था, स्कूल के गेट पर उन्हें न पा कर बच्चे कहीं इधर–उधर न चले जाएँ, कहीं खो न जाएँ। पर ड्राइवर–कंडक्टर के या तो कान नहीं थे या जूँ की समस्या से उनका कभी सामना नहीं हुआ था। यानी, दोनों के कान पर जूँ तक न रेंगी। ड्राइवर ने इत्मीनान से पानी पिया, रेडियेटर में पानी डलवाया।

एक शायराना तबीयत के बुजुर्ग ने फ़ब्ती कसी, ‘‘ड्राइवर की सीट ही तो है, कोई जनाज़ा तो नहीं! कुछ कर नहीं सकते तो उतर क्यों नहीं जाते?’’

आख़िरकार बस चल पड़ी। पर इस रफ़्तार से, कि स्लो स्पीड साइक्लिंग का ख़िताब जीत ले। बस अच्छी हालत में मालूम पड़ती थी। सीटें भी भरी थीं। समय के बाद ही चली थी। फिर भी, न जाने क्या तक़लीफ़ थी। मैं अपने अप्वाइंटमेंट से लेट हो रही थी। सोचा, कंडक्टर को टिकट वापस कर उतर जाऊँ। कुछ लोग तो ऐसी बात बोलने भी लगे। पर ड्राइवर कुत्ते की दुम की तरह टेढ़ा हो गया।

मैं भन्ना कर ड्राइवर के पास आई ही थी कि एक महिला और पहुँचीं।

‘‘क्या प्रॉब्लेम है तुम्हें?’’

ड्राइवर ढिढाई से मुस्कुराया, ‘‘मुझे कोई प्रॉब्लेम नहीं है।’

महिला ने बात करने का दूसरा ढंग अख़्तियार किया, ‘‘इस धीमी चाल की वजह से कितनी औरतें आज अपने बच्चों के स्कूल देर से पहुँचेंगी।’’

‘‘उन्हें पिछली बस में चढ़ना चाहिए था’’, ड्राइवर ने लापरवाही से जवाब दिया।

‘‘नहीं! जिस दूरी को बाक़ी बसें सात–आठ मिनट में तय करती हैं, उसे तुम पिछले पच्चीस मिनटों में नहीं तय कर पाए हो।’’

‘‘तो क्या करें? बस का इंजन गर्म हो गया है।’’ ड्राइवर ने जैसे बाउंसर फेंका।

‘‘बस रोको!’’ महिला गुर्राई।

‘‘स्टैंड आने दो, रोक देते हैं’’, ड्राइवर मंद–मंद मुस्कुराता हुआ बोला।

महिला ने आवाज़ ऊँची की। ‘‘अभी रोको, साइड कर के!’’

अबतक बाक़ी मुसाफ़िर भी जोश में आने लगे थे। ड्राइवर–कंडक्टर ने अपने को अकेला पाया, तो बस धीमी कर के महिला को ताकने लगे।

महिला ने मुसाफ़िरों से कहा, ‘‘यह बस ख़राब है। इसका इंजन गर्म हो गया है। यह ठीक से चल नहीं पा रही। आप सब अपने टिकट के पैसे वापस ले कर यहीं उतर जाएँ। मैं अपने मोबाइल पर ट्रैफ़िक कन्ट्रोल को इत्तिला कर रही हूँ ताकि क्रेन इस ख़राब बस को रास्ते से हटा दे।’’

महिला मोबाइल के बटन दबाने लगीं। यात्री भौंचक! तभी एक झटके के साथ बस सही रफ़्तार से चल पड़ी।

मैं सोचने लगी, हर किसी की ज़िंदगी कितनी अलग होती है, दिल्ली की बसों की तरह! और, ज़िंदगी जीने का तरीक़ा भी कितना अलग होता है। कोई परिस्थितियों के ड्राइवर को ज़िंदगी पर पूरी तरह हावी होने देता है, समस्याओं के आगे घुटने टेक देता है; और कोई ज़िंदगी अपनी मर्ज़ी से जीता है, अपने हाथों की लकीरें ख़ुद ख़ींचता है, हिम्मत के साथ।

सुरेखा *

शाम हौले से अपना पल्लू समेट रुख़सत हो चुकी थी। रात को जवानी की दहलीज़ पर कदम रखने में देर थी। सुरेखा अपने कमरे में थी, दुतल्ले पर। छोटा–सा एक कमरा। तीन तरफ़ बिखरा दीवारों–दरवाज़ों का मायाजाल; एक तरफ़ एक झरोखा। यही उसकी मनपसंद जगह थी। उसका बिस्तर इसी झरोखे से सट कर लगा था। खिड़की का पर्दा हवा के झोंकों में इठलाता; पर्दे में टँकी नन्ही–नन्ही घंटियाँ टुनटुनातीं। बिस्तर से सुरेखा को आसमान में टिमटिमाते तारे और उनसे अठखेलियाँ करता चाँद दिखता।

पास–ही आले पर रखे रेडियो पर एक गीत बज रहा था। सुरेखा आँखें मींच कर गीत सुनने लगी।

(गीत 1)

मधुर स्वर लहरी को कर्कश ध्वनि ने डँस लिया। शोर में गीत का वजूद गुम हो गया। शोर, जो कई आवाज़ों के मेल से बना था। लोहे के लोहे से टकराने की आवाज़। शीशा छनछना कर टूटने और किर्च–किर्च बिखरने की आवाज़। सड़क के पत्थरदिल सीने पर फ़ौलाद के घिसटने की आवाज़। और फिर, कोई आवाज़ नही – सन्नाटा! दिल दहला देने वाला सन्नाटा! सुरेखा घबराई। उठी। खिड़की से नीचे सड़क की ओर झाँका।

सड़क पर जुगनू–ही–जुगनू बिखरे थे। उसे विश्वास न हुआ। ध्यान से देखा। वे काँच के टुकड़े थे जिन पर लैम्प पोस्ट की रोशनी चमक रही थी। एक ओर एक स्कूटर ढुलका पड़ा था। दूसरी ओर पड़ा था एक शरीर। बस, एक शरीर। ज़िंदा या मुर्दा, मालूम नहीं। सुरेखा थोड़ी देर ताकती रही। शायद कोई सड़क से गुज़रे। शायद वह शरीर हिले। पर नहीं। न कोई सड़क से गुज़रा; न सड़क पर पड़े लावारिस जिस्म में कोई हरकत हुई।

सुरेखा को अहसास हुआ – यह एक सड़क दुर्घटना थी। एक ऐसी दुर्घटना जिसमें आहत करने वाला सुनसान रास्ते का फ़ायदा उठा कर फ़रार हो गया था। सुरेखा लपक कर नीचे उतरी। भाई घर नहीं लौटा था। माँ–बाबूजी को बताया। इससे पहले कि माँ–बाबूजी ठीक से समझ पाते, सुरेखा सड़क पर थी। बाबूजी भी लपकते हुए आए। वे ज़ख़्मी को पलटने की कोशिश करने ही वाले थे कि सुरेखा ने चेतावनी दी – “नहीं! न उसे हिलाइए, न उठाइए। गर्दन या पीठ में चोट हो सकती है, बाबूजी!”

गनीमत थी कि अजनबी ने हेलमेट पहना हुआ था। वह अचेत था। सुरेखा फिर बोली, “बाबूजी, प्लीज़! टॉर्च . .” आधे रास्ते आई माँ पलट कर वापस गईं और टॉर्च ले आईं। सुरेखा ने अजनबी के मुँह में दो उँगलियाँ डाल कर मुँह के अन्दर इकट्ठा चीज़ें निकालीं – एक अदद पूरा दाँत, दाँत का आधा टुकड़ा, और ख़ून का थक्का। अजनबी के गालों से रक्त बह रहा था।

सुरेखा फिर बोली, “एक जग पानी! सैवलॉन!”

थोड़ी देर बाद अजनबी सुरेखा के ड्राइंग रूम में था। मुश्किल से बोल पा रहा था, पर ठीक था। कुछ इशारों से, कुछ डायरी की मदद से, और कुछ बोल कर उसने बताया कि उसका नाम अक्षत है, वह पी एच डी का छात्र है, और छात्रावास में रहता है। सुरेखा का भाई, विनय, अक्षत को छात्रावास छोड़ आया।

मध्यमवर्ग के शांतिप्रिय परिवार के लिए यह घटना टी वी सीरियल से ज़्यादा अहम थी। उस रात सोने तक इसी घटना की चर्चा होती रही। और होता रहा बखान सुरेखा की समझदारी का। जैसे वह एम ए की छात्रा न हो कर एम बी बी एस की छात्रा हो, या फ़्लोरेंस नाइटिंगेल हो! सुरेखा बिस्तर पर लेटी तो ज़रूर, पर नींद उसकी आँखों से कोसों दूर थी। पास थे ख़याल, जीवन की नश्वरता के। जीवन जैसे माला हो मनकों की। मनकों के आकर्षण पर तो सब रीझते हैं, पर डोर की कमज़ोरी की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।

(गीत 2)

दुर्घटना को दो दिन बीत गए। बात आई–गई हो गई। बचे, तो सड़क पर स्कूटर घिसटने के दाग़। सुरेखा ने विनय से पूछा, “उस लड़के को देखा था जिसका एक्सिडेंट हो गया था?”

“हाँ! क्या हुआ उसे?” विनय उल्टा पूछ बैठा।

“अरे, मैं ये पूछ रही हूँ कि फिर जा कर देखा था उसे हॉस्टल में?”

“पागल हो क्या? उसके दोस्त–वोस्त होंगे, वार्डन–शार्डन होंगे – देख ही लेंगे। हमने पहले ही ज़रूरत से ज़्यादा कर दिया है उसके लिए।” विनय लापरवाही से कॉलर ठीक करता हुआ बोला।

बाबूजी, माँ, दोनों सुन रहे थे। सुरेखा की बात उन्हें ठीक लगी। विनय को जाना पड़ा अक्षत को देखने। वापस आया तो बोला, “माँ! उसका गाल तो फुटबॉल की तरह फूल गया है। बुख़ार भी है।”

“दवा–दारू चल रही है या नहीं?” माँ ने पूछा।

“दवा तो चल रही है, दारू के बारे में पता नहीं!” विनय शरारत से बोला। फिर सुरेखा की तरफ़ अर्थपूर्ण नज़रों से देखता हुआ बोला, “हम सबको धन्यवाद दे रहा था। ख़ास तौर पर दीदी को।”

सुरेखा को थोड़ा गुस्सा आया, पर चुप रही। माँ को सब्ज़ियाँ काटती छोड़ वह ऊपर चली गई, अपने कमरे में। विनय बाहर निकल गया दोस्तों में। सुरेखा काफ़ी देर बाद नीचे उतरी, जब माँ ने खाना खाने के लिए आवाज़ दी। चुपचाप खाना खाया, एक–आध ज़रूरी बात की, और चली गई वापस अपनी शरणस्थली, अपने कमरे में।

गुमसुम रहना न जाने कब से सुरेखा का स्वभाव बन चुका था। बाबूजी, माँ, विनय – सब इस बात से वाक़िफ़ थे। कब, कौन–सी बात सुरेखा के जी को छू जाएगी, कहना मुश्किल था। एक बार उदास हो जाए तो पूरा दिन, और कभी–कभी तो कई दिन लग जाते थे उसे सामान्य होने में। उसके स्वभाव की गुत्थियाँ सुलझाने में सब पस्त हो जाते, हार जाते। सच पूछिए, तो अब सबने यह प्रयास ही छोड़ दिया था। तनहाई ही हमदर्द थी, हमराज थी सुरेखा की। बाक़ी साथी जैसे कोई था ही नहीं।

(गीत 3)

एक सुबह सुरेखा नहा कर खिड़की के पास खड़ी थी। नीचे नज़र गई, तो देखा, कोई ऊपर की तरफ़ ही ताक रहा है। एक फूला, काला गाल; एक गोरा पिचका गाल लिए अक्षत उसे देख रहा था।

सुरेखा को देख कर अक्षत ने हाथ हिलाया। शायद कुछ ज़्यादा ही ज़ोर से, क्योंकि मुँह विकृत कर दायें हाथ को बायें से तुरत थाम लिया अक्षत ने। उसने कुछ ऐसा मुँह बनाया, कि सुरेखा को हँसी आ गई। सीढ़ियाँ उतरते समय भी उसके होठों पर हँसी खिल रही थी।

अक्षत ड्राइंग रूम में आ चुका था। बाबूजी और विनय भी वहीं थे। सुरेखा ने छूटते ही पूछा, "कहिए! कैसे हैं?"

"बस, आपकी दया से बच गया उस दिन, वरना . . ." अक्षत कृतज्ञता से बोला।

"ऐसी कोई ख़ास चोट तो नहीं लगी थी आपको। बस, मुँह पर एक खिड़की खुल गई।" सुरेखा ने शरारत से कहा।

"एक दरवाज़ा भी!" अक्षत के नहले पर दहला जड़ते ही सब हँस पड़े। थोड़ी देर बाद अक्षत चला गया। सुरेखा ने चहकते हुए कहा, "माँ, देखा? अक्षत कितना ठीक हो गया है!"

माँ ख़ुश थीं। बाबूजी भी। पर, सुरेखा को विनय की आँख में एक विचित्र भाव दिखाई दिया। एक ऐसा भाव जो पहले कभी नहीं दिखा था।

शाम को अक्षत का फ़ोन आया। अगली शाम को भी। फ़ोन रखने के बाद माँ की निगाहें सवालिया सी लगीं सुरेखा को। निर्विकार थे तो सिर्फ़ बाबूजी। वह थोड़ा सिटपिटाई। थोड़ा गुस्सा भी आया। न जाने किस पर। हर कोई अपनी जगह ठीक था। हर प्रतिक्रिया तर्कसम्मत थी। पर उसे न जाने क्यों कटघरे में खड़ा कर जाती थी। हाल ये हो गया, कि अक्षत का नाम आते ही सुरेखा के चेहरे का रंग बदल जाता।

एक दिन सुरेखा ने बड़ी देर तक बात की फ़ोन पर। माँ ने सुनने की, हावभाव भाँपने की कोशिश की। सुरेखा कभी ख़ुश होती, खिलखिलाती, और कभी संजीदा हो जाती। कभी देर तक चुप रहती, मानो डेड रिसीवर थामे हो। माँ की समझ में कुछ न आया, तो वे वापस जुट गईं अपनी दिनचर्या में।

थोड़ी देर बाद सुरेखा उतर कर आई, बाहर जाने को तैयार। माँ चौंकीं, "कहाँ जा रही हो सुरी?"

"अक्षत के पास।" सुरेखा ने छोटा–सा जवाब दिया।

"अक्षत के पास? कोई ख़ास बात है क्या?"

"हाँ!"

जवाब इतना संक्षिप्त था कि कि माँ सकपका गईं। कुछ अंदेशा सा हुआ उन्हें। लेकिन बोल सिर्फ़ इतना भर सकीं, "जल्दी आ जाना, बेटा।"

सुरेखा ने, पता नहीं, सुना भी या नहीं। माँ को सीने में दर्द–सा महसूस हुआ। सुरेखा को गए पाँच मिनट भी न हुए थे कि वे घड़ी देखने लगीं। बार–बार। हिसाब जोड़तीं, सुरेखा को गए कितना समय हुआ।

थोड़ी देर बाद विनय भी आ गया। वैसे तो उसे घर के कामकाज से कोई सरोकार न था, पर आज माँ से पूछ बैठा, “माँ! सब ठीक तो है?”

माँ बेचारी क्या कहतीं! दिल–ही–दिल में सोचने लगीं, “लड़की इतनी बड़ी हो गई। इनकी समझ में तो कुछ आता नहीं। इतना कहा कि अच्छा लड़का देख कर शादी तय कर दी जाए, पर कहाँ? अब न जाने कहाँ गई है! कुछ कर न बैठे। अगर कर लेगी, तो क्या मुँह दिखाऊँगी सबको? फूल जैसी बच्ची, इतने प्यार में पली, और अब . . .” माँ रुआँसी हो गईं।

(गीत 4)

खाने का समय गुज़र गया था। विनय खाना खा चुका था, बाबूजी खाना खा रहे थे। माँ कभी पतीलों को देखतीं, कभी घड़ी को। बाप–बेटे दोनों को ही बताया था कि सुरेखा किताब ख़रीदने गई है, शायद देर से लौटे। पर कब तक यह रहस्य छुपातीं कि सुरेखा अक्षत के पास गई है बाहर जाने के कपड़े पहन कर, शायद कभी न लौटने के लिए!

कदमों की आहट से माँ की तंद्रा टूटी। हड़बडा कर उठीं। बाबूजी के हाथ में कौर धरा रह गया। दरवाज़े से अंदर आने वाला पहला कदम अक्षत का था। उसके पीछे थी सुरेखा।

अक्षत के नमस्कार का ठीक से जवाब नहीं दे पाए माँ–बाबूजी। सुरेखा सकुचाते हुए बोली, “अक्षत आशीर्वाद माँगने आए हैं।”

“किस बात का?” माँ ने सहज होने की असफल चेष्टा के साथ पूछा।

“शादी का!’

“शादी?” बाबूजी, माँ चौंक गए। विनय भी बगल के कमरे से आ गया, पाजामे बनियान में।

“हाँ, शादी!”

“पर, तुम . . .” माँ–बाबूजी के ऊपर जैसे कोई बम फट पड़ा था।

“माँ! अक्षत का यहाँ कोई है नहीं। उस घटना के बाद से हमें ही अपना समझने लगे। तो बस, शादी का आशीर्वाद लेने हमारे ही घर आ गए।”

माँ–बाबूजी सकते में थे। ख़ामोश रहे। अक्षत भी असमंजस में था। सुरेखा ने ही बात आगे बढ़ाई, ‘‘माँ, बहू को तो बुलाइए! कब तक बाहर खड़ी रहेगी बेचारी?’’

‘‘हाँ, हाँ . . .’’ माँ तपाक से बाहर निकलीं, जहाँ शर्म से दोहरी एक युवती खड़ी थी।

माहौल ऐसे बदल गया, जैसे अंतिम गेंद पर छक्का जड़ हारा मैच जीत लिया गया हो! काफ़ी देर तक ठहाके, खिलखिलाहट गूँजती रही। फिर युवती बोली, ‘‘सुरेखा जी, आपको कैसे धन्यवाद दूँ! आपने रात के समय एक ऐसे शख़्स की मदद की जो आपके लिए अजनबी था। अगर समय पर मदद न मिलती, तो शायद ये दुर्घटना एक हादसे में बदल जाती। बाद में भी आपने अक्षत का खयाल रखा, सिर्फ़ इंसानियत के नाते। संवेदनशील होने की वजह से। आपके और अक्षत के सामीप्य का कुछ दूसरा अर्थ भी निकल सकता था। शायद आप कुछ झंझावातों से भी गुज़री हों, पर . . .’’

‘‘यह सब आपको कैसे मालूम?’’ सुरेखा ने मासूमियत से पूछा।

‘‘नारी संवेदना का एक पहलू ये भी तो है!’’ युवती मुस्कुराई। बाबूजी और अक्षत भी। माँ की आँखों में बादल घुमड़ रहे थे। सुरेखा विनय की आँखों में न देख पाई। उसकी आँखें नीची जो थीं।

मधुबन *

चौड़ी सड़क। मध्यम आकार का मकान। छोटा–सा दरवाज़ा, मकान के पिछवाड़े। दरवाज़े से अंदर दाख़िल हों, तो सामने तंग–सा एक गलियारा पड़ता है। इसी गलियारे में एक कामचलाऊ रसोईघर है। इतना छोटा, कि बाहें फैलाएँ तो दीवारों से टकरा जाएँ। गलियारे से दो सीढ़ी ऊपर एक कमरा है। कोई बारह फ़ुट बाई बारह फ़ुट का होगा।

सुबह साढ़े दस बजे इस कमरे में एक लड़की दिखा करती है। हूर की परी तो नहीं; पर सुतवाँ नाक, घुटना चूमते काले घने बाल, गेहुँआ रंग और हँसमुख चेहरा उसे भीड़ से अलग ज़रूर कर देते हैं। ग़ौर करें, तो कमरे में देखने लायक कुछ नहीं है उस लड़की के सिवाय। न मँहगी पेंटिंग, न सजावटी सामान – टेलीविज़न तक नहीं है इस कमरे में।

फिर भी, लड़की ख़ुश है। हर शाम साढ़े चार बजे मुँह धोने, दाँतों के बीच क्लिप फँसा कर बाल काढ़ने, सजने–सँवरने और बाहर जाने के कपड़े पहनने के बाद वह बेताबी से दीवारघड़ी ताका करती है। घड़ी की टिक–टिक में मोटर साइकिल की धक–धक का पुट आते ही उसकी बाँछें खिल जाती हैं। वह बिजली की तेज़ी से दरवाज़ा खोला करती है। एक लड़का अंदर आता है, ब्रीफ़केस कमरे में रखता है, और पाँच मिनट के अंदर दोनों फ़ुर्र हो जाते हैं। दोनों बाज़ार में घूमते हैं, कुछ खाते हैं, बतियाते हैं, एक–दूसरे की आँखों में ख़्वाब देखते हैं, और लौट आते हैं टीन के दरवाज़ेवाले अपने स्वर्ग में।

लड़के के बाल थोड़े घुंघराले थे। लड़की को उन बालों में उँगलियाँ फिराने का मन होता। लड़के को बेतरतीब बाल पसंद न थे। लड़की को लड़के के कंधे पर हाथ रखने में मज़ा आता। गर्दन की भूरी चमड़ी पर चूड़ियों का रंग निखर आता। आज भी लड़की कुछ ऐसा ही नज़ारा देख रही थी कि लड़का बोल उठा, "सुमि!"

"हूँ ऽऽऽ ... सौम्या ने जैसे नींद में कहा।

"मुझे एक जॉब ऑफ़र मिला है। कलकत्ता में। यहाँ से तीन हज़ार ज्यादा मिलेंगे हर महीने।"

"स SSS च?" सौम्या की ख़ुमारी हवा हो गई। "कब जाना होगा?" फिर सँभलते हुए बोली, "वैसे तो अब भी कोई तक़लीफ़ नहीं, पर बढ़े हुए तीन हज़ार रुपयों का इस्तेमाल तो हो ही जाएगा।"

लड़का सौम्या के भोलेपन पर मुस्कुराया। उसने मन–ही–मन सोचा, "काश! जीना उतना आसान होता जितना सौम्या समझती है।"

उसके लिए सौम्या गुलाब पर गिरी शबनम की मानिंद थी। सूरज की किरण हो या हवा का झोंका, शबनम को सबसे बचा कर रखना पड़ता है। ज़माने की बुराइयों, अनुभवों की खटास – सबका ज़िक्र किए बिना छोटा–सा उत्तर दिया उसने, "उनके पास तीन कैंडिडेट हैं। पता नहीं मेरा सेलेक्शन होगा भी या नहीं।"

उसके सपनों के देवता से कोई बेहतर–भी हो सकता है, यह सौम्या की कल्पना से बाहर था। वह बोली, "आप ही का सेलेक्शन होगा, सुमित! अपने को अंडर एस्टिमेट क्यों करते हैं?"

दूसरे दिन सौम्या ने भगवान की तस्वीर के आगे थोड़ी ज़्यादा देर तक हाथ जोड़े।

एक महीना हो गया सौम्या–सुमित को कलकत्ता आए। काली–पीली टैक्सियाँ, टन टन करती ट्रामें, हाथ रिक्शे, नुक्कड़ पर एग रोल की दूकान, और कलाई में शंख का कड़ा पहने मकान मालकिन – सौम्या के जीवन में एक नया अध्याय जुड़ गया। बस, शाम को सुमित के साथ घूमना बंद हो गया। वह सुबह जल्दी जाता और शाम ढले घर लौटता। कभी–कभी तो रात हो जाती। सौम्या खिड़की के पास खड़ी रहती नीचे गली की ओर टकटकी लगाए। कॉरपोरेशन के टिमटिमाते बल्ब के गंदले उजाले में भी उसे सुमित का साया साफ़ नज़र आ जाता। उसे देखते ही सौम्या के चेहरे पर हज़ारों वॉट के बल्ब जैसे एक साथ चमक उठते। वह ज़ीने से दौड़ती हुई नीचे उतरती, दरवाज़ा खोलती। परेशान–सा सुमित अंदर आता। खाना खाने के बाद पति–पत्नी में बातें होतीं। सौम्या के पतंग की डोर से लम्बे सवालों का जवाब सुमित हाँ–हूँ में देता और जल्दी ही नींद के आगे घुटने टेक देता। सौम्या मुस्कुराती, सुमित के बालों में उंगलियाँ फिराती, तनख़्वाह में बढ़े तीन हज़ार रुपयों से किश्तों में फ्रिज ख़रीदें या टेलीविज़न, सोचती, और सो जाती।

सौम्या की मुस्कुराहट पूनम के बाद के चाँद की तरह घटती गई। सुमित को सिर्फ़ डेढ़ हज़ार रुपयों का फ़ायदा हुआ, क्योंकि कम्पनी की सामर्थ्य उससे अधिक की न थी। डेढ़ हज़ार रुपए की बढ़त की बलिवेदी पर सौम्या की मुस्कुराहट ही सती नहीं हुई, सुमित का आराम,

चैन और स्वास्थ्य – सब न्यौछावर हो गए। इतवार की छुट्टी गई। रात दस बजे तक, और कभी–कभी रात भर दफ़्तर में सर खपाना आम बात हो गई। तीन महीने पहले तक हमेशा ख़ुश रहने वाला सुमित हमेशा चिड़चिड़ा, परेशान रहने लगा। ख़ाँसी ने उसके ठहाकों को बेदखल कर दिया। सौम्या के टेलीविज़न–फ़्रिज के ख़ुशगवार ख़्वाब परेशानी की भेंट चढ़ गए।

सौम्या अक्सर सोचती, यह तो लेने के देने पड़ गए। सुमित का तेज़ी से गिरता स्वास्थ्य तनख़्वाह में सिर्फ़ पंद्रह सौ रुपयों की बढ़ोत्तरी से ज़्यादा कचोटता उसे। गर्मी की एक दोपहर छत से लटके पंखे को घूमता देख उसने सोचा, "ज़िंदगी भी क्या–क्या खेल खिलाती है। आदमी सोचता कुछ और है, और हो जाता है कुछ और!" उसे सुमित पर गर्व भी हुआ और प्यार भी आया। आख़िर उसी की ख़ुशी के लिए तो सुमित इतनी ज़द्दोज़हद कर रहा है! अभी, जब वह पंखे की ठंडी हवा में लेटी है, सुमित न जाने किस परेशानी से जूझ रहा होगा। पता नहीं, उसने ठीक तरह से खाना भी खाया होगा या नहीं। उसे एक पल के लिए ही सही, आराम करने की फ़ुर्सत मिली भी होगी या नहीं।

वह खिड़की के पास परेशान–सी खड़ी हो गई। सड़क उसके जीवन की ही तरह सूनी थी, जिस पर लू के थपेड़े साँय–साँय चल रहे थे उसकी मुश्किलों की तरह। उसकी निगाह बरबस ही अटक गई तीन बच्चों पर। नीली स्कूल ड्रेस में, कंधे पर बस्ता लटकाए, बच्चे उत्साह में चले जा रहे थे, गर्मी से पिघलती सड़क और लू के थपेड़ों से बेख़बर।

सौम्या के मस्तिष्क में एक विचार कौंधा – क्या मैंने पढ़ाई–लिखाई सिर्फ़ पंखे की हवा खाने या खाना पकाने के लिए की थी? ख़ास करके अब, जब मेरे पति के कंधे गृहस्थी के बोझ से चरमरा रहे हैं, क्या मैं उन्हें थोड़ा–सा सहारा भी नहीं दे सकती? सुमित का गिरता स्वास्थ्य मेरे आत्मसम्मान को भला कैसे गँवारा हो रहा है? आज तो नारी आत्मनिर्भर है। पायलट, वैज्ञानिक, सैनिक – नारी हर रूप में मौजूद है आज।

बस, सौम्या ने कमर कस ली। मकानमालकिन के पास गई, पड़ोसियों के पास गई, न जाने किस–किस से क्या–क्या बात की, पर एक सप्ताह बीतते–न–बीतते उसके घर दो बच्चे आने लगे। वह दोपहर में उन बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती। सौम्या हँसमुख भी थी, कुशाग्र बुद्धि भी। सौम्या को बच्चे भाए, बच्चों को सौम्या। हफ़्ते–दो–हफ़्ते में छात्रों की संख्या दो से चार और चार से आठ हो गई। सौम्या दो महीनों में सोलह सौ रुपए महीना कमाने लगी।

थोड़ा–थोड़ा ही सही, जैसे–जैसे सौम्या की आमदनी में इज़ाफ़ा होता गया, उसका आत्मविश्वास भी बढ़ता गया। कलकत्ता की उमस भरी रात में सुमित का बार–बार जाग कर घड़े का पाना पीना सौम्या से देखा न गया। सौम्या ने किश्तों पर फ्रिज ख़रीद लिया। उस रात सौम्या ने अच्छे कपड़े पहने, आइसक्रीम जमाई, और बैठ गई सुमित के इंतज़ार में पलक–पाँवड़े बिछा कर। सुमित रोज़ रात की तरह क़रीब दस बजे घर में दाख़िल हुआ। सौम्या को सजी–धजी देख कर चौंका। "क्या बात है, भाई? कहीं से आ रही हो क्या?"

सौम्या भला उस छोटे–से घर में फ्रिज का क्या सरप्राइज़ दे पाती! नई चीज़ें चमकती भी कुछ ज़्यादा हैं। सुमित की नज़र फ्रिज पर पड़ी तो आग बबूला हो उठा – "अब तुम इतनी मँहगी चीज़ें भी ख़रीदने लगीं बिना पूछे–माते? इधर मेरी नौकरी पर बनी है, और उधर तुम हो कि फ़िज़ूलख़र्ची में पैसे उड़ाए जा रही हो! कैसे भरेंगे इसके पैसे? आख़िर तुम कब समझोगी कि जब दो जून की रोटी को ही लाले पड़े हों, तो . . . ख़ैर! छोड़ो। भला तुम समझ भी कैसे सकती हो? तुम्हें सजने–सँवरने से फ़ुरसत मिले, तब तो!"

सौम्या को काटो, तो ख़ून नहीं! उसका सर कभी अपराधबोध से झुक जाता, तो कभी अपमान से उसका हृदय सुलग उठता। दाँतों में साड़ी का पल्लू दबाए उसने सिसकियाँ जज़्ब कीं, सुमित के लिए खाना परोसा, और औंधे मुँह निढाल हो गई बिस्तर पर। दिल में कहीं एतबार था कि सुमित हौले–से उसकी पीठ पर हाथ फेरेगा, फुसफुसाते हुए पूछेगा, "सो गईं क्या?" और तब तक खाना नहीं खाएगा जब तक वह गुस्सा थूक कर मुस्कुरा न देगी।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। सौम्या को लेटे–लेटे ही पता लग गया कि सुमित ने कब खाना खा लिया, और कब वह बिस्तर की दूसरी तरफ़ आ कर लेट गया। कितनी जल्दी नींद भी आ गई उसे!

आधी रात को सौम्या उठी, और आइसक्रीम बहा डाली नाली में। आइसक्रीम के साथ न जाने क्या–क्या और बहा डाला आँसुओं ने। आत्मनिर्भर होने का उसका निश्चय और दृढ़ हो गया।

सौम्या ने उस दिन से पढ़ाने में और ज़्यादा दिल लगाना शुरू कर दिया। पहले सिर्फ़ एक घंटा पढ़ाती थी, अब वह दोपहर तीन बजे से शाम सात बजे तक पढ़ाने लगी। क़रीब तीस बच्चे पढ़ने आते उससे।

उसे वह दिन अब बहुत दूर नहीं लगा जब वह अपना एक छोटा–सा स्कूल चला पाएगी। नन्हे–नन्हे बच्चे रिक्शे में पहुँचेंगे उसके

स्कूल। वह उन्हें बहुत प्यार से पढ़ाएगी, उनकी छोटी–से–छोटी ज़रूरत का ख़याल रखेगी।

एक दिन शाम सात बजे वह बच्चों के आख़िरी बैच को विदा कर ही रही थी कि सुमित घर में दाख़िल हुआ। आम तौर पर पत्नी पति को घर जल्दी आया देख कर ख़ुश होती है, लेकिन सौम्या भौंचक रह गई। मानो उसकी चोरी पकड़ी गई हो। सुमित इन दिनों छोटी–छोटी बातों पर उसे झिड़क दिया करता था। आज तो जैसे पहाड़ ही टूट पड़ा।

"अच्छा! तो अब दो रुपल्ली का ट्यूशन लेना भी शुरू कर दिया तुमने। तुम्हारे ऐशो–आराम के लिए मेरी तनख़्वाह काफ़ी नहीं, यह जताने का अच्छा तरीक़ा ढूँढा है तुमने!"

सौम्या में आज पता नहीं कहाँ से इतना आत्मविश्वास आ गया। वह न तो हिचकिचाई, न ही घबराई। बस, इतना बोली, "जिस बात के लिए आप आज मुझे ताना दे रहे हैं, एक दिन उसी बात के लिए भगवान का शुक्र अदा करेंगे।"

पति–पत्नी के बीच तनाव और गहरा गया। जो दो प्राणी टीन के दरवाज़े के घर में एक–दूसरे की आँखों में स्वर्ग तलाशा करते थे, वे बेहतर सुविधाओं वाले घर में एक–दूसरे से कतराने लगे। सुमित का तो जैसे मन ही उचट गया। रोज़ तड़के दफ़्तर के लिए रवाना होने वाला सुमित अब कभी आठ बजे निकलता तो कभी नौ बजे। कभी–कभी तो साढ़े नौ भी बज जाते। वापसी का भी वही हिसाब। कभी छः बजे लौट आता तो कभी रात के दस भी बजा देता।

सौम्या को धक्का–सा लगा। आदमी अपनी दिनचर्या में इतनी फेरबदल तभी करता है जब किसी को रंगे–हाथ पकड़ना चाहता हो, या किसी से बचना चाहता हो। रंगे–हाथ पकड़ना! ऐसा कौन–सा अपराध कर रही थी सौम्या जो सुमित उसे रंगे–हाथ पकड़ना चाहता था?

सौम्या का मन आक्रोश से भर उठा। "जब ये मेरी जासूसी कर सकते हैं, तो मैं भी ऐसा ही करूँगी।" पहले वह सुमित की जेब में रखे कागज़ के टुकड़ों पर ध्यान न देती थी। पहले सुमित के कपड़े बिना निरीक्षण के धो दिए जाते थे। पहले वह सुमित के हाथ–ख़र्च का ब्यौरा नहीं रखती थी। अब सब बदल गया। अटूट प्रेम के कल्पवृक्ष को संदेह का दीमक चाटने लगा।

सौम्या ने देखा, सुमित की जेब में पड़े बस–ट्राम के टिकट रोज़ एक समान नहीं होते। जेब में अक्सर मूँगफली के छिलके और दानों के टुकड़े मिलते। कभी–कभी उसकी कमीज़–पतलून पर गीली मिट्टी के दाग़ होते। एक दिन घास के टुकड़े भी चिपके मिले।

सौम्या का माथा ठनका। वह समझ गई, सुमित दफ़्तर के अलावा भी कहीं और जाता था! अक्सर किसी बग़ीचे में बैठता–लेटता था। किसके साथ? वह कौन थी जिसकी वजह से सुमित सौम्या से उखड़ा–उखड़ा रहता था?

दशहरे को पाँच दिन बाक़ी थे। सौम्या के छात्रों के दशहरे के दो दिन बाद तक छुट्टी के अनुरोध की वजह से ट्यूशन सात दिनों के लिए बंद था। सुमित की छुट्टी सिर्फ़ दशहरे के दिन थी। वह नौ बजे दफ़्तर के लिए निकला तो सब्ज़ी ख़रीदने के बहाने सौम्या भी झोला ले कर निकल पड़ी।

गली के आगे सुमित बाईं ओर मुड़ा बस–स्टॉप की ओर, और सौम्या दाईं ओर, हाट की तरफ़। दो अलग–अलग रास्तों पर मुड़ते समय पति–पत्नी ने ऐसे हाथ हिलाया जैसे जान छूटी हो।

दस कदम बढ़ कर सौम्या ने पीछे मुड़ कर देखा। सुमित बस स्टॉप की ओर बढ़ा जा रहा था। सौम्या भी पलट कर पेड़ों, गाड़ियों, खोमचों की आड़ में सुमित के पीछे हो ली। सुमित ने दो बार पलट कर देखा, पर सौम्या दोनों बार पकड़े जाने से बाल–बाल बच गई।

सुमित के एक पैर को बिबादी बाग़ की खचाखच भरी बस के पायदान के एक छोटे–से हिस्से पर जगह मिली। दरवाज़े के हैंडल को पकड़ने की स्पर्धा करते दर्ज़नों हाथों में एक हाथ सुमित का भी था। उसका दूसरा पैर और ब्रीफ़केस वाला हाथ हवा में झूल रहा था।

सौम्या का कलेजा मुँह को आ गया। सोचा, सुमित को बस से उतर कर अगली बस का इंतज़ार करने को कहे, लेकिन वह बस से क़रीब दस फ़ुट दूर थी। जब तक बस के पास पहुँच पाती, बस चल पड़ी।

सौम्या ने पास खड़े टैक्सी वाले से कहा, "दादा! उस बस के पीछे चलिए। मेरे स्वामी हैं उसमें!"

बस के पीछे भागती टैक्सी में सौम्या का ध्यान लगातार चढ़ते मीटर और बस से उतरते यात्रियों के बीच बराबर बँटा था। पैंतालीस मिनट की यात्रा और मेहनत की कमाई से एक–एक कर जोड़े पैंतीस रुपयों से अलग होने के बाद सुमित और सौम्या एक बार फिर सड़क पर थे, दस फ़ुट के फ़ासले पर।

दफ़्तर जाने वालों की चाल की चुस्ती सुमित की चाल में न थी। प्रेमिका से छुप कर मिलने वालों की चाल का उमंग भी न था। वह तो बस, उद्देश्यहीन–सा चल रहा रहा था। कभी एक दूकान के आगे ठिठकता

तो कभी दूसरी के। इसी तरह पंद्रह–बीस मिनट की चहलकदमी के बाद सुमित एक पार्क में दाख़िल हो गया।

सौम्या ठिठक गई। थोड़ी देर तक सुमित को ताकती रही। सुमित निश्चिंत भाव एक पेड़ से पीठ टिका कर बैठ गया था, शून्य में कुछ तलाशता। सौम्या हैरान थी। "ये आराम से यहाँ क्यों बैठ गए हैं? दफ़्तर क्यों नहीं जा रहे?"

सौम्या ने पर्स से एक चिट निकाली, सुमित के दफ़्तर का पता पढ़ा, और अनुमान लगाया कि दफ़्तर पास ही कहीं होगा। दस मिनट के अंदर वह सुमित के दफ़्तर के सामने थी। दफ़्तर के दरवाज़े पर पीतल के दो मोटे–मोटे ताले लगे थे। दीवार पर बंगला में नोटिस लगी थी।

"ओह! तो सुमित के दफ़्तर में भी दशहरा की छुट्टी है, जिसकी नोटिस लगी है। देखो तो! अब सुमित को मेरा इतना–सा साथ भी मंजूर नहीं कि छुट्टी घर में बिताए।"

सौम्या सीढ़ियाँ उतरने लगी। तभी ख़याल आया, ज़रा ये भी पता कर लिया जाए कि छुट्टी कब से कब तक है। सीढ़ियाँ दोबारा चढ़ कर वह एक बार फिर दफ़्तर के सामने खड़ी हो गई। बंगला पढ़ना उसे आता न था। सोच ही रही थी कि क्या किया जाए, कि एक आदमी चाय के गिलास लिए गुज़रा। सौम्या को कुछ पूछने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। वह ख़ुद ही बोल उठा, "इधर छुट्टी हो गया! खैला सोमाप्तो!"

"छुट्टी हो गई? अरे आज ऑफ़िस ख़ुला ही कब जो छुट्टी हो गई?"

"ऑपिश पोनोरो दीन थेके बौंदो।"

"ऑफ़िस पंद्रह दिनों से बंद है? क्यों? खुलेगा कब?"

"क्या जाने कौब खुलेगा, खुलेगा भी कि नेहीं। कोम्पानी का बाबू लोग को भी पाता नेहीं। ओ दैखो, ए बाबू रोज आता है। इसको मालूम होगा।" चायवाले ने सीढ़ियाँ चढ़ कर आते सुमित की ओर इशारा किया।

सौम्या सुमित को देख कर मुस्कुराई – कुछ वैसे ही जैसे टीन के दरवाज़े वाले घर में मुस्कुराया करती थी। हकबकाया–सा सुमित भी मुस्कुरा उठा। इससे पहले कि कोई कुछ बोल पाता, सौम्या ने सुमित का हाथ थामा और सीढ़ियाँ उतरने लगी।

"तुम . . यहाँ?" सुमित ने झेंपते हुए पूछा।

"हाँ!" छोटा–सा उत्तर दिया सौम्या ने।

"मैं तुम्हें इस बारे में बताने ही वाला था . . ." सुमित सफ़ाई देने लगा।

सौम्या चुप रही।

दोनों बस–स्टॉप की ओर बढ़ने लगे।

"तुम यहाँ आईं क्यों?"

"अपनी गृहस्थी और आपके सम्मान की रक्षा के लिए!"

सुमित के मुँह में शब्द आने से पहले बस आ गई। बस में ज़्यादा भीड़ नहीं थी। सौम्या महिलाओं वाली सीट पर बैठ गई। सुमित को बस में पीछे सीट मिल गई।

लगभग आधे घंटे की यात्रा के दौरान पति–पत्नी विचारों के झंझावात झेलते रहे। बस से उतरने से ले कर घर पहुँचने तक दोनों चुपचाप रहे। सुमित चुपचाप बैठ गया कोने में। सौम्या कपड़े बदल कर रसोई में घुस गई।

सुमित ने धीरे से कहा, "मेरे टिफ़िन का डब्बा भी है।"

सौम्या ने सामान्य लहजे में कहा, "हाँ, बस थोडा़–बहुत कुछ और बना लेती हूँ। डब्बे का खाना भी गर्म कर लूँगी।"

सुमित के दिल का चोर ऐसे सामान्य व्यवहार के लिए तैयार न था। अगर सौम्या रूठती, या गुस्सा होती, तो सुमित भी आसमान सर पर उठा लेता। बोलता, कि सौम्या के इसी अप्रिय आचरण ने उसे पंद्रह दिनों तक चुप रहने, आफ़िस जाने का नाटक करने पर मजबूर कर दिया था। लेकिन, सौम्या तो यूँ शांत थी जैसे कुछ हुआ ही न हो।

सौम्या ने खाना परोसा। दोनों चुपचाप खाते रहे। खाना ख़त्म हुआ। सौम्या ने बर्तन समेटे। सुमित अख़बार पढ़ने का नाटक करने लगा। सौम्या रसोई से बाहर आ कर सुमित के पास बैठ गई। बोली कुछ नहीं, बस, सुमित का हाथ थाम लिया उसने।

सहानुभूति भरा स्पर्श पाते ही सुमित के अन्दर न जाने कब का ज्वार फूट पड़ा। उसकी आँखें छलक उठीं। "मैं क्या करता? मेरा क्या दोष है, बोलो? कैसे बताता कि मेरी कम्पनी अचानक बन्द हो गई?"

सौम्या ने सुमित के बालों में उंगलियाँ फेरते हुए कहा, "कम्पनी के बंद होने में आपका कोई दोष नहीं। आप तो मन लगाकर, ख़ून पसीना एक कर, काम करते रहे। पंद्रह दिन इंतज़ार भी कर लिया कि कम्पनी शायद फिर खुल जाए। अगर खुल गई और नौकरी वापस मिल गई, तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन इसके लिए वहाँ रोज़–रोज़ जाने की क्या ज़रूरत है? एक फ़ोन ही काफ़ी होगा।"

"तुम समझती नहीं, सुमि! अगर मैं रोज़ बाहर नहीं जाऊँगा तो मुहल्ले वालों को पता चल जाएगा कि मैं बेकार हूँ। क्या इज़्ज़त रह

जाएगी हमारी? मकान मालिक घर ख़ाली करने को कहेगा। दुकानदार सामान देने में हिचकिचाएँगे।''

''आपकी बात सोलहों आने सही है। लेकिन काम पर जाने का नाटक आख़िर कब तक चलेगा? सच कभी–न–कभी सामने आ ही जाएगा। तब कितनी भद होगी!''

''तो क्या करूँ? दूसरी नौकरी इतनी जल्दी कहाँ मिलेगी? और वह भी इस परदेस में? जब तक नौकरी हाथ में रहती है, दूसरी नौकरी के प्रस्ताव आते रहते हैं। लेकिन हाथ से नौकरी जाते ही सारे प्रस्ताव भी बंद हो जाते हैं। कोई बात करने को तैयार भी होता है तो पिछली तनख़्वाह से कम पैसों पर।'' सुमित रुआँसा हो गया।

''बात बिलकुल सच है। हमारी समस्या गंभीर है। इस अनजान शहर में नौकरी के बिना कितना समय काट लेंगे हम? एक महीना? दो महीने? क्या गारंटी है कि दो महीनों में कम्पनी वापस खुल जाएगी या दूसरी नौकरी मिल जाएगी? किसके आगे हाथ फैलाएँगे? और, कोई देगा भी तो क्यों और कब तक?''

सुमित ने हाथों में सर थाम लिया। ''काश! तीन हज़ार रुपयों के लालच में मैंने नौकरी न छोड़ी होती। अब तो वह लोग भी जवाब नहीं दे रहे।''

''ऐसा नहीं कि कोई रास्ता ही नहीं हमारे आगे। एक रास्ता है।''

''कौन–सा रास्ता?'' सुमित उत्सुक हो गया।

''बच्चों को पढ़ाने का।''

''मैं भला बच्चों को क्या पढ़ाऊँगा? और उससे क्या कमाई हो जाएगी?''

''बच्चे मुझसे बहुत सारे विषय पढ़ते हैं, पर कुछ विषय पढ़ने किसी दूसरे के पास जाते हैं। मुझे मालूम है, आपको वे सारे विषय बड़ी अच्छी तरह से आते हैं। और रही पैसों की बात, तो वो कुछ इतने कम भी नहीं।''

''देखो! क्या गारंटी है कि बच्चे मुझसे पढ़ेंगे? और कितने पैसे मिल जाएँगे इस माथापच्ची से?''

''बच्चों को अभी दो जगहों पर जाना पड़ता है। अगर सारे विषय एक ही छत के नीचे अच्छी तरह पढ़ा दिए जाएँ तो वे कहीं और क्यों जाएंगे? रही कमाई की बात, तो हर बच्चा दो सौ रुपए देता है।''

''वही तो! छः–सात बच्चों को पढ़ा भी दिया तो क्या मिलेगा? चौदह सौ रुपए?''

“बच्चों की संख्या छः–सात नहीं, तीस है। आपने उस दिन सिर्फ़ एक बैच देखा था। जहाँ कुछ नहीं मिल रहा, वहाँ छः हज़ार रुपए मिल जाएँगे। दफ़्तर जाने का ख़र्च भी बचेगा। हम तो तीन हज़ार के लालच में शहर और लगी–लगाई नौकरी छोड़ आए थे! साल बीतते–न–बीतते हमारे पास बहुत से बच्चे आने लगेंगे।”

“छः हज़ार! कहाँ बारह हज़ार की नौकरी और कहाँ छः हज़ार की कमाई! ... लेकिन ये कमाई अपनी होगी। आत्म सम्मान की होगी। किसी का भविष्य बनाने की होगी। कम्पनी खुलने या दूसरी नौकरी की उम्मीद में बैठने से कहीं अच्छा है कुछ सार्थक करना। ठीक है!” सुमित उत्साहित हो गया।

शाम हो रही थी। सौम्या ने बत्ती जला कर भगवान के आगे हाथ जोड़े। सुमित ने भी हाथ जोड़े। ढाक की आवाज़ और जयजयकार सुनाई दी। दुर्गा की प्रतिमा पंडाल में स्थापित होने जा रही थी।

सुधा *

पाँच काउंटर्स का छोटा–सा एक बैंक। एक छोर पर कैश लेने देने वाले बाबुओं के लकड़ी से घिरे केबिन। उसके बाद तीन बाबुओं के बैठने की जगह। दूसरे छोर पर मैनेजर का कमरा। इतना सारा तामझाम मात्र पच्चीस फीट में समाहित! ग्राहकों के लिए पाँच फीट की अपार जगह!

बैंक के इर्द–गिर्द पाँच किलोमीटर तक आबादी का नामोनिशान न था। बैंक, जैसे, साथ लगे आर्मी कैम्प की सहूलियत के लिए ही बनाया गया था। बैंक से बाहर निकलते ही युद्ध में जीता दुश्मनों का एक टैंक दीखता, फ़ौलादी ज़ंजीरों से घिरा, अकेला, झेंपा हुआ सा। अक्सर सैनिकों की कवायद की आवाज़ भी सुनाई देती।

अगर आप यह समझ रहे हैं कि इलाहाबाद के एक कोने मे छुपे इस बैंक में बड़ी शांति का वातावरण रहता होगा, चैन की वंशी बजती होगी, तो बात सरासर ऐसी नहीं है। इस बैंक में इतनी चिल्लपों मचती थी, इतना सिर फुटव्वल होता था, कि क्या बताऊँ! कभी–कभी तो नौबत हाथापाई तक उतर आती। अब, पिछले महीने की सोलह तारीख़ की घटना को ही लीजिए। इतनी भीड़ थी बैंक में, कि लोगों की कतार मुख्य दरवाज़े से दस फुट बाहर तक पहुँच गई थी। गर्मी का उमस भरा मौसम। उस पर, सूरज इस ज़िद पर अड़ा था शायद, कि कल चाहे दिन भर बादलों के नर्म बिस्तर पर सुस्ताऊँ, पर आज तो अपनी तपिश से सबको झुलसा कर ही दम लूँगा।

सिर पर चमकता सूरज, पैरों के नीचे धूल–मिट्टी–कंकड़ का शहरी कालीन, और साँस लेने को आसपास के खेतों से आती गर्म हवा मिश्रित धूल। रही–सही कसर पसीने की अविरल धार ने पूरी कर दी थी। भीड़ के पसीने की मात्रा देख कॉर्पोरेशन के नल को इन्फ़ीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स हो जाता। ललाट, बाल, गर्दन, बाहें और गंजों के सर पसीने में यूँ चिपचिपाए हुए थे जैसे तेल में भूँजे बैंगन को कड़ाही से निकले घंटे–दो–घंटे बीत चुके हों।

ज़ाहिर है, लोगों के तन पर कपड़े गीले ज़्यादा थे, सूखे कम। दिल्ली होती, तो तीन–तीन रुपयों में नारियल की एक सरीखी कटी गरी बेचने वाला आ जाता। कलकत्ता के झालमूढ़ीवाले और भिखारी इस बिज़नेस ऑपरच्यूनिटी को एक्सप्लॉइट करते। मुंबई में सींगदाना और रेनबो सैंडविच की फेरी लगाने वाले चक्कर लगा लेते।

ख़ैर, इलाहाबाद इलाहाबाद है; दिल्ली, कलकत्ता या मुंबई नहीं। साहित्यकारों का गढ़ हुआ करता था इलाहाबाद एक ज़माने में। यह अलहदा बात है कि अब साहित्य नाममात्र को रह गया है वहाँ; अलबत्ता कारें ज़रूर ज़्यादा हो गई हैं।

इलाहाबाद के इसी गौरवशाली अतीत से प्रभावित हो कर, या टार्गेट पूरा करने की मजबूरी से परेशान हो कर; न जाने कब एक नौजवान भीड़ के पास पहुँच गया। उसके पैरों में थे पॉलिश किए जूते, जिनका अपर सोल का मोह कई बार त्याग चुका था। आमतौर पर ऐसे जूते कबाड़ीवाले या कूड़ेदान की हिफ़ाज़त में चिरनिद्रा में लीन हो जाया करते हैं। पर यहाँ तो बात ही कुछ और थी। नौजवान के जूते कभी कीलों और कभी सिलाई से अपने वजूद को कायम रखे हुए थे। नौजवान के काले ट्राउज़र्स पर पसीने की लकीरें सूख कर सफ़ेद धारियों का रूप धारण कर चुकी थीं। मटमैली कमीज़ और उसके ऊपर गहरे नीले रंग की टाई, जिसकी नॉट के पास का हिस्सा मैल से काला हो चुका था, नौजवान की खस्ताहाली दबे शब्दों में बयान कर रहे थे। नौजवान ने हैट भी लगाया हुआ था – गर्मी से बचने के लिए या किसी लोकप्रिय फ़िल्मी हीरो की नक़ल उतारने के लिए – निश्चय करना मुश्किल था। पर एक बात तो थी! उसकी इस वेशभूषा ने हर किसी का ध्यान आकृष्ट किया।

जैसा कि बच्चनजी कहते थे, हिन्दी फ़िल्मों में तो तीन घंटे में पोइटिक जस्टिस मिल जाता है, जबकि असली ज़िंदगी में या तो बहुत देर से मिलता है या फिर मिलता ही नहीं। फ़िल्में अलग हैं, यथार्थ अलग। तो, हमारे इस नौजवान का इस्तकबाल किसी फ़िल्मी हीरो की तरह नहीं हुआ। कुछ लोगों ने उसे ऐसे देखा मानो वह शीशे का बना हो और उसके आरपार देखा जा सकता हो। कुछ ने उससे नज़रें चुराईं। कुछ ने उसे शक़ की निगाहों से देखा। कुछ डरे हुए भी मालूम पड़े, मानो नौजवान एड्स का वायरस लिए घूम रहा हो।

नौजवान को इस रूखे अंदाज़ की शायद लत पड़ चुकी थी। वह लोगों के आक्रोश, असुविधा और असहयोग को नकार एक–एक व्यक्ति के पास जाने लगा।

हर नए शख़्स के पास जा कर वह मुस्कुराता, सर थोड़ा झुकाता, और कहने लगता – "सर! आप अपने बच्चे की फ़ीस जमा करने के लिए खड़े हैं। आपके बच्चे के लिए हमारी कम्पनी ने प्रोमोशन के तौर पर यह इन्साइक्लोपीडिया निकाला है। दाम है सिर्फ़ चार सौ पचास रुपया। यही इन्साइक्लोपीडिया बाज़ार में नौ सौ रुपए में मिलता है। और भी बुक्स हैं। दिखाऊँ, सर?"

यह मोनोलॉग बड़ी अच्छी तरह रटा हुआ था उसे। हर नए आदमी के आगे सर झुकाते ही जैसे कहीं कोई बटन दब जाता उसके अंदर, और रिकॉर्ड बज उठता। उसे इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता था कि किसी आम हिंदुस्तानी कतार की तरह इस कतार में भी लोग एक दूसरे के इतने पास खड़े थे कि किसी का जूता किसी की चप्पल पर टिका था, तो किसी की कोहनी किसी की पसलियों में घुसी जा रही थी। कोई अपने पीछे खड़े व्यक्ति की साँसें अपनी गर्दन पर महसूस कर रहा था, तो किसी का ब्रीफ़केस आगेवाले के पैरों से बारबार टकरा रहा था।

नौजवान का मोनोलॉग कम–से–कम पाँच बार तो विविधभारती की विभिन्न सभाओं की तरह साफ़–साफ़ सुनाई दे चुका था। सबसे आगे खड़े व्यक्ति ने बात पूरी सुने बिना हथेली यूँ हिलाई, जैसे मक्खी उड़ा रहा हो। दूसरा व्यक्ति साइकिल और इन्साइक्लोपीडिया के बारीक अंतर को समझ नहीं पाया और बोला, "नौ सौ रुपए की चीनी साइकिल फेल है बाज़ार में। बच्चा एक दिन भी चढ़ नहीं पाएगा।"

हर आदमी की फ़ितरत अलग, प्रतिक्रिया अलग! धीरे–धीरे नौजवान सफ़ारी सूटधारी एक सज्जन के पास पहुँच गया। नौजवान कुछ बोल पाता, उसके पहले ही सफ़ारी सूटवाले सज्जन बोल उठे – "अरे, जाओ!"

बात थोड़ी ज़्यादा ही रुखाई के साथ कही गई थी। नौजवान के अहम को ठेस लगी। उसने कुछ कहने की कोशिश की। सफ़ारी सूटवाले सज्जन का पारा आसमान पर पहुँच गया। उन्होंने आव देखा न ताव, नौजवान को धकेला, उसका कॉलर पकड़ लिया, और एक धौल जड़ दिया उसके पेट में। नौजवान लड़खड़ाया। उसकी किताबें गिर पड़ीं।

सूट वाले सज्जन पहली सफलता के उत्साह में नौजवान पर फिर झपटे। कतार के सारे लोग इस मुफ़्त तमाशे को दिलचस्पी से देखने लगे। उनके लिए यह सब किसी फ़िल्म के मुफ़्त ट्रेलर से कम थोड़े–ही था! इससे पहले कि सफ़ारी सूट वाले सज्जन अपनी युद्ध कला का एक–आध नमूना और पेश करते, एक ज़नाना आवाज़ गूँजी – "यह क्या कर रहे हैं आप?"

जब सब हाथापाई से लुत्फ़ंदोज़ हो रहे थे तभी चालीस साल के आसपास की इस महिला का पदार्पण हुआ था। सफ़ेद साड़ी, सफ़ेद ब्लाउज़, दोनों पर सफ़ेद कढ़ाई, और धूप से बचने को काला चश्मा, जो आँखों की बजाय उसके माथे की शोभा बढ़ा रहा था।

सफ़ारी सूट वाले सज्जन सकपकाए, नौजवान लड़खड़ाता हुआ अपनी टाई ठीक करने लगा, और बाक़ी लोग सकते में आ गए। एक मनचले ने चुटकी ली – "यह तो अमरीका–इराक़ युद्ध हो गया!"

सफ़ारी सूटधारी सज्जन को सुपरपावर से अपनी तुलना एक न भाई। वे घायल शेर की तरह गरजे – "जानता नहीं मैं कौन हूँ?"

महिला ने कहा, "आपके व्यवहार से आपका परिचय पहले ही मिल चुका! चलिए, उठाइए इस लड़के की किताबें!"

अब तक बैंक मैनेजर भी बाहर आ गया था। उसके पीछे–पीछे, लिप्सटिक लगाए बैंक की महिला चपरासी भी बाहर आ गई थी। बैंक मैनेजर अपनी तोंद सँभालते हुए बोला, "मैडम! आप यहाँ क्यों खड़ी हैं? अन्दर जाइए! औरतों के लिए अलग लाइन है।"

फिर महिला चपरासी से मुख़ातिब होता हुआ बोला, "ले जाइए इनको अंदर।"

महिला चपरासी मैनेजर को अकेला छोड़ कर अंदर नहीं जाना चाहती थी शायद। उसने एक बार साड़ीवाली महिला को देखा, एक बार मैनेजर को। लेकिन साड़ीवाली महिला को जैसे कुछ सुनाई ही नहीं दिया। वह रौबदार आवाज़ में बोली, "सुना नहीं आपने? उठाइए इस लड़के की किताबें!"

सफ़ारीवाले साहब ढिढाई पर उतर आए। गुटके से काले दाँतो को भन्नाए कुत्ते की तरह दिखा कर बोले, "काहे उठाएँ? आप हैं कौन? सरोजिनी नायडू? कि झाँसी की रानी?"

"कि रजनी?" मनचले ने फिर फब्ती कसी।

"मैं सुधा हूँ। और कुछ पूछना हो तो बाद में पूछना, पहले उठाओ इनकी किताबें!"

लोगों और भैंसों में कोई ख़ास फ़र्क नहीं होता। जहाँ पहली भैंस मुड़ी, बाक़ी भी मुड़ जाती हैं। यहाँ भी कुछ ऐसा ही हुआ। एक सज्जन बोले, "मैडम का नाम–पता जान कर क्या करेगा? उठा किताब!"

बस, बाक़ी लोग भी बोल उठे, "उठाओ किताब!"

मैनेजर शांति बहाली की सफलता पर संतुष्ट हो कर लौटने लगा। महिला चपरासी भी लौटने लगी। तभी सुधा ने कहा, "एक मिनट! हमलोग कब तक ऐसे खड़े रहेंगे?"

मैनेजर अपनी तोंद का विस्तार लिए एक सौ अस्सी अंश का कोण बनाते हुए घूम गया। महिला चपरासी भी सवालिया शक्ल लिए घूम गई। मैनेजर पर दागे गए सवाल को उसने झेला, "आापको तो पहले ही कहा कि आपकी लाइन अलग है। जाइए, लगिए!"

सुधा किसी दूसरी ही मिट्टी की बनी थी। बोली, "नहीं! अलग लाइन क्यों? दो–दो घंटे से लोग खड़े हैं लाइन में यहाँ। कोई औरत आ जाए और उसका काम जल्दी हो जाए, इससे बाक़ी लोगों को क्या फ़ायदा होगा?"

मैनेजर ख़फ़ा हो गया। "तो क्या करें? लगा तो हुआ है आदमी!"

सुधा बोली, "एक आदमी काफ़ी नहीं तो और लोग लगाइए काम पर। तीन–चार घंटे आदमी अगर सिर्फ़ फ़ीस देने के लिए खड़ा रहे, तो बाक़ी कामों में कितना हर्ज़ होता है, पता भी है आपको? अगर आपके आदमी ठीक से काम करना नहीं जानते तो दूसरे आदमी लगाइए काम पर! और अगर आपसे ये प्रॉब्लम हल नहीं होती, तो हमें बताइए। आपके जनरल मैनेजर के पास इसका हल होगा ..."

मैनेजर बड़बड़ाया, "अब कैसे करें? लोग तो बस हुक्म चलाने लगते हैं!"

सुधा फिर बोली, "तो ठीक है! हम सारे लोग चलते हैं स्कूल के प्रिंसिपल के पास। उन्हें बताएँगे कि उन्होंने ग़लत बैंक का चुनाव किया है। और आपके जनरल मैनेजर को बताएँगे कि उन्होंने ग़लत आदमी को मैनेजर की जगह बिठा दिया है।"

कतार के बाक़ी लोग भी उत्तेजित हो गए। "मैडम ठीक कहती हैं ... मैं तो बहुत पहले से ही ये करना चाहता था ..." वगैरह–वगैरह।

घोषणाओं की झड़ी लग गई, तो मैनेजर की सिट्टी–पिट्टी गुम हो गई। "अच्छा, चलिए! कोई व्यवस्था करते हैं।"

उम्मीद है कि फ़ीस जमा करनेवालों को अब तक़लीफ़ न होती होगी। सुधा के प्रयास से सबको सुध आ गई होगी।

मिस्टर पहेलीराम *

प्यारे बच्चो! यहाँ आसपास बैठे बच्चों को तो हम बख़ूबी जानते हैं; लेकिन आप, जो ये कहानी रेडियो, ट्रांज़िस्टर या किसी और ज़रिए से सुन रहे हैं, हम आपको देखे बिना भी एक बात बड़े विश्वास के साथ कह सकते हैं आपके बारे में। वह बात ये है कि आपका कोई–न–कोई ख़ास दोस्त या सहेली ज़रूर है। बल्कि, आपमें से बहुतों के कई ख़ास दोस्त या सहेलियाँ हैं। जिसकी कोई बात हमें अच्छी लगती है, हम उसे अपना दोस्त या सहेली बना लेते हैं। अगर आपके दोस्तों, सहेलियों की संख्या दस, पंद्रह, या उससे भी ज़्यादा है, तो इसका मतलब यह हुआ कि आपकी बहुत सारी बातें उन्हें अच्छी लगती हैं। हाँ, अगर आप मिस्टर पहेलीराम जैसे हों, तो बात दूसरी है।

जैसा कि नाम से ज़ाहिर है, मिस्टर पहेलीराम का असली नाम कुछ और है। उनके पहेलियाँ पूछने और बूझने के शौक़ ने उनका यह अजीब–सा नाम पैदा कर दिया। कम–से–कम पच्चीस दोस्त और सहेलियाँ हैं उनकी। इन ख़ास दोस्तों के अलावा, मिस्टर पहेलीराम के घर के दरवाज़े उन सभी के लिए हमेशा खुले हैं जो पढ़ाई में उनकी मदद चाहें या क्विज़ की तैयारी में। बच्चो, अगर आप भी मिस्टर पहेलीराम का दोस्त या सहेली बनना चाहते हैं, उनकी मदद चाहते हैं, या उन्हें चैलेंज करना चाहते हैं तो इस कहानी को ध्यान से सुनिए और अंदाज़ लगाइए कि मिस्टर पहेलीराम कितने साल के हैं, उनका असली नाम क्या है, और वे लड़के हैं या लड़की!

वैसे, मिस्टर पहेलीराम के बारे में एक बात बताएँ आपको? उनका दिमाग़ स्विस चाकू से भी ज़्यादा तेज़ है लेकिन व्यवहार ताज़े केक जैसा कोमल, मृदु और मनभावन है। अभी कुछ ही दिन पहले की बात है। प्रज्ञा उनके पास गई और बोली, "मैं बहुत परेशान हूँ – मैं स्कूल में क्विज़ की टीम में शामिल हूँ. . ."

"तो इसमें परेशान होने की क्या बात है? हमारे स्कूल में भी क्विज़ बड़े उत्साह से होती है। दस साल तक की उम्र के बच्चों का एक

ग्रुप बनता है, बारह से चौदह साल के बच्चों का दूसरा ग्रुप और चौदह साल से बड़े बच्चों का तीसरा, यानी सीनियर ग्रुप।"

"लेकिन तुमने तो पिछले साल क्विज़ में भाग नहीं लिया?"

"हाँ! मेरे लायक कोई ग्रुप था कहाँ? ख़ैर, प्रज्ञा, तुम अपनी प्रॉब्लेम बताओ। तैयारी तो पूरी है न?'

"टेढ़े–मेढ़े सवालों का जवाब खोजने में परेशानी हो रही है।" प्रज्ञा बोली।

"टेढ़े–मेढ़े सवाल ... जैसे?"

"जैसे, वह कौन–सा देश है जिसके नाम का पक्षी भोजन सामग्री है?"

मिस्टर पहेलीराम ने बालों में उँगलियाँ फिराईं, छत के कोने को थोड़ी देर देखा, और कहा – "टर्की! टर्की देश का भी नाम है और चिड़िया का भी। है न?"

सपना ये बातें सुन रही थी। बोल पड़ी, "अच्छा, तो यह बताओ कि हमारे देश से जितनी दूर उत्तर–पश्चिम पर टर्की है, क़रीब उतनी ही दूर, उल्टी तरफ़, यानी दक्षिण–पूर्व की ओर, कौन–सा देश है? किसी भी देश का नाम न ले लेना! उस देश का नाम बताना जो इसी साल जन्मा है।"

मिस्टर पहेलीराम की तलवार की धार जैसी तेज़ बुद्धि के लिए यह सवाल गाजर–मूली जैसा साबित हुआ। जवाब झट हाज़िर था उनका – "ईस्ट तैमूर, इसी साल मई में पैदा हुआ।"

रविवार का दिन, ग्यारह बज कर पच्चीस मिनट का समय। सभी बच्चे मिस्टर पहेलीराम के ट्रांज़िस्टर पर अपना प्यारा कार्यक्रम, बालसंघ, सुन रहे थे। तभी अभिषेक ने ताली बजाई। बाक़ी बच्चे समझ नहीं पाए, पर हर्ष बोल उठा, "एक बहादुर ऐसा वीर, गाना गा कर मारे तीर!"

ऐमन ने कहा, "न तो ये बहादुर है, न गाना गा रहा है, और तीर तो कोई चला ही नहीं ..."

अश्विनी बोला, "यह अक़्ल का डिपार्टमेंट है, पहेली वाला। तुम लड़कियों के बस की बात नहीं यह!"

आस्था ने अक़्ल भिड़ाई, "गाना गा कर मारे तीर? रेडियो!"

"बिलकुल ग़लत!" हर्ष के गर्व और आनंद की सीमा न थी।

"बुल ... डोज़र", प्रिया ने अटकते हुए कहा।

"देखा, लड़कियों के लिए पहेलियाँ बस पहेलियाँ रहेंगी। उन्हें तो

सिर्फ़ गुड्डे–गुड़ियों का ब्याह रचाना चाहिए!" अश्विनी ने घोषणा की, हालाँकि सही जवाब शायद उसे भी मालूम नहीं था।

"ये बात बिलकुल ग़लत है कि लड़कियाँ पहेलियाँ हल नहीं कर सकतीं। एक बार रुचि पैदा हो जाए तो पहेलियाँ चुटकियों में हल हो जाती हैं। पहेलियाँ हल करने से दिमाग़ तेज़ होता है, ज्ञान बढ़ता है और विश्लेषण करने की क्षमता तो इतनी ज़्यादा हो जाती है कि आगे चल कर बड़ी–से–बड़ी समस्या का समाधान निकल आए।" मिस्टर पहेलीराम ने अपने कॉलर की बाईं ओर लगे बटन से खेलते–खेलते एक छोटा–मोटा भाषण ही दे डाला।

अभिषेक बोला, "भाषण तो इतना लम्बा सुन लिया। पहेली का जवाब नहीं मिला लेकिन अब तक!"

"आपकी पहेली का जवाब है, मच्छर!"

"अरे हाँ! मच्छर ही गाना गाते हुए, यानी गूँ–गूँ करते हुए काटता है। एक बहादुर ऐसा वीर, गाना गा कर मारे तीर – वाह, क्या बात है!" नितिन बोला।

"अच्छा! यह क्या है, बूझो तो जानें – टेढ़ी–मेढ़ी गलियाँ, बीच में खाई!"

"यह कान है मेरे भाई, लेकिन ये पहेली तुमने कहाँ से चुराई?" रम्या हँसते हुए बोली।

अपनी दो पहेलियाँ इतनी आसानी से बूझी जाती देख लड़के थोड़ा खीझ गए थे। शायद इसी खीझ का नतीजा था, कि अमित पूछ बैठा, "वह कौन–सा महीना है जिसमें लड़कियाँ सबसे कम बोलती हैं?"

"क्या ... क्या ..." निधि का मुँह खुला रह गया।

"वह कौन–सा महीना है जिसमें लड़कियाँ सबसे कम बोलती हैं?" – अमित ने हर शब्द पर ज़ोर दे कर कहा।

दीपशिखा बोली, "मैं तो हमेशा–ही कम बोलती हूँ, पर सबसे कम कब बोलती हूँ ..." – वह सर खुजलाने लगी।

सचिन दीपशिखा के करीब बैठा था। जल्दी से खिसक गया – "आप कम बोलें या ज़्यादा, पर हाथी जितनी विशाल अपनी जुओं को न जगाएँ। उन्हें अपने दिमाग़ की ही तरह सोने दें!"

"अरे चुप! लड़कियाँ ही नहीं, लड़के भी एक महीने में सबसे कम बोलते हैं, क्योंकि उस महीने में दिन ही सबसे कम होते हैं।"

"और वो महीना होता है फ़ेब्रुअरी का!" अनुश्री ने दीपशिखा के मुँह की बात छीन ली।

"हाँ! फ़ेब्रुअरी के महीने में सबसे कम दिन होते हैं; इसलिए उस महीने में हम सबसे कम दिन बोलते हैं। लेकिन, बोलते–बोलते हम कभी–कभी बहुत बड़ी बातें भी बोल जाते हैं। जैसे, देखो न, 'चीविंग गम चबाई, बिल चुकाया, हिसाब नदारद!' – ये शब्द हैं तो सीधे–सादे, पर इनमें एक ग्रंथ का नाम छुपा है।" रवि बोला।

"चीविंग गम खाई, बिल चुकाया ... क्या है पहेली, ज़रा फिर से तो कहना" – आदर्श ने अनुरोध किया।

"ठीक है, लेकिन सिर्फ़ एक बार और बताऊँगा। चीविंग गम चबाई, बिल चुकाया, हिसाब नदारद।" रवि ने कहा।

"बाईबल!" अभिनव ख़ुशी से उछल पड़ा। "अच्छा! अदिति, इस पहेली में उस चीज़ का नाम है जिसका इस्तेमाल लड़कियाँ या औरतें ज़्यादा करती हैं। वैसे, एक बात अजीब है। तुम्हें उस चीज़ का इस्तेमाल जब भी करना होता है, तुम उसे दे देती हो।"

"मुझे जब भी उस चीज़ का इस्तेमाल करना होता है, मैं उसे दे देती हूँ? मैं क्यों दूँ? इतनी दानवीर मैं नहीं!"

"पहेली तो सुन लो पहले! 'मैं गई थी वह लेने, वह दे रही थी। अगर वह नहीं देती, तो मैं ले आती।'"

"जब वह दे रही थी, तो ली नहीं; और अगर वह नहीं देती तो ले आती! ये तो सरासर डकैती हुई!" मयंक ने राय ज़ाहिर की।

"ये डकैती नहीं है। ये है आपका अदना–सा झाड़ू! झाड़ू ही वह चीज़ है जिसके इस्तेमाल को झाड़ू बुहारना या झाड़ू देना कहते हैं। अब, जब कोई झाड़ू दे रहा है, यानी उसका इस्तेमाल कर रहा है, तो उसे लेना ठीक नहीं। इसीलिए, अगर वह झाड़ू का इस्तेमाल नहीं कर रही होती, या झाड़ू न दे रही होती, तो उसे लेना ठीक होता।" मिस्टर पहेलीराम ने समस्या–समाधान किया ही था कि उनकी मम्मी कमरे में आईं – "अनुपम, आशीष, स्मृति! तुम तीनों भाई–बहन बालसंघ ख़त्म होते ही तैयार हो जाना। बुआ के घर जाना है।"

मम्मी के वापस जाते ही अनुपम ने पूछा, "अच्छा! एक बैट और एक बॉल का दाम है इक्कीस रुपए। बैट बॉल से बीस रुपए मँहगा है। बैट का दाम क्या है, और बॉल का दाम क्या है?"

"बैट है बीस रुपयों का और बॉल एक रुपए की", सोनम झट से बोली।

"नहीं! उस हालत में बैट बॉल से बीस रुपए नहीं, उन्नीस रुपए मँहगा होगा!' गौरव ने अपने चश्मे को उँगली से ऊपर किया और बोला,

“दोनों दामों में फ़र्क बीस रुपया और जोड़ इक्कीस रुपया। तो एलजेब्रा के इक्वेशन से दो बैटों का दाम इकतालीस रुपया और दो गेंदों का दाम एक रुपया हुआ। यानी बैट बीस रुपए पचास पैसे का और बॉल सिर्फ़ पचास पैसे की।”

आभा बड़ी देर से चुपचाप कभी बालसंघ सुन रही थी तो कभी बच्चों की बातें। अब उससे रहा न गया। बोल उठी, “अभी अभिनव ने झाड़ू के बारे में पूछा था यह कह कर कि झाड़ू का इस्तेमाल लड़कियाँ और औरतें ज़्यादा करती हैं। अब तुमलोग इस पहेली का हल बताओ, इसका कनेक्शन लड़कों से ज़्यादा है। पहेली है – कीड़ा है या है यह खेल, ये तो आप ही जानें; लेकिन इसके पीछे हो गए सारे लोग दीवाने!”

“हेलिकॉप्टर!” अनिल की आवाज़ गूँजी।

“वाह, वाह! आपकी अक्ल भी हेलीकॉप्टर में बैठ कर कहीं उड़ गई! हेलिकॉप्टर कौन–सा खेल है भला?”

“हाँ, ये बात तो है! कीड़ा भी है, खेल भी है, और सब उसके पीछे दीवाने हैं – ऐसा कौन–सा कीड़ा है?” अनुपम सोचने लगा।

बालसंघ कार्यक्रम समाप्ति पर था। स्टूडियो में आए बच्चे अपना परिचय दे रहे थे, शौक़ बता रहे थे। एक बच्चे का शौक़ था क्रिकेट खेलना। बस, पहेली ख़ुद–ब–ख़ुद हल हो गई। सभी बच्चे बोल उठे – “अरे हाँ! क्रिकेट झींगुर को कहते हैं और लोग तो इस खेल के पीछे पागल हैं ही। वाह, आभा, वाह! बड़ी अच्छी पहेली है तुम्हारी!’

बच्चो! आभा को वाहवाही तो मिल गई, पर आपको वाहवाही तब मिलेगी जब आप इस कहानी की शुरुआत में पूछे गए तीनों सवालों का जवाब हमारे सही जवाब से मिलाएँगे। पहला सवाल था, मिस्टर पहेलीराम की उम्र क्या है। अगर आपने कहानी ध्यान से सुनी हो, तो याद होगा कि पिछले साल मिस्टर पहेलीराम की उम्र का कोई ग्रुप नहीं था स्कूल की क्विज़ टीम में। दस साल तक, बारह से चौदह साल तक, और चौदह साल से बड़े बच्चों का ग्रुप स्कूल में था। यानी, ग्यारह साल के बच्चों का कोई ग्रुप नहीं था। मतलब, पिछले साल मिस्टर पहेलीराम की उम्र थी ग्यारह साल, और इस साल उनकी उम्र है बारह साल!

दूसरा सवाल, मिस्टर पहेलीराम किसी लड़के का नाम है या लड़की का। मिस्टर पहेलीराम के कॉलर की बाईं ओर बटन ये बताता है कि वे एक लड़की हैं।

अंतिम सवाल है उनके नाम के बारे में। इसका जवाब तो उनकी मम्मी ने तब दे दिया जब उन्होंने अनुपम, आशीष और स्मृति, तीनों भाई–बहनों को संबोधित किया। अनुपम और आशीष लड़कों के नाम हैं,

जबकि मिस्टर पहेलीराम का असली नाम लड़की का होना चाहिए, यानी स्मृति होना चाहिए।

बच्चो, कैसी लगी ये थोड़ी लम्बी पहेली? पहेलियों से कतराएँ नहीं, उनका हल खोजें। जीवन की कोई भी समस्या फिर पहेली नहीं रहेगी आपके आगे!

जन्मदिन का तोहफ़ा *

बच्चो! तुम्हें कहानियाँ पढ़ना, सुनना अच्छा लगता है? तुम्हें कहानियाँ सुनना अच्छा लगता है, और मुझे कहानियाँ सुनाने में बड़ा मज़ा आता है। और, आज की कहानी सुनाने में तो और भी ज़्यादा मज़ा आएगा। जानते हो, क्यों? आज की कहानी एक बड़ी प्यारी–सी लड़की के बारे में है। जितनी प्यारी लड़की थी, नाम भी उतना–ही प्यारा था। स्वाति! यही कोई दस साल की थी वह। अब अगर तुम ये पूछो कि स्वाति में ऐसा क्या था जिससे वह बड़ी प्यारी लगती थी, तो, बच्चो, देखने में तो उसमें ऐसा ख़ास कुछ भी नहीं था। न वो दुबली थी, न मोटी; न लम्बी थी न छोटी; न काली थी न गोरी – लेकिन फिर भी बड़ी प्यारी लगती थी। ऐसी, कि अगर तुम्हारे पास बैठ जाए, तो तुम भी उससे बात किए बगैर न रहो। अब ऐसा थोड़े ही होता है कि हर सुंदर बच्चा प्यारा लगे, और बाक़ी बच्चे प्यारे नहीं लगें। है, न? हम, दरअसल उन्हें प्यार करते हैं जिनके विचार सुंदर हों, जिनका मन सुंदर हो, जो मीठा बोलें, मुस्कुरा कर बात करें, सबका भला करने की कोशिश करें और किसी को दुःख न पहुचाएँ। मैं तो, बच्चो, हमेशा यही कोशिश करता हूँ कि सबसे अच्छा बर्ताव करूँ, ताकि सब मुझसे प्यार करें। अगर तुम भी चाहते हो कि सब तुमसे प्यार करें; तो तुम भी सबके साथ अच्छा बर्ताव करना। समझ गए?

यह लो! बात हो रही थी स्वाति की, और हम ले बैठे कोई दूसरी–ही बात। स्वाति को गुलाबी रंग बेहद पसंद था। गुलाबी रिबन, गुलाबी फ्रॉक, गुलाबी मोज़े, गुलाबी जूते – ज़्यादातर वह गुलाबी रंग से ही लैस रहती। वैसे, कहते हैं, हममें से हर किसी को कोई–न–कोई दुःख, कोई–न–कोई तक़लीफ़ तो होती ही है। है, न! तो बच्चो, हमारी स्वाति को भी एक दुःख, एक तक़लीफ़ थी। जहाँ सारे बच्चे बेसब्री से छुट्टियों का इंतज़ार करते, वहीं, चोरी–छुपे हमारी स्वाति यह मनाती कि छुट्टियाँ कभी हों ही नहीं।

इसकी वजह यह थी कि छुट्टियों में स्वाति अकेली पड़ जाती थी। उसके पापा–मम्मी काम पर चले जाते, और वह अपनी आया झूमा के साथ वादी के कोने में बने अपने मकान में अकेली रह जाती। खिड़की के पास खड़े हो कर, हाथ हिला–हिला कर, स्वाति मम्मी–पापा को तब तक टाटा करती जब तक वे सड़क पर दिखाई देते। पापा–मम्मी जब आँखों से ओझल हो जाते, तब स्वाति खिड़की के पास खिलौनों से खेलती। कभी गुड्डे–गुड़िया का ब्याह रचाती तो कभी गुड़िया को पार्टी ड्रेस पहनाती। कभी किसी कॉमिक को दोबारा पलटती, तो कभी अपनी मम्मी की किताबें पढ़ने की कोशिश करती। कभी रेडियो सुनती तो कभी टेप पर गाने, पर, उसका मन किसी भी चीज़ में ज़्यादा देर तक नहीं लगता। पापा का स्नेह, मम्मी का प्यार, सहेलियों की चुहल – इन सबके मुक़ाबले बेजान गुड्डे–गुड़िया, किताबें और रेडियो भला कब तक उसका मन बहलाते? वह घंटे–डेढ़ घंटे में ही परेशान हो जाती और आया को पुकारती – "झूमा! मम्मी कब आएँगी?"

"बाबा, मम्मी तो शाम को आएँगी।"

"झूमा! पापा कब आएँगे?"

"बाबा, पापा भी शाम को आएँगे।"

"तो फिर तुम यहाँ क्या कर रही हो? तुम भी घर जाओ। छोड़ दो मुझे अकेला!"

"बाबा, मैं आपको अकेला कैसे छोड़ दूँ? मम्मी–पापा ग़ुस्सा करेंगे।"

बारह बजते–बजते स्वाति का पारा आसमान छू जाता। वह आया से झगड़ती। कभी दो निवाले खाती, कभी भूखी–ही रह जाती। दोपहर को जब आया सो जाती, स्वाति खिड़की पर एक बार फिर आती। पेड़ पर चहचहाते परिंदों को देखती। साँप जैसी टेढ़ी–मेढ़ी सड़क पर चलते पहाड़ी लोगों को देखती। गाड़ियों को देखती, जो इतनी दूर से नाखून से भी छोटी लगतीं। और फिर उसकी निगाहें अटक जातीं एक छोटे–से मकान पर। दोपहर बाद वह मकान धूप में चमक उठता। उसकी भूरी चिमनी सोने जैसी चमकती, और उसकी छत पर बनी टंकी से लगे स्टील के पाइप चाँदी जैसे चमचमाते।

सफ़ेद रंग का वह मकान आस–पास के हरे बग़ीचे में ऐसा दिखता, जैसे हरे सीप में मोती चमक रहा हो। इतनी सुदर चीज़ दिखे, तो हर कोई देखेगा। लेकिन स्वाति तो उस मकान को बड़े ख़ास अंदाज़ से देखती। जानते हो, क्यों?

क्योंकि दोपहर में जब वह मकान सूरज की किरणों में जगमगाता, तो उसका हरा दरवाज़ा खुलता। बाहर आतीं एक महिला। वह महिला स्याह रंग के एक गाउन में होतीं। सफ़ेद बाल उनके कंधों पर बेतरतीब बिखरे होते। उनके पैरों में ऊनी मोज़े होते, जूते होते, दाएँ हाथ में होती एक छड़ी और बाएँ हाथ में होता एक मग। वैसा मग नहीं जो प्लास्टिक का होता है, जिससे पेड़–पौधों पर पानी डालते हैं। वैसा मग, जो चीनी मिट्टी का होता है, जिसमें चाय–कॉफ़ी पीते हैं। वह महिला भूरे फ्रेम का एक चश्मा पहने होतीं, जिसके शीशे गोल कटे होते। वे दरवाज़े से बाहर आतीं, सूरज को देखतीं, और बग़ीचे में ख़रामा–ख़रामा आगे बढ़तीं। बग़ीचे में एक बेंच थी। वे उस बेंच के हत्थे पर इतने हौले–से छड़ी टिकातीं, जैसे ज़रा–भी ज़ोर से छड़ी रखने पर या तो बेंच टूट जाएगी या छड़ी, या कोई ज़ोरदार धमाका होगा जिससे आसपास के परिंदे और जानवर घबरा जाएँगे। वे धीमे से बेंच के सामने आतीं और उस पर बैठ जातीं अपना गाउन सम्हालते हुए। न जाने कितनी चाय या कॉफ़ी समाती थी उनके मग में। वे घंटा–भर उस मग से चुस्कियाँ लेतीं। बग़ीचे की गिलहरियाँ उन्हें शायद उस बेंच का ही एक हिस्सा समझती थीं। पेड़ से गिरे फल खाने के लिए गिलहरियाँ उन महिला के बहुत क़रीब पहुँच जातीं, पर उन महिला को, जैसे, कोई फ़र्क ही नहीं पड़ता। वे शांत बैठी रहतीं। जब धूप बग़ीचे से सरक कर बाहर फिसल जाती, वे धीमे–धीमे उठतीं, अपनी छड़ी सम्भालतीं, और घर के अंदर दाख़िल हो जातीं। हरा दरवाज़ा बंद हो जाता।

स्वाति को बड़ा कौतूहल होता। एक दिन वह उन महिला को घर के अंदर घुसते देख रही थी कि महिला दरवाज़े पर ठिठक कर घूमीं, और स्वाति की तरफ़ ही देखने लगीं। साँस लेने की आवाज़ बड़े क़रीब से आई। डर के मारे स्वाति को पीठ पर चींटियाँ–सी रेंगती महसूस हुईं। तभी एक आवाज़ आई, "बाबा!"

स्वाति घबराहट में काँप गई। उसका गला सूख गया। लेकिन यह आवाज़ झूमा की थी। स्वाति को घबराया देख झूमा परेशान हो गई। "क्या हुआ बाबा? तबीयत तो ठीक है?"

"वह ... वह ..." स्वाति ने छोटे मकान की ओर इशारा किया।

झूमा ने मकान की तरफ़ देखा। अब तक महिला अंदर जा चुकी थीं। हरा दरवाज़ा बंद हो चुका था। झूमा को कुछ भी अजीब न दिखा।

"'वह' क्या, बाबा?"

"वह, उस मकान में सचमुच कोई रहता है या ..."

झूमा स्वाति के डर का सबब जान गई। “वह! वह तो मिसेज़ मैसी हैं, बाबा।”

“मिसेज़ मैसी कौन हैं? वह ऐसे अकेले क्यों घूमती हैं?”

“मिसेज़ मैसी एक विधवा हैं।”

“विधवा, यानी?”

“चिधवा, यानी जिसके पति का देहांत हो गया हो।”

“ओह!” स्वाति का भय करुणा में बदल गया। “तो, उनका कोई बच्चा नहीं हैं क्या?”, उसने पूछा।

“बाबा, मिसेज़ मैसी के पति भारतीय फ़ौज में थे। सन् 1971 की लड़ाई में वे शहीद हो गए। उस समय मिसेज़ मैसी बाईस–तेईस साल की थीं। उनका एक बच्चा था। एक लड़का। मिसेज़ मैसी उन दिनों दिल्ली में रहती थीं। उन्होंने अपने लड़के को पढ़ाया–लिखाया, लायक बनाया। और एक दिन उनका लड़का भी फ़ौज में भर्ती हो गया। मिसेज़ मैसी उस लड़के की शादी का इंतज़ाम कर रही थीं कि उनका लड़का करगिल सीमा पर शहीद हो गया। अब तो उस बात को भी बरसों गुज़र गए। मिसेज़ मैसी रातों–रात बुड्ढी हो गईं।”

“उन्होने अपने बेटे को फ़ौज में भेज कर ग़लती की न? अगर उनका लड़का फ़ौज में न होता, तो अभी ज़िंदा होता और मिसेज़ मैसी को अकेली नहीं रहना पड़ता।”

“बाबा, ऐसी बातें बुज़दिल करते हैं। मरने को तो आदमी पेड़ से गिर कर भी मर जाता है और नदी में डूब कर भी, पर अपने वतन के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा देने की हिम्मत तो, बस, दिलेरों में ही होती है। मिसेज़ मैसी तो बोलती हैं कि अगर उनका कोई दूसरा लड़का होता, तो उसे भी वे फ़ौज में ही भेजतीं दुश्मनों के दाँत खट्टे करने के लिए।”

“हूँ ऽऽऽ ...”, स्वाति सोच में डूब गई। न जाने क्यों उसे ऐसा लगा जैसे मिसेज़ मैसी उससे कहीं ज़्यादा अकेली हों। काश, वह उनके साथ दिन गुज़ार पाती! लेकिन पापा–मम्मी की सख़्त हिदायत थी कि घर छोड़ कर कहीं न जाना।

शाम होने को थी। झूमा ने खिड़की बंद कर दी। सर्द हवाओं से बीमार पड़ने का डर था वरना। पापा–मम्मी के घर लौटने का वक़्त भी होने वाला था। स्वाति उनका इंतज़ार करने लगी। दो दिन बाद उसका जन्मदिन था। एक साल से स्वाति को इस दिन का इंतज़ार था। कभी सोचती कि गुड़ियों का नया सेट माँगे, तो कभी सोचती कि बेबी

साइकिल माँगे। कभी उसका मन वॉकमैन पर अटक जाता। तुम भी, बच्चो, अपने जन्मदिन पर तोहफ़ों की फ़र्माइश करते हो न?

शाम को मम्मी–पापा के आने से रात बिस्तर पर सोने तक स्वाति उनसे बातें करती रही। अंत में पापा ने पूछा, "हमारी प्यारी बेटी को बर्थ डे पर क्या चाहिए?"

स्वाति के मन में आया कि साइकिल से ले कर वॉकमैन तक सारी फ़ेहरिस्त सुना डाले। लेकिन मिसेज़ मैसी के त्याग की बात सुनने के बाद उसे कुछ भी माँगने की इच्छा न हुई। उसने कहा, "बस, पापा–मम्मी, उस दिन आपलोग जल्दी लौट आइएगा।"

और फिर स्वाति का जन्मदिन आ गया। मम्मी–पापा ने उसे उठाया, प्यार किया, और मम्मी ने एक सुन्दर–सी गुड़िया थमा दी उसके हाथ में। पापा ने उसे बेंत की एक डोलची दी। स्वाति ने डोलची में झाँक कर देखा तो उसकी बाँछें खिल गईं। डोलची में एक छोटा–सा कुत्ता था। सफ़ेद और भूरे बालों वाला वह कुत्ता बटन जैसी आँखों से स्वाति को देख रहा था। स्वाति ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा, तो कुत्ता लपक कर उसकी गोद में बैठ गया और उसकी नाक से नाक रगड़ने की कोशिश करने लगा।

पापा–मम्मी उस दिन जल्दी लौटने का वायदा कर के गए। स्वाति ने नए कपड़े पहने। वह बहुत ख़ुश थी। उसका जन्मदिन जो था! दोपहर में पापा–मम्मी वापस आए। स्वाति गुड्डे–गुड़िया से खेल रही थी। पापा बोले, "और वह कुत्ता क्या हुआ, हमारी स्वाति बिटिया के अकेलेपन का साथी?"

स्वाति उन्हें खिड़की के पास ले गई। पापा, मम्मी और स्वाति ने देखा, सामने छोटा–सा मकान धूप में चमक रहा था। बेंच के हत्थे पर छड़ी टिकी थी, पर बेंच पर मिसेज़ मैसी नहीं थीं। वे बग़ीचे में खड़ी थीं और कुत्ता उनके इर्द–गिर्द उछल रहा था। मिसेज़ मैसी को इतना ख़ुश देख कर स्वाति चहक उठी, "पापा! कल तक मैं अपनी ख़ुशी से ख़ुशी मानती थी। आज दूसरों की ख़ुशी से मुझे इतनी ख़ुशी मिल रही है कि क्या बताऊँ! आपके तोहफ़े ने मुझे ख़ुशी दी और मिसेज़ मैसी का अकेलापन दूर कर दिया।" वह अपने पापा से लिपट गई।

सच है, जो ख़ुशी त्याग में होती है, दूसरों को ख़ुशी दे कर मिलती है, उससे अच्छी कोई ख़ुशी नहीं होती। अगर हर कोई अपने जन्मदिन पर दूसरों को ख़ुशी का तोहफ़ा दे, तो दुनिया में कोई दुःखी नहीं रहेगा।

झूठी शान *

यह कहानी किन्ही राजा–रानी की नहीं, जो घोड़े पर बैठ कर युद्ध करते और फिर किसी ऋषि–मुनि के आश्रम में जा कर वरदान माँगते। नहीं, यह कहानी किसी बंदर–भालू की भी नहीं जो शेर की जगह अपना राजा किसी और को बनाते और फिर किसी मुसीबत में तब तक फँसे रहते जब तक चतुर ख़रगोश उन्हें उस मुसीबत से उबार न लेता। यह कहानी किसी मनगढ़ंत परी या प्रेत की भी नहीं, जो हमारे सुन्दर–सुन्दर, नन्हे–नन्हे, बच्चों का दिल ख़ुश करने को, या उन्हें डराने के लिए सुनाई जाए।

यह कहानी है एक बच्चे की। कहानी क्या है, सच्ची बात है। ग़ौर कीजिए, तो ऐसी कहानियाँ हम सबके बारे में कही जा सकती हैं। आख़िर हम सब में कोई–न–कोई कमी तो होती ही है; कोई–न–कोई ऐसी कमज़ोरी तो होती–ही है जिसे दूर करने या स्वीकार करने की बजाय हम उसे छुपाने की कोशिश करते हैं। यही वजह है जिससे पुकून मुश्किल में फँसा, इस कहानी का जन्म हुआ, और मैं आपके पास पहुँच गया यह कहानी सुनाने!

पुकून! नाम बड़ा अजीब–सा है न? भला इसका क्या मतलब हो सकता है? पुकून बंगाली था। बंगला में उकून कहते हैं खटमल को। लाल–लाल, छोटे–छोटे कीड़े होते हैं खटमल। गद्दों, कुर्सियों, खाटों में छुपे रहते हैं ये। जैसे–ही आप आराम फ़रमाने को बैठें या लेटें, ये खटमल बड़ी मुस्तैदी से आपका ख़ून चूसने लग जाते हैं। उठिए, बत्ती जलाइए और खोजिए, तो खटमल वैसे ही ग़ायब मिलेंगे जैसे गधे के सर से सींग। बत्ती बुझाइए, लेटिए, और खटमल आपके गरमागरम ख़ून का मज़ा वैसे ही लेने लगेंगे जैसे गर्मियों में आप लस्सी, शर्बत या सॉफ़्ट ड्रिंक का मज़ा लेते हैं।

पुकून से सॉफ़्ट ड्रिंक पर कब चली गई बात, पता ही नहीं चला। ख़ैर! जब मैं पुकून से पहली बार मिला, तो, झिझकते हुए मैंने

उससे पूछा, “पुकून! तुम्हारा नाम पुकून क्यों है? उकून का मतलब तो खटमल होता है, मुझे पता है। पर, पुकून का मतलब क्या होता है?”

पुकून ने समझाया कि उसका नाम पुकून नहीं, पुलकेंद्र नाथ है। पुकून तो सहूलियत के लिए उसे पुकारते हैं। उसने ये भी बताया कि उसके नाम और खटमल के बीच कोई सम्बन्ध नहीं। खटमल किस बला का नाम है, उसे पता ही नहीं। उसे तो खाट के बारे में भी मालूम नहीं।

मुझे अचरज हुआ। रेलवे प्लेटफ़ॉर्म की बेंच हो या स्कूल में चपरासी की साढ़े तीन टाँग की कुर्सी या नुक्कड़वाले हलवाई की तेल से सनी–पुती मचिया; मुझे तो इन सभी में खटमल के दर्शन अनचाहे भी अक्सर हुआ करते थे। इधर ये पुकून, उकून यानी खटमल के नाम से मिलता–जुलता नाम होने के बावजूद, खटमलों के बारे में जानता तक नहीं था। यह तो, सरासर, दीपक तले अँधेरा जैसी बात थी! फिर भी, न जाने क्यों, मुझे पुकून अच्छा लगा। मैंने उससे दोस्ती करने की ठान ली।

अगले दो दिन पुकून आया नहीं। मैं परेशान! शायद मुझे उसे खटमलवाली बात नहीं बोलनी चाहिए थी। कहाँ ख़ून चूस–चूस कर मोटे हुए खटमल, और कहाँ वो पतला–दुबला, नाजुक–सी अपनी नाक पर मोटे–मोटे शीशोंवाले स्टीलफ्रेम के चश्मे को सँभाले पुकून! पुकून ने ज़रूर सोचा होगा कि मैं दोस्ती करने के लायक नहीं हूँ।

मुझे पुकून से दोस्ती का अपना इरादा ताश के महल–सा बिखरता नज़र आया। लेकिन तभी नज़र आया जल्दी–जल्दी हिलता हुआ एक हाथ, कुछ वैसे ही, जैसे बरसात के दिनों में मोटरों के विंडस्क्रीन पर वाइपर हिला करते हैं। बस, फ़र्क सिर्फ़ इतना था कि यह कोई वाइपर नहीं था, सचमुच का इंसानी हाथ था – और वह भी पुकून का। मुझे ऐसी ख़ुशी हुई जैसी भूखे को एक किलो जलेबी देख कर होती है।

“ओ पुकून, मेरे दोस्त, तुम कहाँ थे इतने दिन, मैं तुम्हें खोजता रह गया था।” मैंने ख़ुशी में काँपती आवाज़ में पूछा।

“मैं इंग्लैंड चला गया था” – पुकून ने लापरवाही से कहा।

मैं सकते में आ गया। इंग्लैंड? यहाँ तो मैं महीने–दो–महीने में सिनेमा देखने जाता हूँ, तो सारे मुहल्ले को बता देता हूँ कि फलाँ सिनेमा देखने गया था फलाँ दिन, और ऐसा–ऐसा हुआ वहाँ; और यह पुकून है कि गया तो था इंग्लैंड, पर बता ऐसे रहा है जैसे प्रिंसिपल से पिटाई खाने गया हो।

“मेरी बुआ रहती हैं वहाँ। उनका बर्थडे था। मन तो बहुत था वहाँ रहने का, लेकिन स्कूल भी तो मिस नहीं कर सकता था।”

मुझे दूसरा धक्का लगा। मैं तो हमेशा इसी फ़िराक़ में रहता था कि किसी तरह स्कूल न जाना पड़े। कभी पैर, कभी सर तो कभी पेट में तेज़ दर्द का बहाना कर मैं अक्सर स्कूल जाने से बचा करता था। एक बार तो मेरी भोली–भाली माँ ने पिताजी से कह भी डाला था, "सुनिए जी! बच्चे के पेट में इतना तेज़ दर्द होता है सुबह–सुबह। आज उसे दिखा आइए डॉक्टर मलहोत्रा को।" पिताजी करवट बदलने से पहले बड़बडाए थे कि हाँ, दिखा देंगे फ़ुर्सत मिलने पर, और मैं निश्चिंत हो गया था।

उस दिन के बाद तो मैं जैसे पुकून का चेला हो गया। उसके पीछे–पीछे यूँ घूमता जैसे सब्ज़ी मार्केट में सब्ज़ी लिए ख़रीदारों के पीछे गाय घूमती है। पुकून को भी, लगता है, मेरे जैसे किसी साथी की ही तलाश थी।

हमदोनों स्कूल में साथ–साथ घूमे उस दिन। वह मेरे सेक्शन में नहीं था, इसलिए पढ़ाई अलग–अलग की। एसेम्बली में भी अलग–अलग कतारों में खड़े हुए। लेकिन, टिफ़िन साथ खाने से हमें कौन रोक सकता था? उधर टिफ़िन की घंटी बजी और इधर मैं चील की तरह पुकून की तलाश में झपटा। उसका खानसामा रोज़ अलग–अलग देश का भोजन बनाता है – उसने सुबह–ही कहा था। मेरे घर में तो माँ वही दाल–रोटी–सब्ज़ी–भात बनाती थीं रोज़। पिताजी की मर्ज़ी चलती, तो खिचड़ी और लौकी के अलावा शायद कुछ नसीब ही न होता। इसलिए, मेरे टिफ़िन बॉक्स की शोभा बढ़ाने को पराठा, रोटी या सैंडविच से हटकर कुछ सोचना भी बेकार था।

मुझे दूर पुकून दिखाई दिया। मैं अपना टिफ़िन बॉक्स लिए जा पहुँचा उसके पास। चोर नज़रों से देखा, तो उसके टिफ़िन में पराठा–भुजिया था। मैंने हैरत से पुकून को देखा, तो वह मुस्कुराया – "आज इंडियन फ़ूड की बारी है।" मुझे एक और पछाड़ मिली। मैं तो विदेशी चीज़ों के पीछे भागता हूँ, लेकिन यह पुकून तो भारतीय भोजन भी कितने चाव से खा रहा है। लेकिन दिमाग़ और दिल की लड़ाई में हार तो अक्सर दिमाग़ की ही होती है न! दिल ने मरहम–सा लगाया, कल विदेशी खाना मिलेगा।

पुकून को क्लास में जाने की जल्दी थी। "इंग्लैंड के बारे में बाद में बताऊँगा" कह कर वह भाग लिया क्लास की ओर, और मैं और मेरे टिफ़िन का सैंडविच एक–दूसरे का मुँह ताकते रह गए।

विदेशी खाना खाने के मामले में मेरे सितारे किसी पंचर हुए फटीचर रिक्शा की तरह बिलकुल मध्यम साबित हुए। दूसरे दिन पुकून ने

बताया कि उसका खानसामा बीमार पड़ गया है। बीमार खानसामा भला क्या खाना बनाता?

लेकिन उस दिन पुकून ने बहुत सारी बातें बताईं। जैसे इंग्लैंड में अंडरग्राउंड रेल चलती है, वहाँ बड़ी साफ़–सफ़ाई है, सड़कें चौड़ी–चौड़ी हैं, मौसम ठंडा–ठंडा है, वगैरह। वैसे तो मैं ये सब जानता था, पर सिर्फ़ किताबों, रेडियो या टेलीविज़न के माध्यम से। पुकून तो इंग्लैंड घूम कर आया था। मैं पूरे ध्यान से उसकी बात सुन रहा था – कहीं हल्की सी लापरवाही से ध्यान न बँट जाए और कोई जानकारी न छूट जाए। मेरे कान अटेंशन में थे, आँखें पुकून की हर गतिविधि को देख रही थीं, और मुँह अचरज में खुला रह गया था। वह तो अच्छा था कि आसपास कोई टेबिल टेनिस नहीं खेल रहा था, वरना गेंद मुँह में घुस जाने का ख़तरा था। पुकून बड़े मज़े से बोलता जा रहा था और मैं तन्मयता से सुनता जा रहा था। जब हम अलग हुए, तो पुकून ने बताया कि उसका खानसामा काफ़ी सख़्त बीमार है – दस दिनों से पहले क्या ठीक होगा।

मेरी दुनिया पुकून के इर्द–गिर्द घूमने लगी। स्कूल में हूँ तो पुकून, घर में हूँ तो पुकून। उसके बारे में बात करने की बड़ी इच्छा होती। उसके बारे में और जानने का भी मन करता। गर्मी की तेज़ दुपहरी में भूरे बरसाती बादल की तरह हो गया था पुकून मेरे लिए। बस, एक हफ़्ते में मैंने उसके बारे में सब जान लिया। उसके पापा देश के सबसे बड़े उद्योगपतियों में से एक थे। नैनी में उनकी बड़ी–सी फ़ैक्ट्री थी। उसके सारे रिश्तेदार विदेशों में रहते थे। कोई इंग्लैंड में, कोई अमरीका में, तो कोई जर्मनी में। वे लोग गर्मी की छुट्टियाँ विदेश में बिताते थे। उनका बड़ा–सा बंगला था, जिसमें नौकर–चाकर थे, बड़ी–बड़ी विदेशी गाड़ियाँ थीं। पुकून की बातें मुझे किसी दूसरे लोक की मालूम पड़तीं। मेरे पिताजी एजी ऑफ़िस में काम करते थे। घर लौटते, तो स्कूटर फ़ाइलों से लदा होता। देर रात तक पिताजी उन फ़ाइलों में सर गड़ा कर न जाने क्या करते। हमारा तो कोई दूर का रिश्तेदार तक विदेश में न था। गर्मी की छुट्टियों में भी पिताजी को छुट्टी न मिलती। अगर भूले–भटके कभी छुट्टी मिल जाती, तो हम सेकेन्ड क्लास में सफ़र कर पिताजी के गाँव चुरामनपुर जाते। हमारा मकान छोटा–सा था। नौकर–चाकर तो थे ही नहीं। और गाड़ी के नाम पर था एक सेकेन्ड हैंड स्कूटर जो हर हफ़्ते किसी मैकेनिक के गराज में उसी नियम से जाता जैसे हिन्दू–मुस्लिम–सिख–ईसाई मन्दिर–मस्जिद–गुरूद्वारा और चर्च जाते हैं। मेरा और पुकून का तो कोई मुक़ाबला ही नहीं था। मैं सोचता,

काश! मैंने अगर पुकून के घर जन्म लिया होता तो मैं भी कितने मज़े करता।

एक रात मैं यही सब सोच रहा था। पिताजी रोज़ की तरह दफ़्तर की फ़ाइलें निपटा रहे थे। माँ पुकार रही थीं – “खाना ठंडा हो जाएगा, अब आ भी जाइए।”

हमसब खाना खाने बैठे। पिताजी की प्रिय लौकी की सब्ज़ी, दाल और गरमागरम रोटियाँ। माँ रोटियाँ सेंक–सेंक कर लातीं। थाली में रोटियाँ कब आतीं, कब ख़त्म हो जातीं, पता ही न चलता। थोड़ी देर में माँ भी आँचल से पसीना पोंछती आईं। बोलीं – “कल की आँधी में शीला का घर गिर गया। बेचारी चौका–बर्तन कर अपना और अपने परिवार का पेट पालती है। उसका पति अपाहिज है। हमें शीला की मदद करनी चाहिए।”

पिताजी ने बनियान के कोने से चश्मा पोंछा। बोले, “हम! हम भला क्या दे सकते हैं?” फिर कुछ सोच कर बोले, “अच्छा! पानी तो बरसने ही लगेगा कुछ दिनों में। कूलर के लिए जो पैसे जोड़े थे, उन्हीं में से कुछ दे देते हैं। कूलर अगले साल ले लेंगे।”

मैं शान से बोल उठा, “चिंता मत करो, माँ! मेरा दोस्त, पुकून, बड़ा अमीर है। उनलोगों के पास ढेर सारे पैसे हैं। वो लोग आदमी भी बहुत अच्छे हैं। पुकून मेरा बेस्ट फ्रेंड है। मेरी बात टालेगा नहीं। चार–पाँच हज़ार रुपए तो दे ही देंगे उसके पापा। कल शीला के साथ उनके घर चलते हैं।”

पिताजी मूँछों में मुस्कुराए। बोले, “चलो, ऐसा ही सही।”

मेरे दिल में उमंग के घोड़े दौड़ने लगे। किसी की मदद हो जाए, इससे ज़्यादा ख़ुशी की बात और क्या होगी?

दूसरे दिन टिफ़िन के समय मुझे पुकून नहीं मिला। छुट्टी होते ही मैं गेट पर खड़ा हो गया। शीला और माँ वहाँ पहले से ही मौजूद थीं। शीला मुझे देख कर रुआँसी हो गई। “बाबू! आपका बहुत भला होगा। मेरे छोटे–छोटे बच्चे ज़िंदगीभर आपका एहसान मानेंगे। पुकून बाबू को ऐसे समझाइए कि हमारी कुछ मदद हो जाए।”

मैं शीला की बात कम सुन रहा था, पुकून को खोज ज़्यादा रहा था। ढूँढने पर तो भगवान भी मिल जाते हैं, यह तो पुकून ही था! वह बस्ता कंधे पर टाँगे, हाथ में पानी की बोतल लिए आ रहा था। मैं बड़े उत्साह से लपका पुकून की ओर। “पुकून, मैं तुम्हें–ही खोज रहा था। ये देखो, ये है ...”

मेरी बात अधूरी रह गई। शीला उसके पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगी, "बाबू! हमारी मदद कर दो। आप आदमी नहीं देवता हो। हमारा घर बनवा दो। आप तो इतनी रक़म रोज़ सिनेमा–बाइस्कोप में उड़ा देते होंगे। हम पाँच जीवों की रक्षा हो जाएगी।"

पुकून हक्का–बक्का अपनी पानी की बोतल के फीते को मरोड़ने लगा। तभी धोती–कुर्ता पहने एक सज्जन पुकून के पास आ खड़े हुए। "की रे, ए की झामेला होच्चे?" फिर शीला से बोले, "हामारा लैड़का को केयों होइरान कोर राही हो? ए तुम्हारा केया बिगाड़े हैं?"

शीला बोली, "बाबू! आपलोग इतने बड़े आदमी हैं। हमेशा विदेश जाते हैं, इतने कल–कारखाने हैं आपके, इतना बड़ा बंगला है, इतने नौकर–चाकर हैं – हमारी मदद कर दीजिए हमारा टूटा घर बनवा कर।"

वे सज्जन सब समझ गए। बोले, "बोड़ा आदमी, बीदेश, कौल कारखना, नौकोर–चाकोर – पागोल हो केया? हामारे पास ए शौब कूछ भी नेहीं। ए जौरूर पुकून की बौदमाइशी हाय। उसको झूठा–झूठा शान मारने का बोहोत शौक हाय। आरे, हामलोग तो बोहूत मामूली आदमी हाय। पुकून को लौज्जा लागता है आपने को जायसा हाय वायसा बाताने में। इसीलिए, केया बोलता हाय, हैं, खायाली पोलाव बोनाते रेहता है। माफ कौरना, आपको ईस वाइजा से मित्थे आशा हो गाया।"

मैंने पुकून से कहा, "पुकून! तुम चाहते तो थे झूठ बोलकर अपने को बहुत बड़ा आदमी दिखाना, लेकिन आज एक ग़रीब–दुखियारी के आँसू भी न पोंछ सका तुम्हारा झूठ। असलियत तो सामने आती ही है। सच भी भला कहीं छुपता है? माँ, शीला, मुझे माफ़ करो। मैं बिना सोचे–समझे पुकून की बातों में आ गया। मुझे उसकी हर चीज़ सच–सुंदर लगने लगी थी और अपनी हर चीज़ ख़राब। शीला, हम तुम्हारी कोई मदद न कर पाएँगे।"

तभी एक जानी–पहचानी आवाज़ आई – "ऐसा न कहो, बेटा! मैं शीला के लिए पैसे ले आया हूँ। शीला, मुझसे इतना ही बन सका, बस, यही स्वीकार करो।" कहते हुए पिताजी ने शीला के हाथों में रुपए रख दिए। शीला के हाथ जुड़े थे, आँखों से आँसू बह रहे थे, और उसका रोम–रोम हमें आर्शीवाद देता सा लग रहा था।

मुझे लगा, मेरे माता–पिता ग़रीब होते हुए भी दुनिया के सबसे बड़े आदमी हैं। झूठी शेखी बघारनेवालों से मुझे नफ़रत हो गई। बच्चो, न ख़ुद झूठी शेखी बघारना, न झूठी शेखी बघारनेवालों के चंगुल में आना।

परिश्रम का फल *

तुम जैसे प्यारे–प्यारे बच्चे अपना प्रिय कार्यक्रम 'बालसंघ' सुन रहे हो, यह सोच कर मुझे भी अपना बचपन याद आ जाता है। वह समय, जब मै कोई बारह–तेरह साल का था। यानी, तुम्हारा ख़याल मुझे आज से तीस साल पहले की दुनिया की ओर उड़ा ले जाता है। आज से तीस साल पहले भी रेडियो पर बच्चों के लिए कार्यक्रम होता था, और मैं उसे बड़े चाव से सुनता था। तुम भी बालसंघ बड़े चाव से सुनते हो, उसमें भाग लेना चाहते हो, है न?

वैसे, आज तो टेलीविज़न पर चौबीसों घंटे कार्यक्रम होते हैं, पर मेरे बचपन में ऐसा नहीं था। या तो हम बच्चे रेडियो सुनते या खेलते–कूदते। तरह–तरह के खेल – आई स्पाई, बैडमिंटन, वॉलीबॉल, क्रिकेट, वगैरह। अरे हाँ, एक बात तो मैं बताना ही भूल गया। हम कहानियाँ पढ़ते भी ख़ूब थे, सुनते भी ख़ूब थे। मम्मी–पापा के पास तो ज़्यादा कहानियाँ थी नहीं। वही घिसी–पिटी कहानियाँ वे दोबारा–तिबारा सुना देते। अलबत्ता दादी–नानी–मौसी–चाची वगैरह हमारे घर आतीं, तो नई–नई कहानियाँ ज़रूर सुनने को मिलतीं। हमारे मुहल्ले में एक थे रामू काका। उनके पास तो कहानियों का जैसे अथाह भंडार था। सुबह और शाम तो वे गायों को चारा देने, बगीचे मे सब्ज़ियों की देखभाल करने में मशगूल रहते, पर गर्मियों की दोपहर में जब वे आम के पेड़ के नीचे चारपाई पर लेटते, तो हमारी वानर सेना उनके इर्द–गिर्द जमा हो जाती।

"रामू काका! कहानी सुनाइए न!" मैं आग्रह करता।

"अरे बड़के, थोड़ा सुस्ता लेने दे।" काका कहते।

मेरा छोटा भाई बोलता, "बस्स काका! एक छोटी–सी कहानी! इत्ती सी!"

काका कहते, "छोटके! शाम को सुनाऊँगा। अभी लेटने दे!"

"लेटे–लेटे सुनाइए न! शाम को तो आपको टाइम नहीं मिलेगा।" मेरी बहन बोलती।

"अरे लल्ली! बड़ा परेशान करते हो तुम लोग।" काका का दिल पसीजता। उनके दिल को पूरी तरह मोम की तरह पिघला देती मेरी सबसे छोटी बहन की विनती, "ताता! तहानी!"

काका हँसते। चारपाई पर बैठ कर उसे गोद में ले लेते। कहते, "अब मुन्नी ने कह दिया, तो सुनानी ही पड़ेगी कहानी।"

हम बच्चों के चेहरों पर रौनक़ आ जाती। जैसे बोलर के गेंद फेंकते समय सभी खिलाड़ी तत्पर हो जाते हैं, हम भी वैसे ही पूरी तन्मयता से कहानी सुनने को तैयार हो जाते। मानो काका का हर शब्द एक कैच हो जो हमारी ही तरफ़ आ रहा हो।

तो बस, जून की एक ऐसी ही तपती हुई दोपहर में घेर लिया हम बच्चों ने रामू काका को। सबने बारी–बारी से ज़िद की कहानी सुनाने की। काका बोले, "बच्चो, मेहनत का फल हमेशा मीठा होता है। बिना मेहनत कुछ नहीं मिलता। अब जैसे ..."

काका की बात पूरी होती, उससे पहले ही एक मज़ेदार बात हो गई। जानते हो क्या हुआ?

हुआ यह कि रामू काका जैसे ही कहानी सुनाने बैठे, उनके सर पर लद्द से आ गिरा एक आम। काका घबराए। हमसब चौंके। आम सिर से लुढ़कता हुआ गिर पड़ा उनकी गोद में, जिसमें धूप का चश्मा लगाए बैठी थी मेरी सबसे छोटी बहन, मुन्नी। मुन्नी ने आम उठाया। परखा। आम थोड़ा फट गया था। उसमें से रस बह रहा था। मुन्नी ने रस चखा। खुशी से बोली, "मीथा!" फिर रामू काका के कन्धे का सहारा ले कर खड़ी हुई और उनके गंजे सर पर उँगलियाँ फेरीं। इसके पहले कि मैं उसे रोक पाता, मुन्नी ने उँगलियाँ कीं मुँह के अन्दर, और फिर बोल उठी, "मीथा!"

लल्ली, मेरा भाई और मैं हँस पड़े। मेरा भाई बोल उठा, "आप तो कह रहे थे कि मेहनत का फल मीठा होता है और बिना मेहनत किए कुछ नहीं मिलता, पर यहाँ तो बिना मेहनत ही फल मिला, और वह भी मीठा!"

"काका की पिप्–पिप् हो गई, काका की पिप्–पिप् हो गई!" लल्ली ख़ुशी में ताली बजाने लगी।

"पिप्–पिप्, ताता पिप्–पिप्!" मुन्नी अपनी तोतली ज़बान में बोली।

मुझे डर लगा। काका नाराज़ हो कर कहानी सुनाना बन्द कर दें, तो? ज़्यादा गुस्सा हो गए, तो कौन जाने, शायद कभी कहानी न सुनाएँ। पर काका को जैसे मज़ा आ गया। बोले, "पच्चीस बरस से इसी पेड़ के

नीचे लेटता आ रहा हूँ। इससे पहले कभी सर पर तो क्या, पैर पर भी आम नहीं गिरा।''

कहना न होगा, उस आम को उसी समय हमने छील–छाल कर खा लिया। गुठली चूसती लल्ली और काले चश्मे से झाँकती मुन्नी के साथ हम दो भाई भी फिर ताकने लगे काका को आशाभरी नज़रों से।

काका बोले, ''बच्चो! जिस तरह यह आम गिरा उस तरह पिछले पच्चीस साल में कोई दूसरा आम नहीं गिरा। फिर, यह गिरा भी, तो सर पर चोट कर गया। और यह सोचो, अगर किसी ने आम का यह पेड़ न लगाया होता, इसे सींचा न होता, इसकी देखभाल न की होती, तो क्या आम लगते इसमें?''

हमसब चुप रहे। ऊपर, पेड़ पर बैठी कोयल ने ज़रूर कूक भरी। मानो काका की हाँ में हाँ मिला रही हो।

काका समझ गए कि बात हमारी समझ में आई तो, मगर पूरी तरह नहीं। बच्चो, तुम्हारे साथ भी ऐसा ही कुछ हो रहा है न? चलो, बताता हूँ कि काका ने आगे क्या किया।

काका ने मुन्नी को गोद से हटाया। सर पर हाथ फेरा। ऊपर आम के पेड़ की ओर देखा। फिर, दूर किसी चीज़ को देखते हुए बोले, ''यह सच्ची बात है, कोई कहानी नहीं। बात पुरानी है। बहुत पुरानी। एक दीवान साहब थे। सच बोलते थे। सबको प्यार करते थे। बड़े गुस्सेबाज़ थे। घूसख़ोरी से दूर भागते थे, इसलिए दूध का दूध, पानी का पानी करते थे। पढ़े–लिखे कुछ ख़ास नहीं थे। लेकिन अनुभवी इतने, कि एक पुकार पर हज़ार लोग साथ चलने को तैयार हो जाएँ। अमीर नहीं थे। उनकी पत्नी बड़ी धर्म–कर्म वाली औरत थीं। मंदिर जाने वालीं, उपवास करने वालीं। कभी–कभी तो कई–कई दिन लगातार भी उपवास कर लेतीं।''

''अरे, ऐसा तो गाँधी जी के साथ भी था। उनके माता–पिता भी तो ऐसे ही थे।'' मेरा छोटा भाई बोल उठा।

काका ने कहा, ''ठीक कहा, छोटके! लेकिन गाँधीजी के पिता तो गुजरात में दीवान थे। पोरबंदर में, राजकोट में। मै इस तरफ़ की बात कर रहा हूँ।'' बोलते–बोलते उन्होंने लल्ली को देखा। गुठली का रंग पीले से सफ़ेद हो चुका था, पर लल्ली थी कि अब भी गुठली चूसे जा रही थी।

''दीवान साहब के दोनों लड़के गाँव की पाठशाला जाते। गाँव की पढ़ाई तो गाँव की पढ़ाई होती है। फिर पढ़ने वालो की भी रुचि

होनी चाहिए। मास्टर पहाड़े सिखाते। कुछ बच्चे पहाड़े सीखते, कुछ गाली देना सीखते। कुछ लड़ते–झगड़ते। कुछ पीछे बैठ कर खेलते।''

मैने सोचा, हमारे स्कूल में भी तो कुछ–कुछ ऐसा ही होता है। बच्चो, क्या तुम्हारी क्लास में भी ऐसा ही होता है?

अच्छा चलो, सुनो आगे, काका ने क्या कहा। बोले, ''दीवान साहब का बड़ा लड़का, राम, पढ़ने से जी चुराता। आम के टिकोरे गिराता, कौओं के अंडे चुराता, गिलहरियों पर गुलेल चलाता और गाय का दूध दूह कर कच्चा ही पी जाता। छोटा लड़का, लक्ष्मण, भी भाई की देखा–देखी करता। यानी दोनों भाई पढ़ते कम, मटरगश्ती ज़्यादा करते।''

मुन्नी को पता नहीं क्या समझ में आया, ख़ुश हो कर बोली, ''मटल!'' हमने ध्यान नहीं दिया। कहानी रफ़्तार जो पकड़ रही थी। काका ने कहानी आगे बढ़ाई।

''एक दिन मास्टर पगडंडी पर जा रहे थे। सामने से छाता ताने दीवान साहब आ रहे थे। दोनों में न जाने क्या बात हुई। लेकिन उस शाम राम और लक्ष्मण को यह पता लग गया कि धूप और बरसात से बचाव करने के अलावा छाते का इस्तेमाल एक और तरह से भी होता है – छड़ी के तौर पर। दोनों की पिटाई हुई। दोनों रोए। मास्टर को कोसा। और दूसरे दिन स्कूल पहुँचे बदले हुए रूप में। लक्ष्मण सहमा हुआ, राम नाराज़। लक्ष्मण पहाड़े याद करने लगा। उस ज़माने में बहुत तरह के पहाड़े होते थे। सवा का, डेढ का, पौन का, ढाई का – लक्ष्मण सर हिला–हिला कर, बदन झुमा–झुमा कर पहाड़े रटता। अक्षर पहचानना, लिखना भी सीख गया। राम अपने छोटे भाई को पढ़ता देखता, लेकिन मछली पकड़ने और पतंग उड़ाने के आगे पढ़ाई करना वैसे ही लगता जैसे गर्मी में आइसक्रीम की जगह भट्ठी के सामने बैठ कर बाटी खानी पड़े। मास्टर ने उसकी शिक़ायत नहीं की। सोचा होगा शायद, कि दो भाइयों में से एक ने भी पढ़ाई शुरू कर दी, तो ठीक है। लक्ष्मण हिसाब–किताब में दीवान साहब की मदद करने लगा। गुमाश्तों की चोरियाँ पकड़ में आने लगीं। दीवान साहब की मुश्किलें हल होने लगीं; पर उन्हें यह भी पता चल गया कि लक्ष्मण पढ़ाई में मन लगाता है जबकि राम पढ़ाई से जी चुराता है। उन्होंने आगे की पढ़ाई के लिए लक्ष्मण को शहर भेजा। राम गाँव में ही रहा। शहर जा कर करता भी क्या? काला अक्षर भैंस बराबर था उसके लिए। लक्ष्मण ने अच्छी पढ़ाई की। अच्छी क्या, बहुत अच्छी! बेचारे दीवान साहब ने जोड़–तोड़ कर पैसे इकट्ठा किए। लक्ष्मण को विलायत भेजा पढ़ने। लक्ष्मण को विलायत गए एक साल भी न गुज़रा होगा, कि दीवान साहब परलोक सिधार गए। घर में

रह गए राम और राम की माँ। इधर दीवान साहब की आँखें मुँदीं, उधर तग़ादा करनेवालों की भीड़ लग गई। हर कोई कर्ज़ वापस माँगने लगा। जिसने कुछ न दिया था, उसने भी माँगा, और जिसने सौ दिए थे उसने हज़ार माँगे। माँ पहले देवताओं के आगे हाथ जोड़ती थीं, अब अच्छे–बुरे आदमियों के आगे गिड़गिड़ाने लगीं। राम तो लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर था। भला लक्ष्मण को क्या संदेश भेजता? उसने न जाने क्या संदेश भेजना चाहा और दरअसल क्या संदेश भेजा गया, पर लक्ष्मण तीन साल तक वापस नहीं आया। और जब वापस आया, तब गाँव से राम का, उसकी माँ का, नामोनिशान मिट चुका था। कहाँ तो वह यह अरमान लिए आया था कि पिता उसे गले लगा लेंगे, माँ आँचल की छाँव में स्नेह देंगी, और भाई गाँव के ताल–तलैया दिखाएगा; और कहाँ उसे मिले वे लोग, जो प्यार से मिलना तो दूर, उसके अपनों का पता बताने तक को तैयार नहीं थे।''

''हाय राम! फिर तो बड़ी परेशानी हुई होगी?''

''हाँ! लेकिन लक्ष्मण कोई साधारण आदमी थोड़े–ही था? परिश्रम से पढ़ाई कर उसका दिमाग़ तेज़ हो गया था। पहले तो वह आसपास के गाँवों में भटका। फिर अगल–बगल के शहरों में गया। अंत में उसने कलकत्ता में वकालत शुरू की। उसकी वकालत चल निकली। उसने न पढ़ाई से जी चुराया था, न वकालत से जी चुराया। परिश्रम करता गया, और उसका फल भी उसे मिलता गया। उसके दिल में बस एक ही मलाल था। अपनी माँ और भाई से न मिल पाने का। उसके पास कोई तस्वीर तो थी नहीं उनकी, जो पोस्टर छपवा देता।

''एक दिन लक्ष्मण के दिमाग़ में एक आइडिया आया। उसने हर साल गाँव में भोज का आयोजन शुरू किया। फ्री। जो जितना चाहे, खाए। धीरे–धीरे भोज के साथ मेला भी लगने लगा। उसके पिता के नाम पर। लक्ष्मण वकालत में मसरूफ़ियत के बावजूद पूरे भोज के दौरान गाँव में रहता। अंत में ज़रूरतमंदों को कपड़े, बर्तन देता। उसका ख़याल था, दीवान साहब के नाम के मेले की बात उसके भाई और माँ से छुपी नहीं रहेगी। जैसे ही उन्हें पता चलेगा, वे मेले में आएँगे ज़रूर। और हुआ भी ऐसा ही। लेकिन किस तरह?''

रामू काका फिर आसमान की ओर ताकने लगे। लल्ली के हाथों से गुठली फिसल गई। मेरे भाई का मुँह खुला रह गया। मैं सर खुजलाने लगा। बोली तो सिर्फ़ मुन्नी, ''किछ तलह?''

रामू काका संसार में जैसे वापस लौट आए। बोले, ''एक दिन भोज ख़त्म हुआ। लक्ष्मण ने कपड़े–लोटे भी बाँट दिए। पीठ घुमाई ही

थी कि देखा, दो ग़रीब दूर खड़े हैं, आपस में सकुचाए से। इशारे से पास बुलाया तो ग़रीब सकुचाते हुए आए। जब पास आए, तो लक्ष्मण पर जैसे बिजली गिर पड़ी। अजीब दृष्य था! एक तरफ़ था सिल्क के कुर्ते, क़ीमती धोती और रेशमी दुशाले में सजा लक्ष्मण, और दूसरी तरफ़ थी फटी साड़ी में गाँठें लगाए उसकी माँ, बोरी पहने उसका बड़ा भाई। माँ की आँखों से गंगा–जमुना बह निकली। राम की आँखों के आगे उसका पूरा बचपन किसी फ़िल्म की मानिंद घूम गया। लक्ष्मण उन्हें अपने साथ कलकत्ता ले गया। पर राम की ग्लानि न गई। लक्ष्मण के घर बिताया हर पल उसे अपने बचपन की लापरवाही पर कचोटता। अंत में एक रात वह बम्बई की ट्रेन पर बिना बताए बैठा, और इलाहाबाद उतर गया। किसी के घर माली का काम किया, किसी के घर गाय की देखरेख का। अब वह चाहे खेत में खुरपी चलाए या गाय दूहे, यही सोचता है कि हर किसी को परिश्रम करने का संदेश देगा, ख़ास कर बच्चों को।''

''अच्छा! तो वह अब भी है, रामू काका?'' मेरे छोटे भाई ने हैरत से पूछा।

''कहीं वह राम आप ही तो नहीं, रामू काका?'' मेरे मुँह से अनायास निकल गया।

रामू काका ने गमछे से आँखें पोंछीं। कोई उत्तर न दिया। लेकिन उत्तर मुझे मिल गया था। उनकी गीली आँखों से, परिश्रम करने के उनके संदेश से।

अक्सर सोचता हूँ, अगर रामू काका ने भी परिश्रम किया होता, तो उन्हें भी भाई और माँ का प्यार मिलता। ज़िंदग़ी चैन से कटती। हाँ, एक गड़बड़ ज़रूर हो जाती – तुम्हें यह कहानी सुनने को न मिलती।

जलेबियाँ *

अंक एक

(राग भैरवी पर बाँसुरी की तान समाप्त होती है। मुर्गे की बाँग, दूर इक्का–दुक्का ट्रकों के तेज़ रफ़्तार से गुज़रने की आवाज़ और गाय का रंभाना यह आभास दिलाते हैं कि आबादी से परे किसी हाईवे पर सुबह हो रही है। पानी गिरने की आवाज़ रह–रह कर आती है, मानो कोई स्नान कर रहा हो। पाठ करने की आवाज़ रुक–रुक कर आती है, जैसा बदन पोंछते समय हुआ करता है।)

पंडितजीः सुमति कुमति ... सब के उर ... रहहीं नाथ पुरान ... निगम अस कहहीं ... जहाँ सुमति तहँ ... सम्पति नाना ... जहाँ कुमति तहँ ... बिपति निदाना ...

(बाल्टी का खड़कना। खड़ाऊँ की खट्–खट् पास आती है।)

पंडितजीः ऊँ नमो सिबाय ... ऊँ नमो सिबाय ... अरे छोटुआ! उठेगा कि नब्बाब जैसा सोते–ही रहेगा, आँय? भोरे–भोरे इस्नान के बाद तोरे मुँह देखना जरूरी है? उठ रे, पापी!

पंडिताइनः आप जाप करके जेतना पुन्न कमाते हैं न, ओतने, बाकी ओससे भी बेसी, ई लइकवा को गारी दे के पापो कमा लेते हैं!

पंडितजीः तौ का करें? आँय? जब देख तो सुत्तल हैं बाबू साहेब! पूजापाठ के बाद अदमी भगवान के दरसन करता है कि सुख मिलेगा, सांति मिलेगी, बरक्कत होगी; त हीयाँ ई राच्छस को देखना पड़ता है!

(पंडिताइन हँसती हैं।)

पंडितजीः (हँसी दबाते हुए) हाँ, सच्चे कह रहे हैं!

पंडिताइनः सच्चे का कह रहे हैं, कपार? गोस्सा में छौ साल के लइका नीयर बम–बम कर रहे हैं! अरे, हमरो बच्चा सब सुतल है कि नहीं? भोर मे बच्चा सब सुतबे करता है। आऊ, ऊ सब त रात में जल्दियो सो जाता है, ई बेचारा त अंतिम गाहक निपटा के, बर्तन माँज के, तब न सोता है? रात में एक–दू बज्जे जाता है। फेर आज त भोर चारे बजे ट्रकवाला आ गया था दू गो। ओकरो बेचारा उठ के चाह पिलाइस है।

पंडितजीः हम लोगन के बच्चा से ई लइकवा के तुलना मत करिए त अच्छा होगा, समझे? (ठोकर मारते हुए) उठ रे!

छोटूः जी ... जी ... जी ... जी ...

पंडितजीः अब ई "जी जी" का का रट लगाइस है रे? आँय? जीजाजी का सपना देख रहा था का? (हँसते हैं) चल उठ, चाह बना। सब समय सोता है। ओन्ने केन्ने जा रहा है, आँय?

छोटूः मुँह धो कर आता हूँ।

पंडितजीः ऊँह, (नक़ल उतारते हुए) "मुँह धो कर आता हूँ"! मुँह धोने से का तू मीनाकुमारी का हीरो बन जाएगा? आँय? "मुँह धो कर आता हूँ"! जा! पहले चूल्हा जला कर पानी चढ़ा, फेर जाना मुँह धोने और गोड़ धोने।

छोटूः जी।

(लकड़ियों की खटपट, बर्तन खनकने और माचिस की तीली बार–बार रगड़े जाने का स्वर।)

पंडितजीः अब ई एत्ता माचिस काहे फूँक रहा है रे अभागा?

छोटूः सील गया है। जलता नहीं।

पंडितजीः रख दोगे भुइयाँ तो सीलेगा नहीं? आँय? तुम्हरा पैसा थोरो लगता है।

पंडिताइनः आप तो उसे साँसो नहीं लेने देते! बेचारा सात–आठ साल का है, और जोत देते हैं बैल जैसा।

पंडितजीः तौ का करें, आँय? आप करिएगा काम, बनाइगा चाह, माँजिएगा बर्तन? बोलिए? हम त फेर भी रोटी–तरकारी बना देते हैं, आप त क्वीन भिक्टोरिया जैसे बैठले रहती हैं।

पंडिताइनः अरे, त बचवे मिलता है? कौनो बड़ा अदमी से काम करवाइए।

पंडितजीः एक बात जानती हैं? अदमी जेतना बड़ा हो जाता है, ओतने बदमासो हो जाता है। अब देखिए, ई लइकवा को बोले थे कि नब्बे रुपैया देंगे महीना मे, पर आज तक कभी दिए हैं, आँय? कभी बेमारी बोल के काट लेते हैं, कभी गेलास टूटने का बोल के काट लेते हैं। कोसिस एही करते हैं कि पचास रुपैया से बेसी देना ही न पड़े। ओही, बड़ा अदमी होगा, त तीन सौ माँगेगा के पाँच सौ, का मालूम? फेर कभी जोरू पास जाएगा, कभी बहिनी भीरी जाएगा। आठ–दस घंटा से बेसी खटबो नहीं करेगा। ई लइकवा तीन महीना में कहीं गया है? दिन–रात एहीं रहता है, कहियों नहीं गया। भोर छौ बजे से रात एक–दू बजे तक काम करता है। करता है के नहीं, आँय?

छोटूः चाय लीजिए।

(गिलासों के खनकने और चाय सुड़कने की आवाज़।)

पंडिताइनः तूहूँ चाह ले ले, छोटू!

छोटूः जी।

पंडिताइनः राम जाने केकर बच्चा है, कहाँ से आइस है, काहे आइस है ...

पंडितजीः घर–दुआर त हमरो नहीं पता, बाकि हेतना पता है के घर से भागल बच्चा है ई। का जाने, का बात है। कौनो मनमुटाव हुआ होगा।

पर कहता है के बापस नहीं जाएँगे। माने जिंदगी भर के लिए भगवानजी हमको एगो नौकर दे दिए हैं। केतना किरपा किए हैं!

(रेडियो बजने की आवाज़।)

पंडिताइनः अरे! ई भोरे–भोरे रेडियो कइसे बजने लगा?

पंडितजीः तनि देखिए त, बचवन में को उठ गया? बनवारी, के सेता? आज बिहाने उठ गया सब!

(पंडिताइन के जाने की आवाज़। दूर ट्रकों के आने–जाने की आवाज़। एक ट्रक पास आ कर रुकता है। दरवाज़ा खुलने और एक आदमी के कूदने, फिर दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़।)

ड्राइवरः ओए बंत्या, बाल्टी निकाल, हाथ–मुँह धो लें!

(बाल्टी में पानी गिरने और बाल्टी खड़खड़ाने की आवाज़।)

ड्राइवरः हाँ जी, दो डबल अंडे के आमलेट, चार–चार पराँठे, और दो चाय देना जी।

पंडितजीः ई पंडित का ढाबा है! इहाँ पराठा–सब्जी–चाह त मिल जाएगा, बाकि अंडा नहीं मिलेगा।

ड्राइवरः क्यों जी, अंडा क्यों नहीं मिलेगा?

पंडितजीः क्योंकि अंडे में जीव होता है और हम जीव को कष्ट नहीं पहुँचाते। (पुकार कर) अरे छोटुआ! खटिया बिछा, पानी दे।

पंडिताइनः एजी, जानते हैं! दूनो बचवा उठ गया है। हम त भुलाइए गए थे – आज त बनवारी के जनमदिन है!

पंडितजीः आँय? बनवारी के जनमदिन है? अरे, वाह! तब त मिठाई बनना चाहिए, बढ़िया खाना बनना चाहिए, है न?

छोटूः (स्वगत) आज तो मेरा भी जन्मदिन है। आज सब मुझे याद कर रहे होंगे।

पंडितजीः का रे? अब खटिए बिछाता रहेगा के कामो करेगा, आँय?

छोटूः कर रहा हूँ।

पंडितजीः ई ले जा पराठा।

(गिरने और छोटू के कराहने की आवाज़।)

पंडितजीः का हुआ रे अँधरा? लौकता नहीं है का, (मारते हुए) आँय? पहले गाहक पर ही अपसकुन कर दिहिस ससुरा आज के सुभ दिन! (दूसरा थप्पड़ मारते हुए) का है? दिमाग केन्ने रहता है रे तोर?

छोटूः कान छोड़िए, पंडितजी। रास्ते में पत्थर पड़ा था, ठोकर लग गई।

पंडितजीः रास्ते में पत्थल पड़ा है कि तोर अक्किल पे पत्थल पड़ल है? पत्थल का आपेआप आ गया तोसे लटपटावे खातिर?

ड्राइवरः वाह भई, पंडितजी! अभी तो कह रहे थे कि जीव को कष्ट नहीं पहुँचाते हो और अभी उस बच्चे को पीट रहे हो! बेचारे का ख़ून भी निकल रहा है।

पंडितजीः अरे, ई सब का पिटइए टौनिक होता है, समझे? ले जा रे, ई बार मत गिराना।

छोटूः जी! लीजिए, जी।

बनवारीः बाऊजी, आज हमरा बर्डे है!

पंडितजीः हाँ, बेटवा! खूब बड़ा हो, खूब खुस रहो, खूब तरक्की करो!

बनवारीः बाऊजी, आज कुछ पेसल होना चाहिए!

पंडितजीः हाँ, रे, हाँ! आज पेसल नहीं होगा त कौन दिन होगा? छोटू, ई ले जा चाह, अऊर सुन, बर्तन सब ठीक से सरिया, झाड़ू मार, सफ़ाई कर!

छोटूः जी, कर रहा हूँ।

(बर्तनों के खनकने और झाड़ू लगने की आवाज़।)

<u>अंक दो</u>

(बच्चों के हँसने–खिलखिलाने की आवाज़।)

बच्चा 1ः वाह बनवारी! तुम्हारे बर्थडे में तो बड़ा मज़ा आ रहा है!

बच्चा 2ः हाँ, सोनू! इतनी कुरकुरी जलेबियाँ तो बस यहीं खाई हैं।

बनवारीः और लो! छोटुआ, और जलेबी ले आ।

बच्चा 1ः शर्बत भी मँगा दे, बनवारी।

बनवारीः हाँ, हाँ! छोटुआ, ओ छोटुआ! माँ, छोटुआ कहाँ है?

पंडिताइनः नहीं है का? अभी त ईहें था! ऊ देखो, ओहाँ, ढाबे पर है। छोटुआ!

छोटूः (साँसें फूलती हुई) जी! वह ग्राहक आ गए थे, उन्हें जलेबी दे रहा था।

बनवारीः अरे, पहले यहाँ की बात सुन! जा, जलेबी ला!

छोटूः पंडितजी बिगड़ते हैं ढाबे से हटने पर। अभी लाता हूँ जलेबी!

बनवारीः और शर्बत भी!

(संगीत)

छोटू: यह लीजिए, शर्बत।

बनवारी: लाओ छोटू, रखो।

(गिलासों का खनकना, शर्बत सुड़के जाने की आवाज़)

बच्चा 2: बनवारी! जलेबियाँ नहीं आईं?

बनवारी: क्यों, छोटुआ? जलेबी क्यों नहीं लाया?

छोटू: जी, जलेबी तो ख़त्म हो गई।

बनवारी: "ख़त्म हो गई", माने?

पंडिताइन: अरे, खत्तम कइसे हो गई? पूरा एक केजी मइदा लगा, दू बार भी खाया नहीं गया, आऊ जलेबी खत्तम?

छोटू: एक किलो जलेबी शाम को बेची भी हैं।

पंडिताइन: अरे, त एक केजी मइदा मे एक्के केजी जलेबी बनता है? कम–से–कम तीन केजी जलेबी बनता है।

छोटू: जी, अब ये तो मालूम नहीं। जलेबियाँ तो पंडितजी ने छानी थीं।

पंडिताइन: (हँसते हुए) त छानते–छानते खा भी गए का? जीभ पर त काबुए नहीं है!

(आते हुए कदमों की आवाज़)

पंडितजी: का भाई! बनवारी के जनमदिन का हतना खुसी के बइठले–बइठले हँस रही हैं? आँय?

पंडिताइनः अरे, हम त खालीपेट खुसी मना रही हूँ, आप त दू केजी जलेबी डकार कर खुसी मनाए हैं। सच्चा जनमदिन त आप ही मनाए लइका का!

बनवारीः हाँ, बाऊजी! हमसब को जलेबियाँ कम पड़ गईं।

पंडितजीः ई का कह रहे हो? हम काहे जलेबी खाएँगे? जलेबी छानते–छानते हमार कमर दुखाइ गई। एक टुकड़ा खाए होंगे मोस्किल से।

पंडिताइनः त आप खइबे नहीं किए, बचवा लोग को दोबारा मिलबे नहीं किया, त खाइस को, (हँसते हुए) भूत?

पंडितजीः हम समझ गए कौन भूत जलेबी खाइस है! ई आपका दुलरुआ। कह रहा था साम को के सुबहे से कुच्छो नहीं खाए हैं। हे भगवान, सामने–सामने पाँच सेर जलेबी खा गया! हम समझे के गाहक लोग को चाह–नास्ता दे रहा है आउ ई राच्छस जलेबी पर जलेबी तोर रहा था, आँय? क्यों रे? हम बचवन के लिए जलेबी छाने थे के तोरे लिए?

छोटूः जी, मैंने जलेबियाँ नहीं खाईं। मैंने तो सुबह से ही कुछ भी नहीं खाया। इसी कोशिश में था कि भैया का जन्मदिन है, ख़ुशी से मने!

पंडितजीः त तू भइया का जनमदिन मना रहा था जलेबी हूड़ के? आ, अब हम तोर जनमदिन मनाते हैं! (मारते हुए) ए ले! ... ए ले!

(पीटने, छोटू के रोने और बीच–बीच में पंडिताइन के रोने की आवाज़ें)

छोटूः (सुबकते हुए, स्वगत) वाह! ख़ूब मना मेरा बर्थडे! हर साल गिफ़्ट्स मिलती थीं, पार्टी होती थी! आज तो खाने को भी कुछ नहीं मिला। (हँसता है) मिला क्यों नहीं, मिला न? (रोता है) बहुत कुछ मिल गया! तमाचे, ठोकर, पिटाई! कितने बच्चे होंगे जिन्हें उनके जन्मदिन पर भूखा रखा जाता हो, पीटा जाता हो! ओह! मम्मी, तुम अगर आज होतीं! (रोता है)

(संगीत)

अंक तीन

(सुबह का संगीत। चिड़िया का चहचहाना, गाय का रंभाना, ट्रकों की आवाज़ें, बाल्टी में पानी गिरने और पंडितजी के नहाते हुए पाठ करने की आवाज़ें)

पंडितजीः सहज पापप्रिय ... तामस देहा ... जथा उलूकहि ... तम पर नेहा ... उठ रे अभागा! अरे, ई त पहिले से ही उठ कर तैयार है! का रे, आज कौन सा कुकर्म करने वाला है, आँय?

छोटूः पंडितजी, आज मैं यहाँ से जाने वाला हूँ।

पंडितजीः आँय? जाने वाला है? जा के त देख! हाथपैर तोर के हिंए टाँग देंगे मंदिल के घंटा नीयर! जा, चाह बना। ऊ देख, एगो गाड़ी भी आ गया।

(गाड़ी आ कर रुकने और दरवाज़े बन्द होने की आवाज़)

पंडितजीः आइए, सर! का लेंगे? चाह बिस्कुट मिलेगा अभी। जलेबियो मिल जाएगा, बाकि ताजा नहीं है। छोटू, कपड़ा मार!

स्त्री स्वरः देखो! वह तो अपना राजू है! राजू बेटे!

पुरुषः हाँ! राजू!

पंडितजीः ई का? आपलोग इसको जानते हैं?

पुरुषः जानते हैं, मतलब? मैं इसका चाचा हूँ और ये इसकी चाची हैं। चल बेटा, घर चल!

पंडितजीः अरे वाह, ई खूब कही, "चल बेटा, घरे चल"! ई कइसे पता चलेगा के तुम इसके चाचा हो के दादा हो? अउर अगर ई चला जाएगा तो हमरा केतना काम हर्जा होगा, आँय? उसका भागी को बनेगा? तुम भरोगे दंड?

पुरुषः दंड तो सरकार तुम्हें देगी। इस बच्चे के ग़ायब होने की रिपोर्ट हमने दर्ज कराई है। अख़बारों में इश्तिहार दिए हैं।

पंडितजीः हमको दंड काहे मिलेगा? ई रस्ता में लावारिस घूम रहा था। हमरे पास आया। हम दया करके इसको सर पर छाँव दिए, पेट में रोटी दिए। उसी का हमको दंड मिलेगा, आँय?

स्त्रीः तुम्हें भी मालूम है कि तुमने इसे कैसी छाँव दी और कैसी रोटी खिलाई! अगर इतनी ही दया थी, तो पुलिस में रिपोर्ट की होती!

पंडिताइनः ई भोरे–भोरे चाहपानी की जगह पुलिस–पुलिस का हो रहा है जी?

पंडितजीः अरे, ई लोग पता नहीं कउन हैं! कहते हैं छोटुआ के चाचा हैं और पुलिस का डर देखात हैं। हमहूँ त देखें पुलिस को!

पंडिताइनः पुलिस काहे? हम का कउनो जुर्म किए हैं?

पुरुषः बिलकुल! आपने एक नहीं, कई जुर्म किए हैं। आपने लावारिस बच्चा मिलने की सूचना पुलिस को न दे कर ग़लती की। आपने इतने छोटे बच्चे से इतने भारी काम करवा कर जुर्म किया। आपने देर–देर तक काम करवा कर जुर्म किया।

स्त्रीः उसे छुट्टी न दे कर जुर्म किया।

पुरुषः आपने संविधान की धारा 23 का उल्लंघन तो किया ही, शायद 24वीं और 45वीं धाराओं का उल्लंघन भी किया।

पंडिताइनः हे भगवान! ई त बड़ा पाप हो गया। हमें माफ कर दीजिए। छोटू बेटा, जा, अपने चाचा के साथ जा!

पंडितजीः हाँ, ई पाप त होइए गया! हमें माफ कर दीजिए। छोटुआ! छोटू बेटे, ले, ई जलेबी ले! कल हम ही जलेबी खा लिए थे आउ बाकी छुपा के रख दिए थे।

(गाड़ी के दरवाज़े बन्द होने और गाड़ी जाने की आवाज़)

पंडिताइनः ई कइसन भोर हुई आज, ई कइसन सवेरा हुआ!

पंडितजीः अब ऐसी ही सुबह होगी, लेकिन एगो बच्चा रोने के बजाए खिलखिलाएगा!

पंडिताइनः भगवान करे, सभी बचवन रोने की जगह खिलखिलाएँ!

(संगीत)

संदेशः बच्चों से श्रम न करवाएँ। उनकी सही जगह पाठशाला है। उन्हें पढ़ने को प्रोत्साहित करें। अपने निकटवर्ती नैशनल चाइल्ड लेबर प्रोजेक्ट कार्यालय से संपर्क करें, और बच्चों और अपने देश को सुनहरा भविष्य दें।

गिरह *

(उत्तर प्रदेश के लोकगीत की धुन। धुन थोड़ी धीमी पड़ती है। साथ ही चलती हुई मोटरगाड़ी की आवाज़ उभरती है। ये दोनों आवाज़ें जारी रहती हैं। सहसा ज़ोर से ब्रेक लगने और ऐक्सिडेंट होने की आवाज़ आती है, जैसे दो गाड़ियाँ टकराई हों। लोहा टकराने, शीशा बिखरने, और सड़क पर टायर घिसटने की आवाज़ आती है। बहस की आवाज़। लोकगीत की धुन समाप्त हो जाती है। चलती हुई मोटरगाड़ी की आवाज़ जारी रहती है।)

कपूर, घबराहट मेंः अरे अरे मिश्राजी! यह क्या हो गया?

मिश्राजी, उकताए हुएः कपूर साहेब, अब हुइहे का! ऊहे, रोज का किस्सा! उधर, बाएँ से दाएँ, ऊ मोटरगाड़ी जात रही, और ऊका पीछे जात रहा ऊ मोटरसाइकिलियावाला कान में ... ऊ का कहत हैं ... हाँ, कान में हेडफोनिया लगाइ के। मोटरगाड़ीवाला दिया दाहिने मुड़े का सिंगल, तो मोटरसाइकिलवाला रेस लगा के, कैंची काट के, आगे बढ़े का कोसिस किया। बस्स! बचात बचात लड़ गईं दुन्नो!

कपूरः ओहो, तो ये बात है! दरअसल, मुझे झपकी आ गई थी दो मिनट। ऐक्सिडेंट की आवाज़ से नींद टूटी, तो लगा कहीं अपनी गाड़ी का ही तो ...

मिश्राजी, बात काटते हुए, गर्व सेः साहेब, ई गाड़ी हम कौनो आज से नाहीं चलाय रहे हैं। इका हम चलाय रहे हैं पंदरह बरिस से, हाँ! आज तक कौनो जमीन का जीव छोड़िये, कौवो तक को चोट नाहीं पहुँचाए हैं। अइसे कइसे हो जाई ऐक्सिडेंट? आपन सावधानी रक्खो, और आगे पीछे वाला का गलती करेगा, उसका भी सोच के करो डरैभरी! ऐक्सिडेंट कभी होखबे नाहीं करेगा।

मिश्राजी, ब्रेक लगाते हुएः एल्लीजिए साहेब, आई गया आपका होटल!

(चलती हुई मोटरगाड़ी की आवाज़ बन्द हो जाती है।)

कपूर, थके स्वर में: हाँ भाई, होटल तो आ गया! अच्छा, धन्यवाद मिश्राजी। दो दिन ख़ूब अच्छी तरह घुमाया आपने, दफ़्तर का सारा काम ख़त्म हो गया। मिश्राजी, आपकी गाड़ी ली तो थी तीन दिनों के लिए, लेकिन ... चलिए, अच्छा है! ऐसा करिए, आप तीन दिन का भाड़ा ले लीजिए, और एक दिन परिवार के साथ मौज कीजिए।

मिश्राजीः बाह साहेब, बाह! हम कौनो बड़का अफसर हैं, के पैसा लें काम करे का, और करें परिबार के साथ मौज?

कपूरः अच्छा, तो मत लीजिए तीन दिन का भाड़ा! दो दिन का ले कर छुट्टी कीजिए!

मिश्राजीः अरे साहेब, गाड़ी आप बाबतपुर हवाईअड्डा पर बुक किए तीन दिन खातिर! अब हम दुइ दिन का भाड़ा ले कर छुट्टी कैसे कर लें? लोकसान हो जाई ना!

कपूर, हँसते हुएः इसीलिए तो कह रहा हूँ कि तीन दिन का भाड़ा ले लीजिए चुपचाप! मैं कल आराम करूँगा होटेल में, और रात की ट्रेन से चला जाऊँगा दिल्ली।

मिश्राजीः साहेब, एक बात कहें? बनारस बहुत्ते बढ़िया सहर है। चलिए, कल आपको घुमाय देते हैं बनारस। बिस्वनाथ मंदिर है, दसास्वमेध घाट है, गोदौलिया है, संकटमोचन है, इनवरसिटी है, अरे कौनो कमी है ...

कपूर, बात काटते हुए, थके स्वर में: रहने दीजिए मिश्राजी! दो दिन लगातार मीटिंग्स अटेंड करके थक गया हूँ। फिर, ये सब मैं पहले भी देख चुका हूँ। (बात समाप्त करने के अंदाज में) छोड़िए, जाने दीजिए!

(मोबाइल फ़ोन की घंटी बजती है।)

कपूरः ये मोबाइल फ़ोन कभी जान नहीं छोड़ते ... अब यह अँधेरे में फ़ोन बजने लगा! कपूर हीयर!

कपूर, ख़ुशी सेः शीला! कैसी हो शीला? ... हाँ हाँ, सब फ़र्स्ट क्लास है ... अरे, नहीं नहीं, काम आज ख़त्म हो गया ... नहीं ... अरे, कमाल करती हो, इतनी जल्दी कहाँ मिलेगा टिकेट? ... प्यार कम होने की बात नहीं है भई ... कल रात की ट्रेन में रिज़र्वेशन है ही ... हाँ, कल दिनभर फ़्री हूँ ... बोलो बोलो, क्या चाहिए? ... अरे, कार्पेट तो दिल्ली में ही ले लेंगे ना ... अरे क्या अच्छा क्या बुरा, हर जगह एक जैसा ही मिलता है ... अब मैं ट्रेन में कैसे लाऊँगा कार्पेट? ... अच्छा बाबा अच्छा, ले लूँगा; ख़ुश? ... ठीक है, ठीक है ... अच्छा, बाद में बात करते हैं, अभी कार से उतर रहा हूँ ... ओके ... बाय!

कपूरः हाँ भई मिश्राजी, बताइये, कितने पैसे हुए ?

मिश्राजीः साहेब, फिर उहै बात! पैसा त हम तब्भै लेंगे जब आपकी ... उ का कहत हैं ... हाँ, जब आपकी डिउटी खतम हुई जाय।

कपूर, झुँझलाते हुएः अरे कोई ज़बरदस्ती है क्या ? मेरी ड्यूटी ख़त्म हुई या नहीं, यह डिसाइड करने वाले आप कौन होते हैं ? मैंने सोचा था कि काम तीन दिन चलेगा, इसलिए गाड़ी तीन दिन के लिए हायर की थी। अब काम जल्दी ख़त्म हो गया, तो क्या मैं लड़ाई करूँ, कि काम जल्दी क्यों ख़त्म कर दिया ? दुनियाभर में लोग काम जल्दी ख़त्म करने पर ख़ुश होते हैं, लेकिन हमारे यहाँ? हमारे यहाँ काम जल्दी ख़त्म करना तो जैसे कोई अजूबा है, आदत ही नहीं है काम जल्दी ख़त्म करने की। डिज़गस्टिंग! बोलिए, तीन दिन के पैसे लेंगे या दो दिन के ?

मिश्राजी, गाड़ी स्टार्ट करते हुएः जाए दीजिए साहेब! हमको आपसे कौनो पैसा नाहीं चाहिए।

(मोटरगाड़ी चलने की आवाज।)

कपूरः अरे, रोको रोको !

(मोटरगाड़ी चलने की आवाज बन्द हो जाती है।)

कपूरः यह क्या तमाशा है ?

मिश्राजीः साहेब, आप जिसको तमासा कहते हैं ना, हम कहते है उसको उसूल। आपका काम जल्दी खतम हुइ गवा, उसकी खुसी हमको भी है। और आपका काम जल्दी खतम इस वजह से हुआ, के हम आपको ऐसन ऐसन रास्ता से पहुँचाए जहाँ टाइम का हर्जा होखबे नहीं किया तनिक्को! हमरा बिचार कुछ और रहता, तो आपका काम कभी हो पाता दू दिन में खत्तम? .... कहते हैं के आदते नहीं है हमको काम टाइम से खतम करने का, हुँः ...

कपूर, नर्मी सेः ठीक है, ठीक है, तभी तो मुझे अचरज हो रहा है! लोग तो बिना काम किए रुपए कमाने के पीछे पागल रहते हैं, और आप हैं कि काम पूरा करने के बावजूद रुपए लिए बिना भागे जा रहे हैं! अरे, रुपया ही नहीं कमाया, तो काम करने का क्या फ़ायदा?

मिश्राजी, हँसते हुएः बाह साहेब, बाह! गाँधीजी कतना रुपैया कमाए रहे? . ऊ का कहत हैं, हाँ, मदर टरेसा! मदर टरेसा कतना रुपैया कमाईं? हमार मालबीयजी कतना रुपैया कमाए?

कपूरः अरे, वे बड़े लोग थे, उनसे हमारा क्या मुक़ाबला? (हँसते हुए) अब घोड़ा घास से यारी करेगा, तो खाएगा क्या? बोलिए?

मिश्राजीः सही बात है साहेब, लेकिन कतना घोड़ा का नाम याद है आपको? जिसको देखिए, चेतके का नाम बोलेगा, काहे कि ऊ घास के परबाह किए बगैर, राना परताप के जान बचाने के लिए अपना जान दे दिया! आदमी रुपैया कमाने के लिए काम नहीं करता, काम करते रहने के लिए रुपैया कमाता है। और काम करता है खुसी के लिए।

कपूरः सुनने में अच्छी लगती हैं ऐसी बातें, लेकिन ये बातें सिर्फ़ सुनने भर की हैं!

मिश्राजीः नाहीं साहेब, आज भी हमसब जादा काम पैसे के लिए नाहीं करते! आप अपने बच्चे को ठोकर लगने से बचाते हैं, किसी आदमी को रस्ता बताते हैं, किसी जानबर को रोटी खिलाते हैं, अपनी माँ का चसमा

बनवाते हैं, अपनी जोरू का मन रखते है – तो क्या रुपैया कमाने के लिए, के कौनो मजबूरी में करते हैं? नाहीं साहेब, रुपैया आदमी के लिए है, आदमी रुपैया के लिए नाहीं है!

कपूर, सोचते हुएः हूँ ... अच्छा, मिश्राजी, ये बताइए, यहाँ अच्छा कार्पेट कहाँ मिलेगा?

मिश्राजी, हँसते हुएः एल्लीजिए साहेब, ईहो बढ़िया कहे! अरे, बगले में भदोही है, कौनो साठ–सत्तर किलोमीटर से जादा नाहीं होगा, उहाँ अच्छे से अच्छा कालीन मिल जाई आपको। लै चलें का कल?

कपूरः हाँ, कल चलते हैं। लेकिन दस बजने के बाद!

मिश्राजीः त हमको कौनसा जल्दी पड़ा है, ठीक दस बजे आ जाएँगे साहेब!

(संगीत)

अंसारीः आइए जनाब, आइए, आइए, आइए! ख़ाकसार को अंसारी कहते हैं। तशरीफ़ लाइए! फ़रमाइए, ख़िदमत में क्या पेश करूँ?

कपूरः कार्पेट दिखाइए कोई फ़र्स्ट क्लास!

अंसारीः ज़हे नसीब, जनाब, ज़हे नसीब! हमारे यहाँ एक से बढ़ कर एक चीज़ मिलेगी आपको, हाँ। जितने बड़े बड़े लोग हैं, सब हमारे यहाँ से ही ले जाते हैं ग़ालीचे। बिल्कुल सही जगह कदम पड़े हैं आपके! यह फ़रमाइए कि चीज़ कैसी नज़र करूं?

कपूरः भई, एक छोटा सा कार्पेट चाहिए ड्राइंग रूम के लिए, यही कोई पाँच फ़ुट लम्बा ...

अंसारीः बेशक जनाब!

अंसारी, पुकारते हुएः कुद्दूस मियाँ, अरे भई एक ऐसी बढ़िया चीज़ दिखाइए कि हुजूर वाह–वाह कर उठें ... वह नहीं, वह नहीं ... वह ...

वह उसके बाजू वाली ... हाँ ... इत्मीनान से ... इत्मीनान से ... भई वाह, चीज़ हो तो ऐसी! यह कालीन हुजूर के दौलतख़ाने को वह ज़ीनत बक़्शेगी, वह ज़ीनत बक़्शेगी कि हुजूर भी कह उट्ठेंगे, वल्लाह! उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा, ग़ालिब, हम बयाबाँ में हैं और घर में बहार आई है! फ़रमाइए हुजूर, है न क़ाबिले तारीफ़?

कपूरः हूँ, अच्छा है, लेकिन ...

अंसारीः लेकिन?

कपूरः लेकिन मेरे घर के पर्दे फ़ॉन कलर के हैं, उनके साथ लाल रंग का कार्पेट! नहीं, कुछ जमेगा नहीं! क्रीम कलर, या पीच कलर का, या हल्का ब्राउन – ऐसा कोई कार्पेट नहीं है क्या?

अंसारीः हुजूर, आपकी पसंद की दाद देनी होगी! आम ख़रीदार सुर्ख़ कालीन माँगता है, सुर्ख़, और ग़र्दख़ोर! आप जैसे हल्के रंगों की ख़्वाहिश तो बस, शौक़ीन ही करते हैं। कुद्दूस मियाँ, भूरे रंग की कालीन दिखाइए भई!

अंसारी, कपूर सेः हुजूर सफ़र कर के आए मालूम पड़ते हैं। बनारस से तशरीफ़ लाए हैं शायद?

कपूरः जी हाँ, फ़िलहाल तो बनारस से ही आ रहा हूँ, लेकिन मैं रहता दिल्ली में हूँ। आफ़िशियल टूर में बनारस आया था। काम जल्दी ख़त्म हो गया, तो सोचा, भदोही से कार्पेट ले लिया जाय!

अंसारीः बहुत खूब, बहुत खूब! देहली में बड़ा बेहतरीन शो रूम है हमारा, क़ुतुब मीनार के क़रीब, मेहरौली में। हमारे रिश्तेदार चलाते हैं। अच्छा कारोबार है। फ़रमाइए जनाब, क्या शौक़ फ़रमाएंगे? चाय, ठंडई, या यहाँ का ख़ास, आम का पन्ना?

कपूरः चाय–वाय रहने दीजिए। अभी थोड़ी देर पहले ही पी है। बस, कार्पेट दिखा दीजिए झटपट!

अंसारीः हुजूर, कालीन बस ये आई जाती हैं। यह लीजिए, यह आपका हुक्म हुआ, और ये हाज़िर हो गईं कालीनें! कुद्दूस मियाँ, ... हाँ, अरे भई, ज़रा जल्दी हाथ चलाइए, जनाब किसी आम इंसान की तरह नहीं हैं कि घंटों ज़ाया कर दें। यह, इधर रखिए! और, आपको कुछ भी पेश न करें, ऐसी हिमाकत तो हमसे न हो सकेगी!

अंसारी, पुकारते हुएः छुट्टन, ओ छुट्टन!

छुट्टन, दूर सेः जी मालिक! (पास से) जी मालिक!

अंसारीः अरे क्या जी मालिक जी मालिक कर रहा है! जा, दौड़ कर ताज़े आम का पन्ना ले आ। और जल्दी अइयो, सरकार को देर पसंद नहीं है, हाँ।

अंसारीः हुजूर, ये देखिए! कारीगरी का ऐसा उम्दा नमूना ढूँढे नहीं मिलेगा। क्या रूसी क्या जापानी, अजी हमारे काम की दाद तो ईरानी और तुर्क भी देते हैं! ये माल जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया और कनाडा तक जाता है! देखिए, क्या शानदार बुनाई है!

कपूरः बुनाई?

अंसारीः जी, बुनाई! और बुनाई भी कोई ऐसी–वैसी नहीं! हर इंच में एक सौ चवालीस गिरह हैं! कितना खूबसूरत डिज़ाइन है! यह, इसे पीछे से देखिए, बिल्कुल सीधा। कसावट देखिए इसकी, बरसों तक कुछ नहीं होगा! मोटाई देखिए! ऐसी बुनाई हर किसी के बस की नहीं है!

कपूरः हर इंच में एक सौ चवालीस गिरह?

अंसारीः जी हाँ, एक सौ चवालीस गिरह, या गाँठें! बड़ी बारीक़ कारीगरी है जनाब! आम कालीनें या तो जमाई हुई मिलेंगी, या साठ सत्तर गिरह वाली!

अंसारीः यह लीजिए, आ गया आपके लिए पन्ना! एक गिलास पीजिए, और हो जाइए ताज़ादम! पेट भी ठंडा, ज़ेहन भी दुरुस्त!

मिश्राजी, दूर से पास आते हुएः साहेब, मत पीजिए इका पन्ना! ई लड़कवा लाते–लाते दुइ चुस्की मार लिया है इसी गिलास से! हम बाहर खड़े–खड़े सब देख रहे थे।

अंसारीः अरे नामाकूल! बेहूदा हरक़तों से बाज़ नहीं आएगा तू?

(मारने की आवाज़। बच्चे के सिसकने की आवाज़।)

कपूरः अरे, अरे, मारिए मत बेचारे को! छोटा–सा बच्चा ही तो है। मन किया होगा, टेस्ट कर लिया। किसका बच्चा है? आपका?

अंसारीः अजी तौबा कीजिए! हमारे साहेबज़ादे तो बोर्डिंग इस्कूल में पढ़ते हैं बनारस में। ये बगल के गाँव के लोहार का लड़का है। रोज़–रोज़ के फ़ाक़ों से तंग आ कर इसका बाप डाल गया इसे हमारे पास। दुनिया जहान का कर्ज़ है उसके माथे। शराब की लत अलग! हर महीने पैसे ले जाता है, लेकिन घर पहुँचने से पहले ही बैठ जाता है दारू के अड्डे पर, और घोंट जाता है इसकी सारी कमाई!

कपूर, प्यार सेः तो ये बात है! लो छुट्टन, पन्ना पियो!

छुट्टन, घबराते हुएः नहीं साहब!

कपूरः पियो पियो, घबराओ मत! पन्ना अच्छा लगता है तुम्हें?

छुट्टन, सकुचाते हुएः अच्छा लगने की बात नहीं है साहब! इस पन्ने से इतनी अच्छी खुश्बू आ रही थी कि हमको अपनी अम्मा के हाथ के पन्ने की याद आ गई। हमसे रहा नहीं गया, और थोड़ा क़रीब से सूँघने का मन हो गया।

कपूर, बात काटते हुएः जिसको देख कर इन मिश्राजी ने समझा, कि तुम गिलास जूठा कर रहे हो। लो, पियो, शायद इसका स्वाद भी तुम्हारी माँ के बनाए पन्ने जैसा ही हो! पियो, डरो मत!

(पन्ना पीने की आवाज़।)

कपूरः कैसा था, माँ के बनाए पन्ने जैसा, या उससे अच्छा?

छुट्टनः उससे अच्छा! अम्मा तो फीका पन्ना बनाती थी।

कपूर, हँसते हुएः तो अब जब माँ के पास जाना, तो उन्हें गाढ़ा पन्ना बनाने को कहना।

छुट्टन, धीरे सेः साहब, हमारी अम्मा तो पिछले साल ईद में ही गुज़र गई!

कपूरः कोई बात नहीं। अच्छे लोगों की ज़रूरत तो ऊपरवाले को भी पड़ती होगी न, इसीलिए बुला लिया होगा तुम्हारी अम्मा को! है न?

छुट्टन, धीरे सेः पता नहीं साहब।

कपूरः अब उदास मत हो! ये हैं न अंसारी साहब! तुम्हारी हर ज़रूरत का ख़याल रखने वाले।

अंसारीः हुजूर, कहाँ पड़ गए आप भी इस चक्कर में!

अंसारी, छुट्टन सेः जा बे छुट्टन, काम कर अपना! बड़ों के बीच बकर–बकर नहीं करते। अब खड़ा–खड़ा मुँह क्या ताक रहा है? चल, दफ़ा हो यहाँ से!

अंसारीः हुजूर, तो फ़रमाइये, बँधवा दूँ कालीन?

कपूरः अंसारी साहब, आपकी कालीन में लचक है तो कसावट भी है, ऊपर से सॉफ़्ट है तो नीचे से हार्ड भी है!

अंसारी, खुशी सेः यही तो ख़ासियत है हमारी जनाब!

कपूरः और कुछ ऐसी ही ख़ासियत आपकी बोली में भी है। कभी शहद से भी ज़्यादा मीठी, और कभी करेले से भी ज़्यादा कड़वी!

(अंसारी सकपकाहट में अजीब सी आवाज़ें निकालता है।)

कपूरः ख़ैर, आप जो करते हैं, कीजिए! उससे मेरा क्या लेना देना। यह ब्राउन वाली कालीन मुझे पसंद है।

अंसारीः तो इसे ही बँधवा देता हूँ! कुद्दूस मियाँ, भई, कालीन बाँध दीजिए! और देखिए, हुजूर को देहली जाना है। हुजूर, आपने दाम की तो बात ही नहीं की?

(दूर से शोर सुनाई देता है। बच्चे के ज़ोर–ज़ोर से रोने और किसी के डाँटने–मारने की आवाज़ आती है।)

कपूरः अरे, यह तो छुट्टन रो रहा है।

(आवाज़ और साफ़ सुनाई देती है।)

दिलीपः क्यों बे? खुद तो आवारा हो ही गया है, अब बाक़ी को भी बरबाद करने पर तुला है? हैं?

(मारने और रोने की आवाज़।)

अंसारीः अरे दिलीप, बंद करो ये सब। ग्राहक का तो ख़याल करो।

(दिलीप के चीखने की आवाज़।)

दिलीपः दाँत काटता है? ठहर ज़रा! अरे, पकड़ो, पकड़ो बदमाश को।

छुट्टन, हाँफ़ते हुएः साहब, हमको बचा लीजिए!

कपूरः अरे बेटा, मुझसे क्यों कह रहे हो? अंसारी साहब से कहो न!

छुट्टनः ये अंसारी साहब बहुत ख़राब हैं।

अंसारी डाँटता हैः चुप बे, शैतान की आँत।

छुट्टनः इन्होंने बाईस बच्चे क़ैद करके रखे हैं! सुबह पाँच बजे से शाम चार बजे तक हमसे कालीन बुनवाते हैं।

अंसारी डाँटता हैः तू ख़ामोश होगा कि करूँ मैं तेरा इलाज? कुद्दूस, पकड़ तो इसे! इसके बाप पर तरस खा कर काम दिया, महीने के हज़ार रुपए देता हूँ, खाना देता हूँ, ऊपर से आज छुट्टी दी, कि उँगलियों में ज़ख़्म है – इस भलमनसाहत का यह सिला मिल रहा है मुझे! बोलिए जनाब, मुर्ग़े की तरह इसकी गर्दन मरोड़ देनी चाहिए या नहीं?

कपूरः अंसारी साहब, भलमनसाहत की गर्दन तो आप पहले ही मरोड़ चुके हैं, फिर छः साल के इस बच्चे की गर्दन मरोड़ना तो शायद आपके बाएँ हाथ का खेल होगा!

मिश्राजीः साहब, ई का कह रहे हैं? होस में आइए। ई लोग बड़ा पाटी है। बिगड़ गया, तो जिंदा वापस जाने नाहीं देगा!

कपूरः बस! कल तो कह रहे थे कि रुपया आदमी के लिए है, आदमी रुपए के लिए नहीं है, और आज इस बच्चे पर भेड़–बकरियों से बदतर सुलूक होते देख कर भी आपकी आत्मा नहीं जाग रही?

अंसारीः कान खोल कर सुन लो, यह देहली की पार्लमेंट की तक़रीर देहली में ही सुनाना। पैंतीस हज़ार रुपए दो, यह कालीन गाड़ी में लादो, और मुड़ कर मत देखो! समझ गए कि आदमी बुलवाऊँ?

कपूरः आदमी बुलवा लें तो अच्छा होगा। पुलिस को उन्हें खोजने में मेहनत नहीं करनी पड़ेगी! सारे बच्चे तो पहले ही एक जगह होंगे, उस बड़े फाटक के बाद, क्यों? और सबूत के तौर पर ये बँधा–बँधाया कालीन, वाह अंसारी साहब, कालीन की गिरह बँधवाते–बँधवाते आपने ख़ुद अपने लिए गिरह बँधवा ली!

अंसारीः बोल तो ऐसे रहे हो जैसे तुम ख़ुद ही पुलिसवाले हो!

कपूरः क्यों? क्या अत्याचार का विरोध करने के लिए पुलिस में होना ज़रूरी है? किसे नहीं मालूम कि बंधुआ मज़दूरी करवाना जुर्म है? कौन नहीं जानता कि मासूम बच्चों से काम करवाना अपराध है? मेरे एनजीओ के दोस्तों ने कल ही मुझे कार्पेट इंडस्ट्री में बच्चों के एक्सप्लायटेशन के

बारे में बताया था। उन्होंने मुझे इस शर्त के साथ जाने दिया था, कि अगर यहाँ कुछ गड़बड़ हुई, तो मैं उन्हें तुरन्त बताऊँ!

अंसारीः बताओगे तो तब न जब वापस जा पाओगे! और यह जो तुम्हारी जेब से मोबाइल फ़ोन झाँक रहा है, इसे हमारे सुपुर्द कर दो!

कपूरः ये लीजिए!

अंसारीः अरे, ये तो ऑन है।

कपूरः जी हाँ। जब आप छुट्टन को नामाकूल की पदवी से नवाज़ रहे थे, तभी से मैंने अपने दोस्त को फ़ोन लगाया हुआ है। बात करेंगे? अब फ़ोन से क्या बात करेंगे, वे तो बस पहुँचते ही होंगे ....

(गाड़ियों के आने और रुकने की आवाज़।)

कपूरः लीजिए, आ भी गए! जाइए, इस बार ख़िदमत में ख़ुद को पेश कीजिए, अपने साथियों को पेश कीजिए, और कीजिए इन मासूम बच्चों को आज़ाद!

छुट्टनः जाइए मालिक, बोलिए, आइए जनाब, आइए, आइए, आइए! ख़ाकसार को अंसारी कहते हैं, तशरीफ़ लाइए! फ़रमाइए, ख़िदमत में क्या पेश करूँ? लेकिन होशियार, आपकी चिकनी–चुपड़ी बातों में हर कोई नहीं आने वाला!

(छुट्टन और कपूर हँसते हैं।)

(संगीत)

मोनी *

(बर्तनों के खनखनाने की आवाज़।)

उर्मिला, पुकारते हुएः बबलू, ओ बबलू, आओ, खाना लग गया बेटा! सुनिए जी, आइए, खाना लग गया! अरे, अब तुम लोग आओगे भी, या खाना ऐसे ही ठंडा होता रहेगा?

अजय, पास आते हुएः अजी, ठंडा कैसे होता रहेगा? आप इतना अच्छा खाना बनाती हैं कि आदमी खाना तो क्या, थाली, प्लेट, चम्मच, यहाँ तक कि उँगलियाँ भी चबा जाए! देखें, क्या बना है!

(बर्तन खनखनाते हैं।)

अजय, ख़ुशी सेः अरे वाह वाह वाह वाह! लौकी की रसेदार सब्ज़ी, गुड! बैंगन की कलौंजी, ग्रेट! और इसमें क्या है, अहा, अरहर की दाल! ऊँहूँ, मुँह में पानी नहीं आया, बाढ़ आ गई उर्मिला, बाढ़ आ गई!

उर्मिला, शर्माते हुएः हटिए, मूँग की दाल और अरहर की दाल में फ़र्क़ तो जानते नहीं, और तारीफ़ के पुल बाँधे जा रहे हैं!

अजयः इंजीनियर अगर पुल नहीं बाँधेगा, तो क्या बाँधेगा, बकरी?

उर्मिला, शरारत सेः क्यों, इंजीनियरों को बकरी बाँधने की मनाही है क्या? चलिए, बैठिए।

उर्मिला, पुकारते हुएः बबलू, अब आओ भी बेटा। पापा खाना खाने बैठ गए हैं।

उर्मिलाः आप शुरू कीजिए।

उर्मिला, पुकारते हुएः बबलू!

बबलू, झल्लाते हुएः क्या मम्मी, तुम तो आव देखती हो न ताव, बस, घिसे हुए रिकॉर्ड की तरह चालू हो जाती हो, बबलू, बबलू, बबलू! अरे, चैप्टर तो कम्प्लीट होने दिया करो!

उर्मिलाः जब तुम्हें मालूम है कि नौ बजे खाना खाने का टाइम है, तो नौ बजे से पहले चैप्टर क्यों नहीं कम्प्लीट करते, हूँ?

बबलूः मम्मी, तुम तो ऐसे बोलती हो जैसे खाना नहीं हुआ, रेडियो पर न्यूज़ हो गया, नौ बजे ब्रॉडकास्ट होगा ही! (नक़ल उतारते हुए) ये आकाशवाणी है। अब आप मम्मी से समाचार सुनिए। तीन पत्रिकाओं ने आज मेरी कहानियाँ वापस कीं ...

उर्मिलाः ... झुट्ठे, कब वापस कीं मेरी कहानियाँ?

बबलूः तुमने टिकट लगा, पता लिखा लिफ़ाफ़ा साथ में भेजा ही नहीं होगा, वरना ज़रूर आ जातीं वापस!

अजय, हँसी दबाते हुएः अच्छा, अच्छा, ये चुहल बाद में करना। खाना लो बेटा, ठंडा हो रहा है।

(बर्तन खनखनाते हैं।)

बबलू, शिकायती लहज़े मेंः एंहें, छी छी छी! यह क्या, तुमको कुछ और बनाने को मिलता ही नहीं क्या? वही सड़ी–सी लौकी! यह काला–काला मरे चूहे जैसा बैंगन! और यह दाल!

उर्मिलाः दाल साठ रुपए किलो है। और तुम इस खाने को सड़ा कह रहे हो? पापा को देखो, कितनी ख़ुशी से खा रहे हैं बेचारे!

बबलूः अब तुम ख़ुद ही उन्हें बेचारा कह रही हो! मेरे लिए पराँठे बना दो न मम्मी!

उर्मिलाः अच्छा, तुम एक रोटी लो, मैं पराँठे बनाती हूँ।

बबलू, ख़ुशी सेः ये ...

(बर्तन खनखनाते हैं।)

बबलूः मम्मी, तुम बर्तन कैसे धोती हो? कितने गन्दे हैं! प्लेट में डिटर्जेंट लगा है। गिलास में भी। पापा, आपकी प्लेट में भी कुछ लगा है!

उर्मिलाः कहाँ लगा है, दिखाओ? कहाँ है?

बबलू, चिढ़ते हुएः यह क्या है, देखो? लाइए पापा, अपनी प्लेट दीजिए, मैं धोता हूँ।

(पानी गिरने की आवाज़।)

उर्मिलाः बेटा, इतना बारीक़ दिखाई नहीं देता। बर्तन धोते समय चश्मा नहीं पहनती न!

अजयः जब से वह पिछली आया चली गई, तब से यही प्रॉब्लेम है।

बबलूः तुम दूसरी मेड क्यों नहीं रख लेतीं मम्मी?

उर्मिलाः मैं पराँठे बना रही हूँ बेटा, ज़ोर से बोलो!

बबलू, चिल्लाते हुएः तुम दूसरी मेड क्यों नहीं रख लेतीं मम्मी?

उर्मिला, दूर सेः मेड मिलेगी, तब तो रखूँगी! (पास आते हुए) यह लो पराँठे!

बबलूः दो!

बबलू, खाते हुएः मेड मिलेगी क्यों नहीं, लेकिन तुम रखना ही नहीं चाहतीं! न ज़्यादा पैसे देने पर राज़ी होती हो, न ज़्यादा छुट्टी देने पर! ऐसे में कौन आएगी तुम्हारे पास?

अजयः बात तो ठीक है बबलू की। अब वह ज़माने लद गए जब दिन में दो बार, साल में तीन सौ पैंसठ दिनों के लिए आया मिला करती थी। तुम ऐसा क्यों नहीं करतीं? आस—पास के घरों में देखो, उनकी आया से बात करो।

बबलूः हाँ, ताक—झाँक करने की तुम्हारी आदत कब काम आएगी?

उर्मिलाः ताक—झाँक मैं करती हूँ या तुम? बता दूँ पापा को, कल क्या कर रहे थे?

बबलूः बस, बात ही करो तुम, और पराँठे मत दो!

उर्मिला, हँसते हुएः अच्छा, पोल खुलने का डर हुआ तो पराँठे याद आने लगे! लाती हूँ पराँठे।

(संगीत)

उर्मिला, स्वगत : उफ़, कितना बोरिंग काम है यह पड़ोसियों के दरवाज़े ताकना! लेकिन आया रखनी है, तो यह भी कर के देख लेते हैं! बबलू के रोज़ रोज़ के ताने कौन सहेगा? लेकिन कोई नज़र भी तो आए! वह, वह निकली एक आया शर्मा जी के गेट से! ज़रा पास आए तो पूछती हूँ। हाँ, यह आई पास! धत् तेरे की, यह तो उनकी बरेली वाली बहन है! एक आया उधर से आ रही है। बबलू ठीक कहता था, ताक—झाँक करने के अपने अलग फ़ायदे हैं! यह लो, वह आया तो वहीं से मुड़ गई! अरे, घोष साहब की छत पर वह बच्ची कौन है? उनका तो कोई बच्चा नहीं! कपड़े फैला रही है। ज़रूर उनकी आया की लड़की है! लेकिन, उनके घर तो कोई आया नहीं! दोनों मियाँ—बीवी सुबह काम पर चले जाते हैं और शाम को लौटते हैं। चलो पूछ कर देखती हूँ! (पुकारते हुए) ए! ... ए! ... ए लड़की! ... ए लड़की ... (स्वगत) कमाल है, सुनती ही नहीं! वहाँ अपनी छत घोष साहब की छत के पास है, वहीं जा कर बोलती हूँ ... (पुकारते हुए) ए लड़की! ... ए लड़की! ... अरे इधर—उधर क्या ताक रही है? इधर

देख! ... (स्वगत) बहुत डरी हुई लगती है। चोर–वोर है क्या? लेकिन, चोर होती तो कपड़े क्यों फैलाती? उल्टा उन्हें समेट कर रफू चक्कर नहीं हो जाती? ... (कड़े स्वर में) ... ए लड़की! इतनी देर से पुकार रही हूँ, सुनती क्यों नहीं? क्या कर रही है यहाँ? क्या नाम है तेरा?

मोनीः मोनी।

उर्मिलाः यहाँ क्या कर रही है?

मोनीः काम।

उर्मिलाः माँ कहाँ है तेरी? अरे इधर–उधर क्या ताक रही है? जवाब दे!

मोनीः त्रिपुरा।

उर्मिलाः क्या? क्या तेरी माँ त्रिपुरा में है?

मोनीः हाँ।

उर्मिलाः तो तू यहाँ किसके साथ है?

मोनी, जाते हुएः अकेले!

उर्मिलाः अरे अरे, जाती कहाँ है?

उर्मिला, स्वगत : यह लो! यह बच्ची तो भाग कर छत से नीचे चली गई। बहुत डरी हुई लगती है। कुछ गड़बड़ है! शाम को इन्हें बताऊँगी।

(संगीत)

उर्मिला, स्वगत : कल भी कोई आया नहीं मिली, आज भी नहीं! देखें, घोष साहब की छत पर वह लड़की फिर दिखती है या नहीं। इन्होंने तो उसकी बात रिकॉर्ड करने को कहा है। चलो शायद एक कहानी के लिए मसाला मिल जाए! वह आई। आज कपड़े नहीं फैला रही। क्या नाम था इसका? हाँ, मोनी!

उर्मिला, पुकारते हुएः मोनी!

उर्मिला, स्वगत : अरे वाह! आज तो पहली बार में ही सुन लिया। इधर आने भी लगी।

उर्मिलाः आज कपड़े नहीं फैला रही?

मोनीः भात दो।

उर्मिलाः क्या?

मोनीः भात दो।

उर्मिला, स्वगत : हे भगवान, अब इसे भात कैसे दूँ? थाली गन्दी हो जाएगी।

मोनीः भात दो न माँ।

उर्मिला, स्वगत : बेचारी बहुत भूखी लगती है। किसी टूटी प्लेट में दे देती हूँ इसे खाना। (मोनी से) ठहर, लाती हूँ!

मोनीः जल्दी। बाबू आ जाएगा।

उर्मिला, स्वगत : बाबू? कौन बाबू? यह इतनी डरी हुई क्यों है? और ... और यह बाबू कौन है? (मोनी से) यह ले भात! अरे अरे! (स्वगत) यह तो मुट्ठी भर–भर कर सूखा भात खाने लगी!

उर्मिलाः ठीक से खा। (स्वगत) बाप रे, यह तो ऐसे खा रही है जैसे जन्मों की भूखी हो! यह लो, खाना ख़त्म हुआ नहीं कि फिर भाग गई! जूठी प्लेट मेरे धोने के लिए छोड़ गई महारानी!

(संगीत)

बबलूः क्यों मम्मी, पिछले पंद्रह दिनों से गुमसुम हो?

अजयः बेटा, मम्मी एक स्टोरी पर काम कर रही हैं।

उर्मिलाः हाँ, और कहानी पूरी होने को भी आ गई है। बस, अंत बाक़ी है। मैंने बताया था न, मोनी कैसे हमेशा डरी–डरी सी रहती थी! डरी, और भूखी! खाने पर झपट्टा मारते समय भी चारों तरफ़ नज़र दौड़ाए रखती। जैसे कोई ख़तरा हमेशा सर पर मँडराता था उसके!

अजयः हूँ।

उर्मिलाः तीन–चार दिन यही सिलसिला चला। धीरे–धीरे मोनी का डर कुछ कम हुआ। बोलने भी लगी। उसने बताया, उसके माँ–बाप त्रिपुरा में रहते हैं। परिवार में भाई बहन सब हैं। ग़रीब हैं, सो सब को कमाना पड़ता है।

बबलूः फिर, जल्दी बताओ न मम्मी, मोनी घोष अंकल के वहाँ कैसे आ गई?

उर्मिलाः मोनी पहले कहीं और काम करती थी। बोलती है, साहब के घर बड़े–बड़े लोग आते थे।

बबलूः मोनी इतनी ग़रीब है। उसे तो सब आदमी बड़े आदमी ही लगेंगे।

उर्मिलाः हाँ, यह बात भी है। फिर उस समय मोनी और भी छोटी थी। कोई नौ साल की रही होगी। बोलती है, साहब की लड़की कॉलेज में पढ़ती थी। दोनों लड़के इंजीनियरिंग पढ़ते थे किसी दूसरे शहर में।

बबलूः जानकारी तो पूरी इकट्ठा करती है ये मोनी! मैं तो आज तक उसे देख भी नहीं पाया।

उर्मिलाः देखोगे कैसे? उसे बाहर निकलने की मनाही जो है! ख़ैर! छुट्टियों में लड़के घर आते। चहल–पहल हो जाती। अच्छा खाना पकता। सब घूमने जाते।

(फ़्लैश बैक)

(संगीत)

मोनी, स्वगत : बाबू, माँ, दादा, दीदी, सब तीन घंटे से बाहर हैं। मैंने कितना कहा कि मुझे भी ले चलो, लेकिन नहीं! बोले, गाड़ी में जगह नहीं है। झूठ बोलते हैं! जगह नहीं है, तो उस दिन दीदी की सहेली के लिए जगह कैसे हो गई थी? ये लोग मुझे गन्दी समझते हैं। आज मैं भी दिखा दूँगी कि मैं कितनी सुंदर हूँ। ये सब जो दीदी का सुंदर लगने वाला सामान है न, सब लगाती हूँ। आह, कितनी अच्छी है इस तेल की ख़ुश्बू! जैसे ख़ूब सारे फूल हों। थोड़ा और लगा लूँ। आह, माथा ठंडा हो गया। ये पाउडर ... मैं तो दीदी से भी ज़्यादा गोरी हो गई! वह! और इसको होंठ पर लगा लूँ। गाल पर भी थोड़ा–थोड़ा! वह लोग मुझे देखेंगे तो पहचान नहीं पाएँगे। परी लग रही हूँ बिलकुल! जैसे गाँव में नाटक में आई थी। बस, अब यह सेंट लगा लूँ तो ...

(दरवाज़ा खुलने की आवाज़। शीशी टूट कर गिरने की आवाज़।)

कड़कती हुई मर्दाना आवाज़ः तो ये होता है हमारी एब्सेंस में!

महिला स्वरः हाय राम, हज़ार रुपए के नए सेंट की शीशी तोड़ डाली इसने! कैसी भूत जैसी दिख रही है!

मर्दाना आवाज़ः तुझे खिलाते है, पिलाते है, बच्चे की तरह रखते है, पर तेरा लालच है कि कम ही नहीं होता।

महिला स्वरः खाना–पीना तो बहुत खिलाया इसको! अब टॉनिक खिलाओ।

(मारने, मोनी के नहीं बाबू, नहीं माँ, चिल्लाने की आवाज़।)

(संगीत – फ़्लैश बैक समाप्त)

उर्मिलाः उन लोगों ने मोनी के बाल काट डाले। मोनी वापस अपने घर भाग गई। लेकिन, जब हमेशा साथ रहने वाले होठों को भी खाना मिलने पर एक दूसरे से अलग होना पड़ता है, तो बेचारी मोनी कब तक परिवार

के साथ रह पाती! उसे एक बार फिर काम की तलाश में बाहर निकलना पड़ा। इस बार उसे किसी सेठ के घर काम मिला।

अजयः अमीर घर में तो आराम रहा होगा।

उर्मिलाः आराम? हाँ, आराम था, लेकिन मोटे सेठ, भारी भरकम सेठानी, उनके रिश्तेदारों, और उनके कुत्तों को! तीन तल्ला हवेली में सबकी जी हुजूरी करते–करते बीमार पड़ गई मोनी। वैसे तो और भी नौकर–चाकर थे वहाँ, लेकिन किसी नौकर के छुट्टी चले जाने पर काम का बोझ बढ़ जाता।

बबलूः इसका मतलब, सेठ इतना ख़राब भी नहीं था। छुट्टी तो देता था कम–से–कम!

उर्मिलाः बाक़ी नौकर बड़े थे, अपनी बात कह पाते होंगे। लेकिन दस साल की मोनी के लिए तो छुट्टी एक सपना थी। झाड़ू–पोंछा, कपड़ा धोना, बर्तन माँजना, उसके जिम्मे कोई भी काम अड़ा दिया जाता। जिस उम्र में बच्चे ख़ुद को भी नहीं सँभाल पाते, मोनी को भारी काम सँभालने पड़ते थे। उसे अक्सर चोट लग जाती।

(फ़्लैश बैक)

(संगीत)

मोनीः आंटी जी, आज बर्तन नहीं धो पाएँगे, पाँव जल गया है।

महिला की कर्कश आवाज़ः बहाने मत बना निगोड़ी, बर्तन पाँव से धोती है कि हाथ से? आए दिन कोई–न–कोई नखरा लगा ही रहता है इसका! चल, काम कर!

(कुत्ते का किकियाना)

महिला, लाड़ सेः अले अले अले अले क्या हो गया मेले प्याले टॉमी बाबा को, देखें तो! (घबरा कर) अरे हाय राम, ये चोट कैसे लग गई? सुनो जी, देखो न, कितनी ज़ोर की चोट लगी है अपने टॉमी को!

पुरुष स्वरः क्या हो गया, देखें! अरे, यह तो जल गया है! यह जल कैसे गया?

(कुत्ते का किकियाना)

महिलाः ज़रूर मोनी ने ही कुछ किया है। तब से जल गई, जल गई, रट रही है।

महिला, कर्कश स्वर में: क्यों री, अब साँप क्यों सूँघ गया तुझे? बोल, क्या किया है तूने टॉमी के साथ? बोल! बोल न!

मोनीः मैंने कुछ नहीं किया। वह अपने आप ही जल गया!

पुरुष स्वरः अपने आप ही जल गया? अपने आप ही जल गया, माने? वह कुत्ता है, कोई आदमी नहीं जो सिगरेट जलाते–जलाते जल जाय! सच–सच बोल, कैसे जलाया तूने टॉमी को?

(कुत्ते का किकियाना)

मोनी, हिचकते हुएः छत पर सुरेश भैया पत्ते जला रहे थे। लपट ज़्यादा तेज़ हो गई तो भैया डर गए। मुझे बोले, पत्ते हटाओ, और ख़ुद भाग गए। मैंने पत्ते उठाए, पर वह तो सुलग रहे थे। मैं उन्हें ठीक से थाम नहीं पाई। हवा के ज़ोर से पत्ते उड़े। कुछ टॉमी की पीठ पर गिरे, कुछ मेरे पाँवों पर।

महिला, कर्कश स्वर में: तुझे तो मैंने नीचे पोंछा लगाने को कहा था, तू छत पर कैसे पहुँच गई?

मोनीः पोंछे का कपड़ा लेने।

महिला, कर्कश स्वर में: पोंछे का कपड़ा लेने, या सुरेश के साथ लसड़–लसड़ करने? जब देखो उसके पीछे–पीछे, पीछे–पीछे घूमती है। है तो बित्ते भर की, पर लच्छन देखो इसके ज़रा!

मोनीः पोंछे का कपड़ा छत पर ही तो रहता है!

(मारने की आवाज़।)

महिलाः एक तो ग़लती करती है, उस पर से ज़बान लड़ाती है।

(मारने की आवाज़। मोनी की सिसकियों में दबी मैंने ग़लती नहीं की, मैंने ग़लती नहीं की, कहने की आवाज़।)

(संगीत – फ़्लैश बैक समाप्त)

उर्मिलाः मोनी पर सेठानी का हाथ एक बार क्या छूटा, बारबार छूटने लगा। बीमार तो वह रहने ही लगी थी। हॉस्पिटलाइज़ेशन की नौबत आई, तो सेठ ने मोनी के घरवालों को पाँच सौ रुपए दे कर मोनी को चलता किया।

बबलूः तो पाँच सौ रुपयों में हो गया मोनी का इलाज?

उर्मिलाः इलाज! इलाज क्या होता, वह पाँच सौ रुपए तो घर के खाने–ख़र्चे में स्वाहा हो गए। महीनों तक ज़िदगी और मौत के बीच झूलती रही बेचारी मोनी।

अजयः फिर?

उर्मिलाः फिर! फिर तक़दीर को तरस आया। मोनी अपने–आप ही ठीक होने लगी। इसी बीच एक नौकरीपेशा जोड़े ने मोनी के पिता को पाँच हज़ार रुपए दिए, और मोनी को ले गया। मोनी का पिता ख़ुश था। उसे क्या पता था कि उसने अपनी ही बेटी को जीते जी नर्क में ढकेल दिया था!

बबलूः क्यों, क्या हुआ वहाँ?

उर्मिलाः शुरू–शुरू में तो मोनी को जानवरों की तरह बाँध कर रखा जाता, कि भाग न जाय। पति–पत्नी सुबह काम पर चले जाते, और शाम को घर लौटते। मोनी सुबह से शाम तक भूखी रहती, कुछ भी खाए

बग़ैर। उसे बस एक वक़्त खाना मिलता। वह सुबह झाड़ू–पोंछा करती, रात को बर्तन माँजती, और दिन भर रस्सी से बँधी पड़ी रहती। पास–पड़ोस तक को इसकी भनक भी नहीं लगी।

अजयः बड़े निर्दयी लोग थे!

उर्मिलाः बाद में कपड़े धोने का काम भी मोनी के सिर मढ़ दिया गया। पति–पत्नी फ़्रिज और दरवाज़े पर ताला लगा कर, खिड़कियाँ जाम कर, सुबह चले जाते। मोनी कपड़े धोती। ज़रा सी भी गंदग़ी मिलने पर उसका खाना आधा कर दिया जाता। बस, अच्छी थीं, तो दो बातें!

बबलूः वह क्या?

उर्मिलाः मोनी को रस्सी से बाँधना छोड़ दिया उन्होंने। और धुले कपड़े पसारने के लिए उसे छत पर जाने की आज़ादी भी मिल गई।

बबलूः और उस आज़ादी का फ़ायदा उठा कर मोनी भाग गई!

उर्मिलाः नहीं, वह मानसिक और शारीरिक रूप से टूट चुकी थी। हमेशा डरी, हमेशा थकी, हमेशा भूखी! एक और थपेड़े के इंतज़ार में! कि अचानक एकदिन उस पर नज़र पड़ गई मेरी!

अजयः क्या? तो हमारे पड़ोसी घोष साहब ही मोनी के साथ ऐसा बुरा बर्ताव करते हैं?

उर्मिलाः जी हाँ! मोनी ने पिछले पंद्रह दिनों में धीरे–धीरे मुझे सब बता दिया है, और मैंने उसकी बातें टेप भी कर ली हैं।

बबलूः तो चलो, छुड़वाएँ उसको घोष अंकल के चंगुल से!

अजयः नहीं, पहले पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करनी चाहिए। लेकिन, उर्मिला, तुम्हें गवाही देनी पड़ सकती है।

उर्मिलाः मैं तैयार हूँ।

(संगीत)

इंस्पेक्टरः आपकी समझदारी, दिलेरी, और ठंडे दिमाग़ की दाद देनी होगी मिस्टर अजय और मिसेज़ उर्मिला! आपने अपराधी का पता ही नहीं बताया, उसके ख़िलाफ़ पुख़्ता सबूत भी दिए। हमने मिस्टर और मिसेज़ घोष को गिरफ़्तार कर लिया है।

बबलूः गिरफ़्तार?

इंस्पेक्टरः हाँ बेटा! चौदह साल से छोटे बच्चों से घर या दूकान में काम करवाना जुर्म है। इसके अपराधी को दो साल तक की क़ैद और बीस हज़ार रुपए तक जुर्माना हो सकता है। तुम्हारी मम्मी ने एक मिसाल क़ायम की है।

उर्मिलाः सच पूछिए इंस्पेक्टर साहब, तो ये सब बबलू की वजह से ही हुआ। न ये मुझे आस–पास के घरों में ताक–झाँक करने को कहता, और न मोनी पर मेरी नज़र पड़ती!

अजयः बेटा, तुम्हारी उम्र में तो ताक–झाँक करने को माफ़ किया जा सकता है, लेकिन तुम्हारी मम्मी की उम्र में नहीं! उर्मिला जी, बहाने बनाना छोड़िये और अब ताक–झाँक बिल्कुल बन्द कीजिए!

उर्मिलाः लेकिन ताक–झाँक किए बिना आया कैसे मिलेगी?

बबलूः आया नहीं चाहिए मम्मी, मैं ख़ुद ही प्लेट धो लूँगा!

(सब हँसते हैं।)

(संगीत)

आरती *

उस्तादः आओ मेरी चवन्नियो, अठन्नियो, दुअन्नियो, खोटे सिक्को, आओ, जल्दी आओ! आक थू! क्या लाया बे तू मैले?

मैलाः यह उस्ताद! तेंतालिस रुपए की चिल्लर (पैसे खनकने की आवाज़), दो–दो रुपए के यह तीन नोट, एक रुपए का (खाँसता है) ... आक थू ... एक रुपए का यह एक नोट, और बीस रुपए का यह एक नोट! पूरे इकहत्तर रुपए! सूँघ कर देखो, कैसी ख़ुश्बू मार रहा है भमक–भमक यह बीस रुपए का नोट!

उस्तादः हाँ, ख़ुश्बू तो है! किसकी पॉकेट से निकाला?

मैलाः पॉकेट से नहीं निकाला उस्ताद, पॉकेट से नहीं निकाला! गली में एक मेम साहब जा रही थी। बस, उस के सामने खड़ा हो गया। उसने दाएँ–बाएँ से निकलने की कोशिश की, लेकिन मैं गली (खाँसता है) ... आक थू ... मैं गली में बीचोंबीच खड़ा था। मेम साहब बड़ी चालाक बन रही थी। सोचा होगा कि मुझको धकेल के आगे बढ़ जाएगी। लेकिन (हँसता है) जैसे ही पास आई, बदबू से परेशान हो गई। अंग्रेज़ी में बड़बड़ाने लगी। बेचारी की हालत देखने लायक थी। फटाक से पर्स खोल कर पाँच रुपया देने लगी। मैंने भी अंग्रेज़ी में कहा, प्लीज़ गिव मोर, मदर डेड!

उस्तादः अच्छा किया! पॉकेटमारी में ख़तरा है। भीख माँगने का धंधा ईमानदारी का है! पैसा कम है, लेकिन, बच्चा देख कर लोग रहम से दे देते हैं। ले ... (खाँसता है) ... बीड़ी पी! अबे एक सुट्टा लगाने को कहा था, पूरी बीड़ी धौंकने को नहीं कहा था! और थोड़ी दूर बैठ। ऐसी बास आती है तुझसे कि सूअर भी खाना उलट दे! क्यों बे ढैंचे, तू क्या लाया?

ढैंचाः उस्ताद, आज तो अच्छी कमाई हुई है!

उस्तादः अरे तो उतर न अपनी इस काठ की गाड़ी से! (गाड़ी की खटर–पटर की आवाज़) ... बोरी की चिल्लर (पैसे खनकने की आवाज़) ...

ढैंचाः अठारह रुपए की चिल्लर बोरी के ऊपर है। नीचे सौ का एक, पचास के तीन, दस के सात नोट, और सत्ताइस रुपए की चिल्लर है।

मैलाः तीन सौ पैंसठ रुपए!

उस्तादः नज़र मत लगा मैले, मंदिर में मंगलवार को भी कमाई नहीं होगी, तो कब होगी?

मैलाः कल से मैं बैठूँगा मंदिर पर। ढैंचा कमाता भी ज़्यादा है और बढ़िया प्रसाद भी खाता है। हम गली में भूखे घूमते रहते हैं। (नक़ल मारते हुए) दे दे बाबा, दे दे धर्मी!

उस्तादः चुप कर! तू कैसे बैठेगा मंदिर पर? ढैंचा सीनियर है। कल्लुआ नहीं आया? कहाँ है, देख तो! कहीं ठर्रा पीने तो नहीं बैठ गया?

मैलाः उस्ताद, पिछली बार कल्लू ने जब भीख के पैसे से ठर्रा पिया था, तो मार–मार कर (खाँसता है) ... आक थू ... तो मार–मार कर तुमने उसका एक हाथ तोड़ दिया था। (हँसता है) अब तो वह ठर्रा तभी पियेगा, जब उसे दूसरा हाथ भी तुड़वाना हो!

उस्तादः (हँसता है) जब से हाथ टूट गया, भीख ज़्यादा मिलने लगी है उसे।

मैलाः फिर? आ जाएगा कल्लुआ, फ़िक्र क्यों करते हो?

ढैंचाः ए मैला! तू दूर जा कर बैठ। तुझसे बहुत बदबू आ रही है।

मैलाः और तू जो तीन ग़ज़ की कुचैली पाँव में बाँधे रखता है, उससे क्या इत्र महक रहा है सुबह वाली मेम जैसा? कीड़े पड़े हुए हैं तेरी इस कुचैली में। बीनता भी नहीं!

कल्लू (पुकारते हुए): उस्ताद!

उस्तादः (स्वगत) आ गया कल्लुआ! (पुकारते हुए) अबे पुल के तीसरे खंभे के पास आ! (स्वगत) वह रहा। यह साथ में किसको पकड़ कर ला रहा है? कोई छोकरा मालूम पड़ता है। अब समझ में आया कल्लुआ चिल्ला क्यों रहा है!

उस्तादः ए मैला, जल्दी भाग! देख कल्लुआ शिकार ला रहा है, उसकी मदद कर।

मैलाः अभी लो उस्ताद! (जाते हुए) ... आक थू ...

(ज़ोर–ज़ोर से साँस लेने, छटपटाते कदमों की आवाज़ पास आती है)

कल्लू, हाँफ़ते हुएः उस्ताद, शिकार लाया हूँ! तीन घंटे से स्टेशन के बाहर इधर–उधर कर रहा था। ढाबों के पास जा कर खड़ा हो जाता था, फिर लौट जाता था। मैं समझ गया। खाने का लालच दिया तो साथ आने लगा, लेकिन बड़ा चालाक है! पुल के पास सुनसान में आते ही छटपटाने लगा।

उस्तादः पहले–पहल सब ऐसा ही करते हैं। मैला भी तो ऐसे ही आया था! अब देखो, पहरा भी नहीं देना पड़ता, ख़ुद ही रात में हिसाब देता है। क्यों रे, नाम क्या है तेरा?

(रोने की आवाज़)

उस्ताद, कड़ाई सेः नाम बता! (थप्पड़ मारने की आवाज़) बता नाम!
(थप्पड़ मारने की आवाज़) बोल!

शंकरः शंकर।

उस्तादः मार पड़ी तो बोली निकलने लगी? मार के आगे बड़े–बड़ों की ज़बान तोते जैसी चलती है, तू चीज़ क्या है?

ढैंचाः उस्ताद, यह तो थानेदार ने तुम्हें पीटते समय कहा था!

उस्तादः चुप कर बे ढैंचे, वरना दूसरी टाँग भी ककड़ी की तरह तोड़ डालूँगा!

मैलाः तो कमाई और बढ़ जाएगी उस्ताद!

(मैला, कल्लू और उस्ताद हँसते हैं)

उस्ताद, कड़ाई सेः हाँ बे शंकर, यहाँ कैसे आया? स्टेशन पर क्या कर रहा था?

शंकरः चाचा के साथ गाँव जा रहा था। चाचा बोले, यहाँ गाड़ी बदलनी है। दूसरी गाड़ी में बड़ी भीड़ थी। (रोता है) चाचा बोले, हाथ पकड़े रहो। लेकिन धक्का–मुक्की में हाथ छूट गया। चाचा गाड़ी में अंदर घुस गए, भीड़ के ज़ोर में मैं बाहर रह गया। (फूट–फूट कर रोता है) मुझे घर जाना है।

उस्तादः घर कहाँ है तेरा?

शंकर, रोते हुएः गाँव में।

उस्तादः अबे छोकरे, मेरी खुपड़िया घूम गई तो बहुत पछताएगा! क्या नाम है तेरे गाँव का?

शंकरः चकनी।

उस्तादः बाप क्या करता है तेरा?

शंकरः कुछ नहीं करता। पिछले साल उसकी आँखें चली गईं।

मैलाः तो उसको भी ले आ उस्ताद के पास, खूब कमाएगा।

(शंकर के सिवाय सब हँसते हैं)

उस्तादः और चाचा क्या करता है?

शंकरः खेत जोतता है।

(थप्पड़ मारने की आवाज़)

उस्तादः खेत जोतता है! नाली के कीड़े, हमको सिखाता है? तेरा चाचा यहाँ शहर में खेत जोतता है?

शंकर, रोते हुएः चाचा मेरी माँ का इलाज कराने यहाँ बड़े अस्पताल आया था। मुझे अस्पताल में घुसने नहीं दिया। कल सुबह नर्स बोली, माँ तो रात में ही मर गई .... (सुबकने लगता है)

उस्तादः कोई है तेरा यहाँ?

शंकरः कोई नहीं।

उस्तादः तेरा गाँव चकनी कितनी दूर है?

शंकरः रेल से आने में दो दिन लगते हैं।

उस्तादः हूँ! शिकार ठीक लाता है तू कल्लुआ!

कल्लूः इसको मेरे साथ रखोगे उस्ताद?

उस्तादः बेवकूफ़ों जैसी बात मत करो। अगर किसी ने आज देख लिया होगा, तो दोनों धरे जाओगे! मेरा तो धंधा ही ऐसा है कि अपने साथ नहीं रख सकता। तू, मैला ...

मैलाः हाँ उस्ताद, इसे मेरे साथ लगा दो।

उस्तादः नहीं, तू बहुत चंट है कमीने! और अभी कच्चा भी है। यह होशियारी का काम है। बहुत लोगों को सँभालना पड़ सकता है। ढैंचा, तू कल इसको अपने पास रख। तब तक मैं गंगू उस्ताद से बात कर लूँगा। पिछली बार उसने दो हज़ार रुपए दिए थे। यह सुंदर है, गोरा भी है।

शायद तीन हज़ार रुपए दे दे। उसे दिखा दूँगा कल मंदिर में ही। आज इसे अपने पास सुला। होशियार रहना। चल कल्लू, बीड़ी दे!

(संगीत)

(मंदिर के घंटे रह–रह कर बजते हैं। कभी–कभी शंख ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। फूलवालों, फलवालों की आवाज़ भी रह–रह कर सुनाई देती है। ये इफ़ेक्ट्स अंत तक जारी रहेंगे।)

ढेंचाः देख शंकर। ये भी शंकर का ही मंदिर है। भोले बाबा का। तेरी माँ मर गई। चाचा हाथ छुड़ा कर भाग गया। बाप लाचार है। गाँव के नाम के सिवाय तुझे कुछ मालूम नहीं। यहाँ तू किसी को जानता नहीं। ऐसे में अगर कहीं भागने की कोशिश की, तो पता नहीं किसके हाथ लग जाएगा तू, क्या जाने क्या कर डाले वह तेरा? कल स्टेशन के ढाबों के बाहर तीन घंटा भूखे रह कर ये तो देख ही लिया तूने, कि यहाँ दया–माया कुछ नहीं है। आदमी दान भी देता है तो दूसरे की मदद करने के लिए नहीं, अपना परलोक सुधारने के लिए। समझ रहा है?

शंकरः हाँ!

ढेंचाः और सुन! अपना उस्ताद इतना बुरा भी नहीं है। जानता है, उस्ताद चाहे तो तुझे बीस हज़ार रुपयों में ऐसे राक्षसों के हाथ बेच सकता है, जो तेरे शरीर का पुर्ज़ा–पुर्ज़ा अलग कर एक–एक लाख रुपए में बेच दें। तुझे जीते जी लाश बना दें। जब तक तू हमारे पास है, उस्ताद तेरी हिफ़ाज़त करेगा। लेकिन अगर तू उन लोगों के हत्थे चढ़ गया, तो उस्ताद भी कुछ नहीं कर पाएगा। अपना भला–बुरा सोचना तेरा काम है। मैं तेरी रखवाली नहीं करूँगा। ज़िंदा रहना है तो हमारे पास रह, कुत्ते की मौत मरना है, तो भाग जा। बोल, भागेगा?

शंकरः नहीं।

ढेंचाः समझदार है तू! और सुन, किसी दूसरे भिखारी की जगह मत खड़े हो जाना। यहाँ सब की जगह बँटी हुई है। मेरी जगह इस सीढ़ी पर है, यहाँ। उस्ताद इसके पैसे देता है। (हँसता है) भीख देने वालों को अगर यह पता चल जाय कि उनकी भीख कहाँ तक पहुँचती है और उससे

क्या–क्या होता है, तो ... ख़ैर! मेरी बगल में बैठ जा, यह, इधर। (भीख माँगने लगता है) बाबूजी, लाचार बच्चे को दे दो। भगवान तुम्हें देगा। (कटोरे में पैसा गिरने की आवाज़)

शंकरः एक रुपया मिला! इससे नींबू पानी पी लूँ?

ढैंचाः नहीं, यह पैसा ख़र्च करने के लिए नहीं होता। इसे रात में उस्ताद को देना पड़ता है। उस्ताद को अगर शक़ हो गया कि इस पैसे में ज़रा भी इधर–उधर हुई है, तो बड़ा बुरा हाल करेगा! (भीख माँगने लगता है) माँ, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी, लाचार को दो रुपए दे दो माँ! (शंकर से) ले, केला दिया बुढ़िया ने! खा ले।

शंकर (केला खाते–खाते): शहर में कैसा गला हुआ केला मिलता है!

ढैंचा (हँसते हुए): शहर में गाँव से अच्छा केला मिलता है, लेकिन जब दान में ही देना है, तो अच्छा वाला क्यों दो? गले केले सस्ते में मिल गए होंगे बुढ़िया को!

शंकरः तुम्हारा नाम कितना अजीब है – ढैंचा!

ढैंचा (हँसते हुए): मेरा नाम ढैंचा नहीं है।

शंकर (अचरज से): तुम्हारा नाम ढैंचा नहीं है?

ढैंचाः नहीं! मेरा नाम ढैंचा नहीं है। मेरा नाम है धीरज।

शंकरः तो ... तो सब तुम्हें ढैंचा–ढैंचा क्यों पुकारते हैं?

ढैंचाः मैं लावारिस हूँ। न बाप का पता, न माँ का। ऊपर से बचपन से ही एक पैर कमज़ोर था। अनाथाश्रम में पला। आश्रम क्या था, जेल था! बल्कि जेल से भी बदतर! सारे कुकर्म होते थे वहाँ। उस्ताद की जान पहचान थी वहाँ। पता नहीं कैसे उसने मुझे बाहर निकलवा लिया। चार साल की उम्र में हाथ में यह भीख का कटोरा थमा दिया, और यह नाम दे दिया, ढैंचा। अब तो आठ साल बीत गए।

शंकरः तो क्या सारे भिखारियों के नाम बदल दिए जाते हैं?

ढैंचाः जिनसे ज़बर्दस्ती भीख मँगवाई जाती है उनके नाम ज़रूर बदल दिए जाते हैं, ताकि पहचान न हो सके।

शंकरः तुमने कभी भागने की कोशिश नहीं की?

ढैंचाः की थी। लेकिन मुझे क्या मालूम था कि पानवाले से ले कर पानीवाले तक उस्ताद के गुर्गे हर जगह, हर रूप में हैं। मुझे आधे घंटे के अंदर पकड़ कर उस्ताद के सामने पेश कर दिया गया। यह बोरी देख रहे हो? उस्ताद ने यह बोरी मेरी कमज़ोर टाँग पर रखी, और लोहे के रॉड से ...

शंकरः ... बस बस बस बस, आगे मत बोलो, आगे मत बोलो!

ढैंचाः आज तक मेरी टाँग में दर्द होता है। इसमें अब तक ज़ख़्म हैं। लोगों को उनकी टाँगें सँभालती हैं, मुझे अपनी टाँग सँभालनी पड़ती है।

शंकरः उस्ताद इलाज नहीं करवाता?

ढैंचाः इलाज? इलाज करवाने से अगर मेरी टाँग ठीक हो गई तो? भीख मिलना कम नहीं हो जाएगा? भीख तो उन्हें ही ज़्यादा मिलती है जो लाचार हों। इसी चक्कर में महीने–दो–महीने के बच्चों को अफ़ीम चटा कर औरतें चौराहों पर भीख माँगती हैं। लोग बच्चे को बुरी तरह बीमार समझ कर भीख दे देते हैं। उन्हें क्या मालूम कि बच्चा बीमार नहीं है, अफ़ीम की पीनक में मदहोश है ... (घबरा कर) ... अरे, तुझसे बात करने में भीख माँगना तो भूल ही गया! कमाई कम हुई, तो उस्ताद बहुत धुलाई करेगा। देख, वह औरत रिक्शे से उतर रही है। भाग कर जा उसके पास और माँग।

शंकरः लेकिन तुमने तो इधर–उधर जाने से मना किया था! कहते थे कि हर भिखारी की जगह बँटी हुई है।

ढैंचाः अरे, भिखारी क्या कर लेंगे? झगड़ेंगे ही न? मैं सँभाल लूँगा उन्हें। लेकिन उस्ताद की मार खाने से तो बच जाएँगे! जा, जल्दी जा!

शंकरः अच्छा, जाता हूँ। (मज़े से) एक सीढ़ी – दो सीढ़ी – तीन सीढ़ी – चार सीढ़ी ... (हाँफ़ता है) ... ये हुई अंतिम सीढ़ी। अरे, ये अम्मा जी तो अब तक रिक्शे से उतर ही नहीं पाईं! कितनी उजली साड़ी पहनी है इन्होंने! वह काली पैंट सफ़ेद कमीज़ में उनका लड़का है शायद। वह तो पहले ही उतर गया है और अम्मा जी उसे डोलची थमा रही हैं।

अजीतः सँभल के उतरो माँ, देखो, साड़ी फँस रही है!

माँः यह रिक्शा बड़ा बेढब है! थोड़ा सहारा दे अजीत। अँ ... हाँ ... बाप रे, रिक्शा की सवारी न हुई, घोड़े की सवारी हो गई! लो भैया रिक्शावाले।

अजीतः मैं दे रहा हूँ माँ! यह लो, पाँच रुपए!

रिक्शावालाः साहब, कुछ और दे दीजिए!

माँः क्यों, पाँच रुपए ही तो होते हैं?

रिक्शावालाः अब माई, होते तो पाँच ही रुपए हैं, लेकिन आप कुछ दे देंगे तो ग़रीब का घर चल जाएगा।

अजीतः ठीक है, ठीक है, यह लो दो रुपए और लो! ख़ुश?

रिक्शावाला (ख़ुशी से): जी, मालिक!

माँः वाह, कितना भव्य मंदिर है!

अजीतः हाँ, बड़ा ही सुंदर! लेकिन इसमें सीढ़ियाँ बहुत हैं, और हर सीढ़ी की दोनों तरफ़ भिखारियों का जमावड़ा है।

(भिखारियों की आवाज़)

माँः बेटा, डोलची सँभाल कर सीढ़ियाँ चढ़ना। हर भिखारी को पूरी देनी है। तभी मेरा व्रत पूरा होगा।

शंकरः अम्माजी, मैं ले चलूँ आपकी डोलची?

माँः नहीं, तू कहीं डोलची ले कर भाग गया तो?

अजीतः इसे डोलची उठाने दो न माँ! हम साथ में तो हैं, भागेगा कैसे? ले, पकड़! अरे ऐसे नहीं, सँभाल कर, हाँ, ऐसे!

माँः आगे–आगे चल हमारे!

(भिखारियों की आवाज़ तेज़ होती है)

माँः लो भैया, पूरी!

भिखारी 1ः पूरी नहीं चाहिए माताजी, दो रुपए दे दो!

माँः अजीत बेटा, दे दे इसको एक रुपया। (अगले भिखारी से) लो भैया, तुम तो पूरी लोगे?

भिखारी 2ः माताजी, प्रसाद से हमारा पेट पहले ही भरा है। पाँच रुपए दे दो!

माँः अच्छा! अजीत बेटा, इसको भी दे दे एक रुपया! (अगले भिखारी से) लो भैया, पूरी लो!

भिखारी 3ः माताजी, लगता है बात तुम्हारी समझ में नहीं आई! यहाँ कोई भिखारी तुम्हारी पूरियों का भूखा नहीं है! लेगा भी तो कुत्ते को खिला देगा।

माँः हाय राम!

भिखारी 3ः ठीक कहता हूँ! पैसा है तो दो, वरना टाइम खोटी मत करो!

माँ (रुँआसी हो कर)ः हे भगवान, ये भिखारी हैं या व्यापारी? अब मेरा व्रत कैसे पूरा होगा?

अजीतः माँ, न तो ये भिखारी हैं न व्यापारी! ये दलाल हैं, एजेंट हैं ख़ौफ़नाक माफ़िया के! इन्हें दया में दी गई भीख के ये पैसे धार्मिक कामों में ख़र्च नहीं होते! तुम्हारी दया का यह दान काला पैसा बन जाता है, और हर काली हरक़त में इस्तेमाल होता है। नशीली दवाइयों की तस्करी, अंगों का व्यापार, शरीर के सौदे ... अरे कौन–सा जुर्म नहीं करते भीख के पैसों के ये अमीर? भीख के कैंसर की आँच में अपनी रोटी सेंकते हैं ये! और तुम्हारे जैसे भोले–भाले लोग इतनी–सी बात–भी समझ नहीं पाते।

शंकरः वह देखो, उस्ताद, और उसके साथ उसका भी उस्ताद! वह मुझे ख़रीदने आया है। कितने ही बच्चों के हाथ–पैर तोड़ कर उनसे भीख मँगवाता है। वह जो बच्चा काठ की गाड़ी पर बैठा है ऊपर सीढ़ी पर, उसका पैर भी इसी ने तोड़ा है। (डर से चिल्लाता है) उसने मुझे देख लिया। अब मेरे हाथ–पैर भी तोड़ डालेगा। बचाओ! बचाओ!

(भीड़ का शोरः क्या है, कौन है, बच्चा चुरा रहे थे, बच्चा चोर, मारो, मारो, और बदमाशों के पिटने की आवाज़, फिर पुलिस आ गई, पुलिस आ गई का शोर)

माँः चलो, दोनों बदमाशों को तो ले गई पुलिस।

अजीतः सब भिखारी भी भाग गए।

शंकरः सिवाय मेरी काठ की गाड़ी वाले दोस्त के! अम्माजी, हमें पूरी दोगी न? (पुकार कर) नीचे आ, पूरियाँ खाते हैं! दोगी न पूरियाँ, अम्माजी?

माँः नहीं!

अजीत, शंकरः क्यों?

माँः क्योंकि ये भिखारियों को दान में देने के लिए हैं, और तुम जैसे बच्चे दान के नहीं, स्नेह के पात्र हो!

शंकरः अम्माजी!

(आरती की आवाज़)

अजीतः माँ, आरती होने लगी, चलो!

माँः चलो, सब आरती देखने चलें!

(संगीत)

दलदल *

(संगीत। स्कूल में बच्चे प्रार्थना गा रहे हैं। प्रार्थना समाप्त होती है।)

महिलाः बच्चो, अब हम रोज़ की तरह वर्जिश करेंगे। वर्जिश करना, यानी कसरत करना हमारी सेहत के लिए उतना ही ज़रूरी है, जितना भोजन करना। कोई सिर्फ़ खाता रहे और कसरत बिलकुल भी न करे, तो वह कैसा हो जाएगा?

बच्चा 1: एकदम मोटे हाथी जैसा!

(बच्चे हँसते हैं।)

महिलाः हाथी जैसा मोटा! लेकिन बच्चो, मोटे दिखने वाले यह भारी–भरकम जानवर भी कसरत करते हैं! हाथी को ही लो। कितना भारी वज़न उठा लेता है, कितना ज़ोर लगा लेता है, कितनी दूर चल लेता है!

बच्चा 2: मैडम, सरकस में तो हाथी कुर्सी पर भी बैठता है, फ़ुटबॉल भी खेलता है, और नाचता भी है!

(बच्चे फिर हँसते हैं।)

महिलाः बिल्कुल ठीक! तो जब हाथी जैसा बड़ा जानवर भी कसरत कर लेता है, तो हम क्यों न करें? तो खड़े हो जाओ एक लाइन में और शुरू करो ड्रिल ... वन ... टू ... थ्री ... फ़ोर ... वन ... टू ... थ्री ... फ़ोर ...

(सीटी बजने, ड्रम बजने और बच्चों के कसरत करने की आवाज़। आवाज़ थोड़ी धीमी हो कर जारी रहती है।)

सुषमाः नीलम मैडम, वह देखिए सुजाता को!

नीलमः सुजाता को? सुजाता कहाँ है सुषमा मैडम?

सुषमाः वह देखिए ना! वह, पाँचवी क्लास की कतार में। आगे से आठवीं लड़की। वह सुजाता ही तो है!

नीलम (हैरत से): वह लड़की? वह सुजाता है? नहीं!

सुषमाः अरे हाँ नीलम मैडम, वह सुजाता ही है! पहले तो मैं भी चकरा गई थी उसे देख कर!

नीलमः हाँ, यक़ीन ही नहीं होता सुषमा मैडम! लगता है गर्मी की छुट्टियों में ख़ूब खा–पी कर आई है। पहले तो वह दुबली–पतली, छरहरी–सी लड़की थी। अब कैसी गुलथुल लग रही है!

सुषमाः गुलथुल नहीं, स्थूल! उसकी ऊँचाई तो वही है, लेकिन शरीर कैसा अजीब–सा फैल नहीं गया है?

नीलमः वाकई, सुजाता तो किसी वयस्क औरत की तरह दिख रही है, जैसे उसकी शादी हो गई हो! लेकिन सिंदूर तो लगाया ही नहीं है उसने!

सुषमा (हँसते हुए): नीलम मैडम, अब आप के वह पुलिसवाले हैं तो आपको भी इनवेस्टिगेशन करने की आदत पड़ने लगी है। अरे भाई, सुजाता खा–पी कर हो गई होगी मोटी!

(सीटी बजने, ड्रम बजने और बच्चों के कसरत करने की आवाज़ बन्द हो जाती है।)

नीलम (ठंडी साँस ले कर, गंभीरता से): हाँ, शायद ऐसा–ही हुआ हो। शायद सुजाता खा–पी कर मोटी ही हो गई हो। चलिए, एसेम्बली ख़त्म हो गई, चलें।

(चलते हुए कदमों की आवाज़।)

सुषमाः चलिए! नीलम मैडम, एक बात समझ में नहीं आती।

नीलमः सुषमा मैडम, हम टीचर हैं तो इसका मतलब यह तो नहीं कि दुनिया की हर बात हमारी समझ में आ ही जाए। अब अगर आप अपना सवाल बताएँ, और मुझसे इतने फ़ॉर्मल तरीक़े से बात न कर के बेतकल्लुफ़ी से बातें करें, तो मैं कोशिश करूँगी, कि जो बात आपकी समझ में नहीं आई, वह अगर मेरी समझ में आई हो, तो उसे आपको भी समझा दूँ!

(दोनों हँसती हैं।)

सुषमाः ठीक है, नीलम! आपके पति पुलिस में बड़े ओहदे पर हैं। आपने डॉक्टरेट की है। आप चाहतीं तो किसी बड़े ऑफ़िस में, किसी बड़ी संस्था में, किसी बड़े पद पर काम कर सकती थीं। मोटी तनख़्वाह होती, ढेर सारी इज़्ज़त होती, ख़ूब सारा पावर होता। फिर, आपने इस सरकारी स्कूल में साधारण—सी टीचर बनना क्यों पसंद किया?

नीलम (हँसती है): वाह, लगता है बड़ा सोच—विचार किया है तुमने मेरे बारे में! ठीक है, तुम्हारा सवाल बड़ा जायज़ है। लेकिन मेरे जवाब देने से पहले तुम यह बताओ कि तुमने कॉर्पोरेशन के इस स्कूल में नौकरी क्यों की?

सुषमाः पैसों की ज़रूरत थी। औरतों के लिए टीचरी सहज है, सो बी एड किया। और, कहीं और नौकरी नहीं मिली तो यहीं कर ली। सरकारी नौकरी है, तो एक सिक्योरिटी तो है ही, पैसे भले ही कम हों!

नीलमः बस, यही बात है?

सुषमाः हाँ, यही बात है!

नीलमः नहीं, यही बात नहीं है।

सुषमाः यही बात नहीं है! क्या मतलब? यही बात है भाई, और क्या बात हो सकती है?

नीलमः अगर तुमने नौकरी सिर्फ़ पैसे कमाने के लिए ही की है, तो बहुत–से और काम कर सकती थीं तुम, जिनमें यहाँ से ज़्यादा पैसे मिलते। तुम जवान हो, सुंदर हो! कहीं रिसेप्शनिस्ट लग जातीं, मॉडलिंग कर लेतीं, या ...

सुषमा (संकोच से): नहीं नहीं नहीं नहीं, उस तरह के काम मुझे नहीं करने।

नीलमः बस! वही बात मेरे साथ भी है! मुझे हर उस तरह के काम से चिढ़ है जो मुझे मेरे पति के ऊँचे ओहदे की वजह से ख़ैरात में मिले, या जिसका मक़सद बड़े–बड़े खोखले लेक्चरों की आड़ में रुपया बटोरना हो। ग़ौर से सोचो सुषमा, तो तुम्हारे–मेरे कंधों पर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी है। अब यहाँ पढ़ने वाले बच्चे किसी धन्ना सेठ की औलाद तो होते नहीं! बहुत–सी कतर–ब्यौंत करनी पड़ती होगी उनके परिवार को। ऐसे बच्चों को आसानी से पैसा कमाने के ग़लत रास्तों के प्रति आगाह करना, उनमें अच्छे संस्कार डालना, उनमें सीखते रहने के प्रति रुचि पैदा करना, और उन्हें इस तरह गढ़ना कि बड़े हो कर वे बड़ी–से–बड़ी ज़िम्मेदारी बिना किसी हिचकिचाहट के, पूरी ईमानदारी के साथ निभाएँ।

(थोड़ी देर शांति रहती है। सिर्फ़ चलते हुए कदमों की आवाज़ सुनाई देती रहती है।)

सुषमाः बी एड करने के बाद पहली बार इतनी गहराई से सोची है यह बात! सच कहती हैं आप!

नीलमः चलो, तो आ गई बात तुम्हारी समझ में! अच्छा, अब मुझे भी एक बात बताओ।

सुषमाः जी, पूछिए!

नीलमः वह सुजाता, छुट्टी के डेढ़ महीनों में जो दुबली–पतली, चंचल, कमसिन लड़की से बदल कर वयस्क, परेशान औरत नज़र आने लगी है, वह क्या तुम्हारी क्लास में है? तुम पाँचवी क्लास को ही पढ़ाती हो न?

सुषमाः हाँ, वह सुजाता मेरी–ही क्लास में पढ़ती है।

नीलमः कैसी है वह पढ़ाई में? और बाक़ी एक्टिविटीज़ में?

सुषमा (सोचते हुए): पढ़ाई में ... पढ़ाई में औसत है, पर खेल–कूद में बड़ी तेज़ है। बिजली की तरह दौड़ती है और जंगली बिल्ली की तरह फुर्र से पेड़ पर चढ़ जाती है!

नीलमः लेकिन आज तो उसे हाथ–पैर हिलाने में भी आलस आ रहा था। कुछ बात है। पूछो उससे।

सुषमाः ऐसा करें, आज लायब्रेरी पीरियड में उससे बात करें? आप फ़्री हों तो आप–भी बात कर लेंगी।

नीलमः कब है लायब्रेरी पीरियड?

सुषमाः थर्ड पीरियड है।

नीलमः हाँ, मैं फ़्री हूँ, उसी समय करेंगे सुजाता से बात!

(संगीत)

(बच्चों का दबा–दबा सा शोर।)

नीलमः तो सुजाता, तुम कह रही हो कि तुम्हें कोई परेशानी नहीं है, हूँ?

सुजाता (धीरे से): जी!

नीलमः घबराओ मत! मैं भी औरत हूँ। सुषमा मैडम भी औरत हैं। हम दोनों उस उम्र से गुज़र चुकी हैं जिससे तुम गुज़र रही हो। हमें मालूम है बड़े होने पर कैसा लगता है, क्या होता है!

सुजाता (धीरे से): जी! मुझे कोई परेशानी नहीं है।

नीलमः तो ठीक है। बढ़िया है। तुम्हें कोई परेशानी नहीं है! और क्या चाहिए? गुड! जाओ, अपनी क्लास में जाओ।

सुजाता (धीरे से): जी ... जी ... जी ... जी ... (सुबकने लगती है)

सुषमा: रोओ मत सुजाता!

नीलम (स्नेह से): रोने दीजिए इसे सुषमा मैडम, रोने दीजिए! मैं इसकी पीठ पर हाथ फेर रही हूँ न! बेटी, मैं तुम्हारी टीचर ही नहीं हूँ, एक माँ भी हूँ। मैं तुम्हारे साथ हूँ।

(सुजाता थोड़ी देर तक फूट–फूट कर रोती है।)

नीलम: मैं कुछ पूछ कर तुम्हारे घाव कुरेदना नहीं चाहती सुजाता! लेकिन, लगता है तुम किसी बहुत बड़ी परेशानी में हो। और, शायद परेशानी कम होने के कोई आसार भी नहीं हैं। है न यही बात?

सुजाता (सुबकते हुए): जी!

नीलम: और, एक बात और! अगर किसी के बुरे बर्ताव से, किसी की ज़्यादती की वजह से तुम्हें परेशानी होती है, तो शर्म उसे आनी चाहिए, तुम्हें नहीं, है ना?

सुजाता (सुबकते हुए): जी!

नीलम: गाँधीजी ने कहा था, अत्याचार करना पाप है, तो अत्याचार सहना भी पाप है!

सुजाता: लेकिन तब क्या करें जब ग़लत काम करने वाला कोई अपना सगा ही हो?

नीलम: अत्याचार तो अत्याचार है, चाहे सगे होने का हो, चाहे बड़े होने का, चाहे बलवान होने का। ग़लत फ़ायदा तो ग़लत फ़ायदा ही है न!

सुषमा: और इस उम्र में? अभी कोई ग्यारह–बारह साल की होगी तुम! अगर इसी उम्र से कोई तुम्हारा ग़लत फ़ायदा उठाने लगे, तो तुम्हारी ज़िंदगी तो पहाड़ बन जाएगी! धीरे–धीरे या तो तुम ग़लत बातों, ग़लत

रीति–रिवाजों को ही सही मानने लगोगी, या आत्महत्या करने की कोशिश करोगी, या अपना मानसिक संतुलन खो बैठोगी! तीनों ही बातें कितनी ग़लत होंगी! मच्छर काटता है, तो उसे काटने थोड़े–ही देते हैं? ठंड लगती है तो स्वेटर पहनते हैं कि नहीं? जब तुम भगवान की बनाई प्राकृतिक विपत्तियों से आसानी से निपट लेती हो, तो यह तो आदमी की पैदा की हुई परेशानी है! इसे क्यों बर्दाश्त कर रही हो? ज़रा सोचो, सिर्फ़ दो महीने पहले तुम कितनी चंचल लड़की थीं! इधर–से–उधर कूदती फिरती थीं। हँसती–गाती रहती थीं। आज देखो अपनेआप को! हमें वह पुरानी वाली सुजाता चाहिए!

सुजाता (फूट–फूट कर रोते हुए)ः वह सुजाता अब आपको नहीं मिलेगी ... किसी को भी नहीं मिलेगी ... मर गई वह सुजाता ... और अब यह घिनौनी सुजाता भी मर जाएगी!

नीलमः किसने मारा उस सुजाता को?

सुजाताः बाबूजी ने!

(संगीत से शॉक का इफ़ेक्ट होता है। साथ ही “बाबूजी ने” की गूंज तीन–चार बार सुनाई पड़ती है। थोड़ी देर ख़ामोशी रहती है।)

सुषमाः बाबूजी ने?

सुजाता (कठोर स्वर में)ः जी, मेरे अपने सगे बाबूजी ने!

नीलमः तुम्हारी माँ को पता है यह?

सुजाताः मेरी माँ दो साल पहले ही मर गई।

नीलमः तुम लोग कितने भाई–बहन हो?

सुजाताः मैं हूँ, और मुझसे तीन साल बड़ी एक बहन है।

सुषमाः क्या करते हैं तुम्हारे बाबूजी?

सुजाताः सब्ज़ी की दुकान चलाते हैं।

सुषमाः अकेले?

सुजाताः हाँ।

नीलमः तो, तुम्हारी बहन क्या करती है?

सुजाताः चूल्हा–चौका करती है।

नीलमः तुम्हारी माँ के मरने के बाद क्या हुआ?

सुजाताः माँ मर गई, तो हम दोनों बहन बहुत रोए। पास–पड़ोस वालों ने मदद की माँ की मिट्टी उठाने में। रात में बाबूजी ख़ूब पी कर आए। पहले भी पीते थे। पी कर लौटते थे, तो माँ को पीटते थे। उस रात माँ तो थी नहीं। माँ जहाँ सोती थी, वहाँ गए, और उस जगह को लाठी से पीटने लगे पागलों की तरह। उसी दोपहर माँ की मिट्टी उठी थी, और उसी रात बाबूजी में यह पागलपन समाया! मैं तो डर गई, लेकिन मेरी बहन ने हिम्मत की। बाबूजी के पास जा कर उनका हाथ पकड़ कर रोकने लगी, जैसे माँ रोकती थी। हे भगवान! बाबूजी में तो जैसे शैतान समा गया। बोले, शांति ... मेरी माँ का नाम शांति था ... बोले, शांति तो चली गई मेरे जीवन में अशांति कर के, अबसे तू ही मेरी शांति है।

सुषमाः फिर?

सुजाताः फिर क्या! मैं तो भाग गई। दूसरे दिन सुबह देखा, तो बहन गुमसुम थी। न हँस रही थी, न रो रही थी। मैं कुछ समझी, कुछ नहीं समझी। एक तो माँ के जाने का दुःख, ऊपर से ...

नीलमः तुम लोगों ने किसी से शिक़ायत नहीं की?

सुजाताः नहीं, हमारी बात कौन मानता मैडम? फिर बाबूजी को भी शायद कुछ ग़लत लगा। एक–डेढ़ महीने तक ठर्रा नहीं पिया उन्होंने। हमने सोचा, अब वह फिर उस तरह नहीं करेंगे। लेकिन बाद में तो वह रोज़ ही पी कर आने लगे, और रोज़ वही–सब करने लगे।

नीलमः उस समय तुम्हारी बहन कोई तेरह साल की रही होगी?

सुजाताः हाँ, और क्या मैडम! बड़ी अजीब सी हो गई वह। सजने–धजने भी लगी, जैसे ब्याह होने पर सजते हैं। बाबूजी उसके लिए कभी समोसा लाते, कभी मिठाई, कभी कपड़ा ... लेकिन यह था कि मुझे भी मिठाई–समोसा देती थी। मुझे सुबह–सुबह तैयार कर के स्कूल भेज देती, और कहती, ख़ूब खेल–कूद कर आराम से अइयो! मैं स्कूल से लौटती तो थक कर सो जाती। पता नहीं बाबूजी कब आते रात में। सुबह जब मैं स्कूल जाती, बाबूजी सोए रहते। इतवार को भी किसी–न–किसी तरीक़े से मैं बच ही जाती!

सुषमाः तो तुम फँस कैसे गई उनके चक्कर में?

सुजाताः धीरे–धीरे बाबूजी और मेरी बहन के बीच क्या है, मुहल्ले में सबको पता चल गया। सब बाबूजी–बहन को नीची निगाहों से देखने लगे। ताना मारने लगे। बाबूजी का मिज़ाज गर्म रहने लगा। अभी गर्मी की छुट्टियों में मैं एक दोपहर घर के बाहर खड़ी थी। कोई लड़का साइकिल पर जा रहा था। उसने मुझे देख कर सीटी बजाई, गाना गाने लगा। बाबूजी सामने से आ रहे थे। उन्होंने देख लिया। लड़के को साइकिल से पटक कर बहुत पीटा। फिर घर आए। मुझे देखा, तो चौंक गए। बोले, मैं तो समझा था कि शीला है। शीला मेरी बहन का नाम है न! फिर बोले, तुझमें और शीला में ज़्यादा फ़र्क नहीं दिखता।

नीलमः ओह!

सुजाता (घृणा से)ः उस रात के बाद ... उस रात के बाद ... अब क्या बोलूँ, घिन आती है! मना करो, तो मारते–पीटते हैं। घर में बन्द कर जला देने की धमकी देते हैं। उनको पता नहीं चला और बहन ने स्कूल भेज दिया। घर वापस जाऊँगी तो पता नहीं क्या होगा। शायद आप मुझे कल से देख भी न पाएँ।

सुषमा (दुख से)ः ओह!

नीलमः सुजाता, घबराओ मत! इस तरह के हादसे सिर्फ़ तुम्हारे साथ ही नहीं हो रहे। दुनियाभर में लाखों–करोड़ों बच्चे – लड़के और लड़कियाँ दोनों – ऐसे हैं जो किसी परिचित की हवस का शिकार बनते हैं। भाई, बहन, चाचा, चाची, मामा, मामी, यहाँ तक कि पैंसठ साल के एक दादाजी की घिनौनी हरक़तों के बारे में भी हाल में पढ़ा था मैंने। ऐसे अपराधी बड़े चालाक होते हैं। उन्हें देख कर अंदाज़ भी नहीं लगा सकते कि उनका एक रूप इतना घिनौना भी होगा। ऐसे लोग अपने शारीरिक बल, रिश्ते में ऊँचे दर्जे, या लोकलाज का डर दिखा कर बच्चों को सताते हैं। अबोध शिशुओं पर भी अत्याचार होने की ख़बर पढ़ी गई है।

सुजाता (हैरत से): अच्छा?

नीलमः इसलिए सुषमा, हमारी और बच्चों के अभिभावकों की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि हम बच्चों को जागरूक बनाएँ। उन्हें सिखाएँ कि किसी अजनबी के पास अकेले में न जाएँ, अजनबियों की गाड़ी में लिफ़्ट न माँगें, उन्हें अपने शरीर को न छूने दें, और कुछ ग़लत लगने पर चिल्ला कर लोगों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचें। डॉक्टर के अलावा किसी को भी अपने शरीर के छिपे अंग न दिखाएँ। और इसके बावजूद कोई अनहोनी घट ही जाए, तो उसे छुपाएँ नहीं, परिवार के बुज़ुर्गों को और पुलिस को उसके बारे में तुरन्त बताएँ।

दाईः मैडम, सुजाता से मिलने कोई आया है। कॉमन रूम में है।

सुजाता (डर कर): हे भगवान! नहीं नहीं!

नीलमः डरो नहीं सुजाता, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा!

(संगीत)

सुजाताः मैडम, मेरे बाबूजी को तो पुलिस पकड़ कर ले गई, लेकिन मेरी तो बदनामी हो ही गई न!

नीलमः सुजाता, अगर हम तुम्हारे बाबूजी को नहीं पकड़वाते, तो वह तुम्हारा यौन शोषण करते रहते। क्या तब तुम्हारी बदनामी नहीं होती? क्या तुम्हारे पढ़–लिख कर अपने पैरों पर खड़े होने के सपने चूर–चूर

नहीं हो जाते? अब ज़्यादा–से–ज़्यादा क्या होगा? अगर लोगों को पता चलेगा, तो साथ–ही यह भी पता चलेगा कि तुमने ख़ुद इस यौन शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई, कीचड़ से बाहर निकलने की हिम्मत की। तुम्हारा चरित्र ख़राब नहीं माना जाएगा, अच्छा माना जाएगा, हिम्मत भरा! वैसी हिम्मत, जो हर किसी में होनी चाहिए। तुम दलदल से बाहर निकल आई हो सुजाता, इस पर अफ़सोस मत करो। आगे बढ़ो। और कोशिश करो, और किसी बच्चे का शोषण न हो सके। यह दलदल बड़ा भयंकर है, बड़ा ही भयंकर ....

(संगीत)

भगवान की दया *

(संगीत)

(आरती समाप्ति पर है।)

भाभीः लीजिए, गगन भाई! आरती लीजिए!

गगनः जी। (थाली में सिक्का गिरने की आवाज़) ईश्वर आपकी मनोकामना पूर्ण करें, भाभी!

भाभीः हमारी मनोकामना तो न जाने कब पूरी होगी! कितने पंडितों के पास गए, कितने व्रत किए, कितनी पूजा चढ़ाई! लेकिन, भगवान न जाने कब दया करेंगे!

गगनः शुद्ध मन और पक्के इरादे से किया गया काम अक्सर सफल होता है।

भाभीः सुना तो मैंने भी ऐसा ही है! गगन भाई, आप किसी अच्छे पंडित को जानते हैं?

गगनः भाभी, पूजापाठ और पंडितों के चक्कर से मैं ज़रा दूर ही रहता हूँ। जब ईश्वर हर जगह है, और हम उसकी संतान हैं, तो वह तो हमें वैसे भी देख ही रहा है, हमारे दुख–दर्द से अनजान थोड़े–ही है! मैं तो यह मानता हूँ कि ब्रह्म निराकार है। उस तक पहुँचने के लिए किसी विशेष पूजा या अनुष्ठान की ज़रूरत नहीं।

भाभीः तो, क्या आप भगवान को हाथ नहीं जोड़ते?

गगनः क्यों नहीं भाभी, मैं तो हर समय ईश्वर का स्मरण करता हूँ! इस समय भी कर रहा हूँ। व्रत भी रखता हूँ, दिये भी जलाता हूँ। लेकिन व्रत

कोई विशेष दिन देख कर नहीं रखता, दिये कोई विशेष जगह देख कर नहीं जलाता। वैसे, आपका यह दिया है बड़ा सुंदर! और, दिया ही क्यों, आपके घर में सजावट का हर सामान बड़ा सुंदर है!

भाभीः अब ऐसा भी कुछ ज़्यादा सुंदर नहीं है! आप झूठी तारीफ़ कर रहे हैं!

गगनः नहीं! मैं आपका मन रखने के लिए नहीं कह रहा, सच कह रहा हूँ! उधर दरवाज़े के दोनों तरफ़ दो बड़े–बड़े गुलदान, शो केस में नटराज की वह बड़ी सी मूर्ति, दीवार पर टँगी वह प्लेट, और डाइनिंग टेबल पर रखा वह मनमोहक टी सेट – सभी बहुत आकर्षक हैं। .... यह सब किसी पीली धातु के हैं। काँसे के हैं?

भाभीः नहीं, पीतल के हैं! हमारे रिश्तेदार पीतल का कारोबार करते हैं। उनका व्यापार विदेशों तक फैला है।

गगनः तभी मैं कहूँ, इतनी सुंदर चीज़ें यहाँ के बाज़ार में तो दिखती नहीं!

भाभीः आपको इतनी अच्छी लग रही हैं, तो उठा लीजिए। मैं और मँगा लूँगी।

गगनः अरे नहीं–नहीं, भाभी! आप अपने रिश्तेदार का पता दे दीजिए। मैं उनसे मिल लूँगा।

भाभीः अच्छा, मैं ज़रा अपनी डायरी ले आऊँ!

(संगीत)

गगनः यह कैसी विचित्र जगह है! एक घंटे से ढूँढ रहा हूँ, लेकिन भाटिया साहब की फ़ैक्ट्री है, कि मिलती ही नहीं! थक गया! चलो, थोड़ा नींबू–पानी पीता हूँ इस पानवाले के यहाँ! क्यों भाई, नींबू–पानी है?

चौरसियाः अब चौरसिया की दुकान पर नींबू–पानी नहीं मिलेगा, तो क्या ठठेरे की दुकान पर मिलेगा? ज़रूर मिलेगा नींबू–पानी साहब, ज़रूर

मिलेगा! नमक डाल कर लेंगे, या चीनी डाल कर? बर्फ़ के साथ, या बर्फ़ के बग़ैर?

गगनः नमक डाल कर, बिना बर्फ़ के। साफ़ ठंडा पानी है न?

चौरसियाः अजी साहब, तसल्ली रखिए! फ़्रिज खोल कर, बोतल की सील तोड़ कर पानी दूँगा।

गगनः दीजिए! कितने का है एक गिलास?

चौरसियाः दस रुपए का! दूँ?

गगनः दीजिए!

(बोतल–गिलास की खटर–पटर, गिलास में पानी डालने की आवाज़, चम्मच चलने की आवाज़।)

चौरसियाः यह लीजिए, साहब!

गगनः आह! भरी दुपहरी में ठंडक मिल गई! यह बताइए, यहाँ पीतल के सामान का बड़ा कारखाना कहाँ है?

चौरसियाः पीतल के सामान का बड़ा कारखाना? साहब, (दबे स्वर में) पीतल के सामान का बड़ा कारखाना तो शायद ही कोई मिले यहाँ! यह धंधा तो घरों से होता है।

गगनः घरों से? भला वह क्यों?

चौरसियाः अब भला यह हम क्या जाने साहब! लेकिन इतना मालूम है, कि यह सारा धंधा दो नंबर में चलता है, चोरी–छुपे!

गगन (चौंक कर): यह क्या कह रहे हैं आप?

चौरसियाः हाँ साहब! देखिए, यह छोटी–सी पान की दुकान है मेरी, है न? फिर भी उधर, वह लगा है सरकार का काग़ज़! क्या लिखा है उस पर, पढिए?

गगनः इस पर लिखा है पंजीकरण प्रमाणपत्र, यानी रजिस्ट्रेशन सर्टिफ़िकेट। रामप्रवेश चौरसिया। यह, नीचे सरकारी मुहर भी लगी है!

चौरसियाः हाँ! वही तो हम कह रहे हैं! हमारी इतनी छोटी–सी दुकान भी, क्या कहते हैं, हाँ, पंजीकृत है, लेकिन लाखों–करोड़ों के पीतल का यह धंधा पंजीकृत नहीं होता!

गगनः लेकिन क्यों? आख़िर नुकसान क्या है उसमें?

चौरसियाः अब नफ़ा–नुकसान तो हमें मालूम नहीं, पर होता ऐसा–ही है यहाँ!

गगनः चौरसियाजी! रजिस्ट्रेशन कराने से तो वही आदमी बचता है जो कुछ छुपाना चाहता है। कहीं ऐसा तो नहीं, कि पीतल का सामान बनाने की आड़ में यहाँ कोई ग़लत धंधा होता हो?

चौरसियाः नहीं साहब, अब झूठ कैसे कहें? बनता तो पीतल का सामान ही है यहाँ! इस धंधे के लोग इधर पान खाने आते हैं, उनसे पता चलता रहता है।

गगनः पीतल का इतना बड़ा काम होता है इनमें, तो ये घर अंदर से बहुत बड़े होते होंगे?

चौरसियाः हाँ साहब, बहुत बड़े होते हैं!

गगनः अच्छा! दरअसल, मैं पीतल के सामान बनाने वाली ही एक जगह ढूँढ रहा हूँ। यह देखिए, यह है पता। एस आर भाटिया ...

चौरसियाः देखें (हँसता है) वाह साहब, बगल में छोरा, नगर में ढिंढोरा? आगे जाइए, दूसरी गली जो दाहिनी तरफ़ मुड़ती है, उसी में मुड़ जाइए! बाएँ से चौथा मकान है।

गगनः ठीक है! थैंक्यू!

चौरसियाः (पुकार कर) अरे साहब, पैसे तो देते जाइए!

गगनः सॉरी, सॉरी, मैं भूल गया था!

चौरसियाः कोई बात नहीं!

गगनः यह लीजिए! और नींबू–पानी की शिकंजी बहुत बढ़िया थी!

(संगीत)

गगनः भाटिया साहब! मेरी भाभी से आपका पता मिला था, लेकिन आपका कारखाना खोजने में बड़ा समय लग गया! मेरा नाम गगन है।

भाटियाः आइए, आइए गगनजी! गर्मी में परेशान हो कर आ रहे हैं। बोलिए, क्या लेंगे, आँय?

गगनः जी, कुछ नहीं! अभी तुरत शिकंजी पी कर आ रहा हूँ।

भाटियाः अरे, शिकंजी पी कर आए हैं तो क्या हो गया, आँय? और कहिए, आपकी भाभीजी कैसी हैं?

गगनः भगवान की दया के इंतज़ार में हैं। पूजापाठ कर रही हैं। अच्छे पंडितों की तलाश में हैं।

भाटियाः अच्छा! अब तक बाधा दूर नहीं हुई उनकी, आँय? गगनजी, भगवान की कृपा न हो तो सोना मिट्टी हो जाता है, और भगवान की कृपा हो जाए, तो मिट्टी सोना हो जाती है।

गगनः आपके लिए तो मिट्टी पीतल हो रही है, भाटिया साहब!

भाटिया (हँसता है): उस तरह तो मैंने सोचा ही नहीं था! बोलिए, क्या सेवा करूँ आपकी, आँय?

गगनः भाभी के घर पीतल का बड़ा अच्छा सजावट का सामान था। वैसा ही कुछ दिखाइए!

भाटियाः कोई ख़ास चीज़, जो आपको पसंद आई हो, आँय?

गगनः अब क्या बताऊँ? याद करने दीजिए! हाँ, बड़ी सुंदर–सी नटराज की मूर्ति थी, गुलदान था, चाय का सेट था!

भाटियाः हाँ हाँ, वह सब मिल जाएगा! बड़ी सुंदर–सुंदर घंटियाँ भी मिल जाएँगी। दिया रखने का दीप स्टैंड मिल जाएगा। सैंपल मँगवाता हूँ गोदाम से, आँय?

गगनः ठीक है! वैसे, मुझे यह जानने की भी बड़ी इच्छा है कि पीतल का इतना सुंदर सामान बनता कैसे है? और, जो उसे बनाते हैं, वह कितने बड़े कलाकार होते हैं!

भाटिया (ठठा कर हँसता है): अरे, कलाकार–वलाकार कुछ नहीं होते यह लोग! यह काम तो निपट गँवार करते हैं, आँय! यह खेल तो पूरा साँचे का होता है, साँचे का।

गगनः साँचे का?

भाटिया : हाँ, साँचे का! पिघला हुआ पीतल साँचे में ढल कर ही तो सुंदर रूप लेता है, आँय!

गगनः ओह! तो, इतना आसान तरीक़ा है पीतल के सामान बनाने का! फिर, इतना ज़्यादा दाम क्यों होता है पीतल के सामान का?

भाटिया (हँसता है): अब, इतना आसान भी नहीं है! पीतल के जमे हुए टुकड़ों को तोड़ कर भट्ठी में गलाना पड़ता है। बहुत तेज़ गर्मी में, ग्यारह सौ डिग्री पर, आँय! जब पीतल ठीक से गल जाता है, तो उसे साँचे में भरना पड़ता है, आँय! साँचे में ढला सामान भी ऐसे ही थोड़े ही दे देते हैं? आपको पसंद ही नहीं आएगा! उसको तेज़ाब से साफ़ करना पड़ता है, पॉलिश करना पड़ता है, ट्रीटमेंट करना पड़ता है भाई, आँय!

गगनः अच्छा! तो यह सारा काम इस फ़ैक्ट्री में हो पाता है?

भाटिया (हँसता है): क्यों नहीं होगा, भाई? सब यहीं होता है। लेकिन, अब यह मत कहिएगा कि आप भी यह सब देखना चाहते हैं, आँय!

गगनः क्यों? देखने पर मनाही है?

भाटियाः अरे, नहीं! आप तो परिचित हैं, आँय! दरअसल एक तो वैसे ही गर्मी का मौसम है, ऊपर से भट्ठी के पास तो और भी ज़्यादा गर्मी होगी।

गगनः अजी साहब! जब ओखली में सिर दे ही दिया है, तो मूसलों की क्या परवाह? अगर आपको आपत्ति न हो, तो मैं देख लूँ फ़ैक्ट्री?

भाटियाः ठीक है! लेकिन किसी को कहियेगा नहीं! यह तो बड़े मज़बूत दिलवालों का काम है। बहुत–कुछ देख कर भी अनदेखा करना पड़ता है, बहुत कुछ बर्दाश्त करना पड़ता है, बहुत बार कड़ाई भी करनी पड़ती है, आँय! वरना, सारा धंधा ही चौपट हो जाएगा, और आपको पीतल का सुंदर–सुंदर सामान नहीं मिल पाएगा। आइए, नीचे उतरिए!

गगनः चलिए!

(सीढ़ियाँ उतरने की आवाज़)

भाटियाः सँभाल कर! अंधेरा है थोड़ा!

गगनः वह लम्बी–लम्बी, पत्थर जैसी क्या चीज़ है?

भाटियाः वह? वह जमा हुआ पीतल है। उसको गला कर, साफ़ करके, अपने काम का पीतल बनता है। यह देखिए!

गगनः उफ़्! बड़ी गर्मी है यहाँ!

भाटियाः भट्ठी है न यह, आँय! वह जो लड़का चक्की चला रहा है, उससे भट्ठी में हवा जा रही है, और भट्ठी जल रही है।

गगनः हूँ! और उधर, वह बच्चे क्या कर रहे हैं?

भाटियाः वह बच्चे भट्ठी के मुँह के सामने खड़े हैं। वहाँ जमा पीतल गर्म किया जा रहा है। पीतल गर्म हो कर जब थोड़ा नर्म हो जाएगा, तो हथौड़ी से उसके टुकड़े कर के भट्ठी में डालेंगे। वह देखिए (धातु पर धातु की चोट की आवाज़) ...

गगनः बहुत गर्मी है यहाँ!

भाटिया (हँसता है): तभी तो मैंने कहा था, यह मज़बूत दिल वालों का काम है, आँय।

गगनः आह! कितनी चमक है, आँखें चौंधिया रही हैं!

भाटियाः वह पीतल है, गला हुआ! अब उसे साँचों में डाला जा रहा है।

गगनः उस काम को भी बच्चे ही कर रहे हैं!

भाटियाः यह सब काम बच्चे ही करते हैं। सात–आठ साल के बच्चे यह काम बिना किसी लफ़ड़े के अच्छी तरह कर लेते हैं। बड़ों से कराओ, तो दुनिया भर के पापड़ बेलने पड़ें, आँय!

गगनः लेकिन, यहाँ साँस लेने में तक़लीफ़ हो रही है। बच्चों पर असर नहीं पड़ता?

भाटियाः पड़ता है! बहुत से बच्चों को तपेदिक हो जाती है। लेकिन, दलाल ज़िन्दाबाद! बच्चों की सप्लाई में कोई कमी नहीं आती। ढाई सौ रुपए महीने पर रोज़ आठ–दस घंटा काम करने वाले बच्चे आराम से मिल जाते हैं।

(चीख, कुछ गिरने की आवाज़)

भाटियाः अरे, क्या कर दिया? सत्यानास हो तेरा!

गगनः अरे, एक बच्चा गिर गया है। ओह! इसका तो ... इसका तो पैर जल गया है! उँगलियाँ ऐसे ग़ायब हो गई हैं, जैसे कभी थीं ही नहीं! यह कुछ बोल क्यों नहीं रहा?

भाटियाः अरे, बोलेगा कैसे? बेहोश जो हो गया है। लापरवाही से काम यह लोग करते हैं, और भुगतना हमें पड़ता है। आए दिन की नौटंकी हो गई है। अब दलाल से दूसरा बच्चा लेना होगा! तुम लोग मुँह क्या ताक रहे हो? काम करो अपना! चलिए, ऊपर चलिए। आपका सामान आ गया होगा।

गगनः चलिए!

(सीढ़ियाँ चढ़ने की आवाज़)

भाटियाः यह लीजिए सामान। यह दीप स्टैंड, यह घंटियाँ, और यह नटराज की मूर्ति।

गगनः वाह! बड़ी सुंदर है! कितने रुपए हुए?

भाटियाः अब आपसे क्या लेना, क्या देना! दस हज़ार रुपए दे दीजिए!

गगनः आप इन्हें पैक करवाइए, मैं एटीएम से पैसे ले कर अभी आया!

(संगीत)

(सायरन की आवाज़)

भाटियाः अरे, गगनजी! यह आप एम्बुलेंस ले कर क्यों आ गए, आँय?

गगनः उस बच्चे के लिए! उसका पैर कितनी बुरी तरह जल गया है न!

भाटियाः अरे, यह तो यहाँ रोज़ का सिलसिला है, आँय!

गगनः उसी लिए मैं पुलिस इंस्पेक्टर साहब को भी ले कर आया हूँ, ताकि यह रोज़ का सिलसिला आज समाप्त हो जाए!

भाटियाः मैंने तुम पर विश्वास किया कि मेरी रिश्तेदार तुम्हारी भाभी है, और तुमने मेरी ही पीठ में छुरा भोंक दिया, आँय? इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा।

इंस्पेक्टरः नतीजा अच्छा होगा या बुरा, उसका पता थाने में चलेगा, भाटिया! नाबालिग़ बच्चों से काम करवाता है, और वह भी इस तरह! ग़ैर कानूनी फ़ैक्ट्री चलाता है!

गगनः ले जाइए साहब! उधर मैं भाभी को यह बता दूँ कि उनके घर की सजावट कितने मासूमों की ज़िदगी से खेल कर हुई है। शायद उन्हें पता चल जाए, कि भगवान उन पर दया क्यों नहीं कर रहे!

(संगीत)

नई दिशा *

(संगीत)

(बस में गीत बज रहा है। साथ ही बस चलने की आवाज़ भी आ रही है। सहसा गीत बंद हो जाता है। बस चलने की आवाज़ जारी रहती है।)

देवः चलो भाई, बस में गाने की भाँय–भाँय तो बन्द हुई। लगता है अब हम पहुँचने ही वाले हैं।

प्रियाः शुक्र है देव, हम पहुँचने तो वाले हैं! छः घंटों से बस में बैठे–बैठे पाँव अकड़ गए हैं।

देवः तुम्हारे तो सिर्फ़ पाँव ही अकड़े हैं, प्रिया! मेरे तो पाँव, कंधा, गर्दन – सब अकड़ गए हैं।

प्रिया (चिंता से)ः अरे! कंधा कैसे अकड़ गया?

देव (शरारत से)ः वह ऐसा है कि पिछले छः घंटों में से पाँच घंटे आप खर्राटे मार मार कर, मार मार कर, सोती रहीं, और तकिया बन कर आपकी ख़िदमत करता रहा मेरा यह नाचीज़ कंधा! अजी, कंधे को मामूली–सी जुम्बिश भी न लेने दी आपने! एक सूत भी हिलता, तो नींद में ही आप वार्निंग इशू कर देतीं – ऊँSSSS की आवाज़ के साथ। बंदा डर के मारे, बिना हिले–डुले, वैसे ही बैठा रहा, जैसे साँप को देख कर तोता जमा बैठा रह जाता है! ज़रा भी हिले, तो साँप यूँ डँसेगा – सूँSSSS .....

प्रियाः हटो! बातें बनाना तो कोई तुमसे सीखे! बाहर देखो, कितने ऊँचे–ऊँचे पेड़ हैं। और आसमान? हाय, आसमान कितना नीला है, कितना साफ़! और देव, देखो–देखो, कितने सारे तोते उड़ रहे हैं!

देव (शरारत से)ः उन तोतों के सामने कोई साँप जो नहीं है!

प्रियाः तुम बस मज़ाक ही करते रहो हर समय! रहने की कोई जगह ठीक की तुमने? चाचाजी ने उस होटल के बारे में बताया था। कितना अच्छा सीज़न पैकेज था!

देवः ओह, वह छत्तीस हज़ार रुपयों में तीन रातें चार दिन बिताने वाला पैकेज? नहीं प्रिया, मुझे वह ठीक नहीं लगा।

प्रियाः कंजूस राम, पैसे ख़र्च करने के नाम से तो तुम्हारी नानी मरती है!

देवः मेरी नानी क्यों मरे? मरे आपकी सास की अम्मा! मज़ाक अलग, लेकिन जिस तरह का वह होटल था न, उसमें रहने–खाने का आराम तो होता, लेकिन यहाँ की संस्कृति के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता। ‘‘गुड मॉर्निंग मैम’’, ‘‘गुड ईवनिंग मैम’’, ‘‘मे आई हेल्प यू मैम’’ ... सुबह–शाम बस यही रिकॉर्ड बजता। जब घर से इतनी दूर यहाँ का मज़ा लेने आए हैं, तो पूरा आनंद क्यों न उठाएँ? यहाँ के असली बाशिंदों से भी क्यों न रू–ब–रू हो लें?

प्रियाः ठीक है जी, जिससे चाहें, रू–ब–रू होइए! वैसे भी अपनी शादी को तीन साल तो गुज़र ही चुके हैं, अब हनीमून पैकेज की तरफ़ क्या देखना!

देव (शरारत से)ः बिलकुल! अगर शादी करने का मूड फिर बना, तो देखेंगे उस पैकेज की ओर!

प्रियाः देख कर तो देखना, ख़ून कर दूँगी तुम्हारा!

देवः मैं अपने देखने की नहीं, तुम्हारे देखने की बात कर रहा था। तुम क्या समझ बैठीं?

प्रियाः न तुम देखोगे, न मैं!

देवः अच्छा भाई, लेकिन अब ये देख लो कि बस रुक रही है।

(बस चलने की आवाज बंद हो जाती है।)

देवः चलें, उठें?

प्रियाः चलो! ये मेरी चप्पल कहाँ गुम हो गई? देखो तो?

देवः वह रही! अगली सीट के नीचे चली गई है। यह लो। चलो, उतरें!

देवः भइया, सामान देना! वह, लाल वाला बैग। हाँ! और वह, वह काला वाला सॉफ़्ट लगेज। लाओ!

राजबहादुर (पहाड़ी लहज़े में): आइए शाएब, ले सलें? किदर साना ए? ओटल में ले सलें शाएब ? बोरिया ओटल ए, गोरोम पानी, अटैच बाथ!

प्रियाः क्या करें? चलें इस बच्चे के साथ?

देवः रुको जी! इतनी जल्दी चलोगी तो पता नहीं कहाँ ले जाए यह! पहले इससे बात कर लेते हैं। (लड़के से) क्या नाम है तुम्हारा?

राजबहादुरः राज़बोहादुर!

प्रियाः राजबहादुर! तुम बहादुर हो?

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी मेमशाएब, आमारा नाम ई एशा ए! अम राज़बोहादुर ए, आमारा बाई शीवबोहादुर ए, आमारा पितासी शींगबोहादुर ए!

देवः यानी बहादुरों का ख़ानदान है तुम्हारा!

राजबहादुरः आँ शाएब! सोल्दी करो शाएब! देर ओ ज़ाने से ओटल नईं मिलेगा शाएब!

प्रियाः होटल तुम्हारा अपना है?

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी मोज़ाक कोरती ए मेमशाएब! ओमारा ओटल कइशे आएगा? अम एजे़ंट ए तीन ओटल का! सिसमें साओ सागा दिलाएगा!

देवः सबसे अच्छा वाला होटल कौन सा है?

राजबहादुरः वो ssss सो मोंदिर दिख रा ए? ऊसके बोगोल से रास्ता सा रा ए। ओ रास्ता ऊपोर साता ए। और वो ऊपोर में वाँ पे लाल होरा पीला नीला सोंडी दिखता ए? वोई याँ का सोबसे अस्सा ओटल ए!

प्रियाः अच्छा! चलें? जाएँगे कैसे? वहाँ तक की कोई सवारी मिलेगी?

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी मेमशाएब! ऊतना दूर साने के लिए क्या सोवारी लेगा? अम लोग दिन बोर में पोंद्रो–बीस माइल ओइसे ई सोलता ए! ओ सागा तो बोगोल में ए। आप इतना दूर बी नईं सोल सोकता ए?

देवः अरे, क्यों नहीं? (नक़ल उतारते हुए) सोरूर सोल सोकता ए! मेम साहब को तुमने समझा क्या है राजबहादुर? मेमसाहब जब सोती हैं, तो इनकी चप्पल तक अपने–आप चलने लगती है।

प्रियाः हो गया भरपेट मज़ाक? अरे, मैं यह कह रही थी कि सामान कैसे जाएगा?

राजबहादुरः सामान का सिंता मोत कोरो मेमशाएब! सामान ओम कोंधा पोर ले साएगा!

देवः अरे, बहुत भारी है! मेम साहब के मेकअप का सामान इन्हीं बैगों में तो भरा है!

प्रियाः हाँ, साहब के दिमाग़ की तरह हल्का–फुल्का नहीं है यह!

देव (ठहाका मार कर हँसता है): छिटपुट फ़ायरिंग के जवाब में यह फटा पहला गोला! इब्तदाए इश्क़ है, रोता है क्या, आगे–आगे देखिए होता है क्या! चलो भाई राजबहादुर, उठाओ बैग। मैं टाँग लेता हूँ ये दूसरा बैग।

राजबहादुरः आप क्यों टाँगेगा शाएब? अम दोनों बैग ले साएगा! सामान ओम कोंधा पोर ले साएगा! अमको आदत ए।

देवः यार, मुझे भी आदत है। हर शादीशुदा आदमी को आदत हो जाती है बोझ ढोने की। बोलो, कितना चाहिए होटल तक जाने का?

राजबहादुरः पोचाश रुपिया, शाएब!

देवः पचास रुपए? सामान वहाँ तक ले जाने के पचास रुपए होते हैं?

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी ओता तो दोश रुपिया ए शाएब, लेकिन आपने ये नहीं पूसा कि कितना रुपिया ओता ए! आपने पूसा कि कितना रुपिया साइए, पूसा कि नइं!

प्रिया (हँसते हुए): लो, यह तुम्हारे भी गुरू निकले। चलिए, गुरूजी!

राजबहादुरः सलिए, मेमशाएब!

प्रियाः राजबहादुर! यहाँ देखने का क्या–क्या है?

राजबहादुरः बउत कुस ए, मेमशाएब! पाहाड़ ए, सरना ए, पाहाड़ के ऊदर से सब सूरस निकलता है, तो बइत अस्सा लगता ए! मोंदिर ए। आगे शाएब लोग खेलता ए वो गोल्फ का मोइदान में।

प्रियाः स्कूल नहीं है?

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी स्कूल क्यों नइं ओगा? इतना बस्सा ए इदर, सब किदर पोड़ेगा? तीन–तीन स्कूल ए!

प्रियाः तुमने पढ़ाई नहीं की?

राजबहादुरः मेमशाएब, पोढ़ के कुस फायदा नइं ए! अम बिना पोड़ाइ किए ई इतना पोइसा कोमाता ए! पोढ़ने का क्या सोरूरत?

देवः कितने पैसे कमा लेते हो?

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी कोमा लेता ए शाएब! ओम बी कोमाता ए, ओमारा बाई बी कोमाता ए, पितासी बी कोमाता ए!

देवः भाई भी कमाता है? वह तुमसे बड़ा है या छोटा?

राजबहादुरः सोटा ए शाएब! दो साल सोटा ए! वे देखो, वो नीसे में दुकान दिखता ए?

प्रियाः कहाँ, दिखाओ–दिखाओ!

राजबहादुरः ओ नीचे, ओ टेढ़ा वाला पेड़ के पास में? ओई अमारा पितासी का दुकान ए!

देवः तुम्हारा भाई क्या करता है?

राजबहादुरः ओ बी अमारे सैसा शाएब लोग को ओटल ले के साता ए! उसका नाम शीवबोहादुर ए!

देवः जब तुम से भी दो साल छोटा है, तब तो बहुत छोटा होगा वह! कितने साल के हो तुम?

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी अमको नइं मालूम शाएब! बारह–तेरह साल का ओगा, और क्या!

देवः तुम्हारे पिताजी यह काम नहीं करते!

राजबहादुरः कोरता था शाएब, अमारा पितासी बी एइ काम कोरता था! फिर एक दिन घाटी में फिशल गया तो उसका पैर टूट गया। तब से ओ साय का दुकान कोर लिया और अम लोग ये काम कोरने लगा!

प्रियाः उस तरफ़ जाएँगे, तो चाय ज़रूर पिएँगे तुम्हारे पिताजी की दुकान पर।

राजबहादुरः सोरूर पीना, मेमशाएब! ए लो, पउँस गया आपका ओटल! ओ सोकरा, सामान ले कर सा!

देवः अरे, यहाँ एक और बच्चा काम कर रहा है!

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी एक नइं शाएब, इदर शब लोग काम कोरता ए! सोटा लोग सामान उठाता ए, ओटल का एजेंसी कोरता ए, लोकड़ी काट के लाता ए, ओटल में काना देता ए, सफ़ाई कोरता ए, फल बेसता ए, फूल बेसता ए ...

प्रियाः यानी, पढ़ाई करने के अलावा हर काम कर लेता है! यह पढ़ाई से इतना भागते क्यों हो तुम लोग, बोलो तो!

राजबहादुर (हँसता है): खी खी खी ओ स्कूल में सार–पाँस कोंटा बैठना पोड़ता है। ओ पाता नइं बोर्ड पर क्या लिखता ए, सब बस्सा लोग को बोलना पोड़ता ए। खी खी खी अम लोगों को कुस समस में नइं आता ए!

देवः लेकिन दस रुपए की जगह पचास रुपए माँगना ख़ूब अच्छी तरह से समझ में आता है! लो रखो ये अपने दस रुपए!

राजबहादुरः शोलाम शाएब! शोलाम मेमशाएब! अमारा पितासी का साय का दुकान पर सरूर आना!

प्रियाः हाँ हाँ, ज़रूर आएँगे! सलाम! देखा देव, यहाँ अभी कदम ही रखा है, और इन्विटेशन मिलने लगे!

देवः हाँ, और वह भी इतनी नामचीन हस्तियों से! दो भाई कुली हैं, और पिताजी? पिताजी, चाय की दुकान चलाते हैं!

प्रियाः ओ हो, जलन होने लगी मुझे इन्विटेशन मिलने पर? च् च् च् ... पुअर देव!

नामदेवः साहब, रूम तैयार है। काउंटर पर रजिस्टर भर दीजिए!

देवः हूँ, आता हूँ! तुम रूम में चलो प्रिया, मैं रजिस्ट्रेशन कर के आता हूँ।

प्रियाः अच्छा! वह राजबहादुर वहाँ काउंटर पर क्या कर रहा है?

नामदेवः कमीशन ले रहा है। हर ग्राहक को लाने पर दस रुपया मिलता है।

प्रियाः इसीलिए! दिन में पाँच ग्राहक भी आ गए, तो पचास रुपए होटल से कमीशन के, पचास रुपए ग्राहकों से सामान उठाने के – इस उम्र में सौ रुपए रोज़ मिलने लगें, तो बच्चा पढ़ाई पर ध्यान क्यों दे?

नामदेवः मेमसाहब, रुपए वह ख़ुद थोड़े ही रखता है! सारे–के–सारे घर में दे देता है। उसके पिताजी पूरा हिसाब रखते हैं। हर परिवार का यही हाल है!

प्रियाः अच्छा? तुम्हारा नाम क्या है?

नामदेवः नामदेव! ये रूम है आपका मेमसाहब! और कुछ लाऊँ, गर्म चाय, कॉफ़ी, कुछ खाने के लिए?

प्रियाः नहीं! अभी साहब आएँगे तो बताएँगे। ये लो पाँच रुपए!

नामदेवः थैंक्यू, मेम साहब! कुछ चाहिए हो, तो घंटी बजा दीजिएगा।

(संगीत)

प्रियाः देखो देव, कितनी सारी रंग–बिरंगी टोपियाँ बिक रही हैं!

देवः दुकानदारों का तो काम ही है टोपी पहनाना! यह काम यहाँ खुलेआम हो रहा है! उधर देखो, वह पेड़ों से लदे हरे–हरे पहाड़, उनके बीच से झाँकता नीला आसमान, और उसके बीच से झाँकता इंद्रधनुष!

प्रियाः हाँ, कितना सुंदर है! और वह देखो, बादल सिर्फ़ ऊपर ही नहीं हैं, नीचे भी हैं, जैसे धुआँ फैला हो!

लड़कीः मेमसाहब, माला ले लो!

प्रियाः नहीं भाई, नहीं चाहिए! हाँ देव, देखो! नीचे बादलों के बीच वह ...

लड़कीः मेमसाहब, यह देखो, लकड़ी का फूल!

प्रियाः नहीं चाहिए, जाओ! देव, वह नीचे बादलों के बीच से वह झरना ...

लड़कीः मेमसाहब, बोहनी कर दो। चाभी का छल्ला, लकड़ी का सजावट का सामान ...

देवः अरे कह दिया न नहीं चाहिए? पीछे ही पड़ गई! जाओ!

लड़कीः साहब, हमारी दुकान पर आओ! शॉल मिलेगी, दरी मिलेगी, और बहुत–कुछ मिलेगा!

प्रियाः तुम जाती हो या नहीं?

देवः प्रिया! यह नहीं जाएगी। हमें ही जाना पड़ेगा। चलो! पता नहीं कितनी मजबूर है यह लड़की, कि हमारी दुत्कार सुन कर भी इसके आत्मसम्मान को कोई ठेस नहीं पहुँच रही।

प्रियाः लगता है, इसके माँ–बाप सिर्फ़ अपनी दुकानदारी की सोचते हैं। यह नहीं सोचते कि बच्चे पर कितना ख़राब असर पड़ रहा है।

देवः हूँ! वह लड़की तो फिर भी कुछ बेच कर पैसे कमाना चाहती थी! आगे देखो, उस विदेशी को तो बच्चों ने घेर ही डाला है। किस तरह उससे पैसे माँग रहे हैं!

प्रियाः बड़ी शर्म की बात है। ऐसे तो बच्चों में मुफ़्त की रोटी तोड़ने की आदत पैदा हो जाएगी। बड़े हो कर वे भीख माँग कर, चोरी कर के, या

किसी और ग़लत तरीक़े से ही पैसे कमाएँगे, ईमानदारी से नहीं। जो माँ–बाप ऐसे ख़तरनाक रवैये को बढ़ावा देते हैं, वे अपने बच्चों और समाज, दोनों के मुजरिम हैं।

देवः ऐसे बच्चे ज़िंदगी जीने का सही क़ायदा वैसे ही भूल जाएँगे, जैसे मैं ... जैसे मैं होटल वापस जाने का सही रास्ता भूल गया हूँ!

प्रिया (घबरा कर): क्या कह रहे हो! सच?

देवः देव कभी झूठ नहीं बोलते कन्या!

प्रियाः ओह! चलो, किसी से रास्ता पूछ लेते हैं।

देवः थोड़ा और देख लें, फिर ...

प्रियाः नहीं! पिछले साल भी एक बार तुम ऐसे ही रास्ता भूल गए थे, और किसी से रास्ता पूछने की बजाय घंटों भटकते रहे थे। छाले पड़ गए थे मेरे पैरों में। उस दुकानदार से पूछते हैं। भइया, वो मंदिर के बगलवाले होटल कैसे जाएँगे? जिसके पास बस रुकती है?

दुकानदारः मैडम! बस तो यहाँ कई जगह रुकती है! मंदिर भी कई हैं, और होटल भी बहुत हैं! किस मंदिर की बात कर रही हैं आप?

शिवबहादुरः शाएब! आप रास्ता बूल गया क्या? ओम पउँसा देगा! आमारे साथ सलो। पाँस रुपया दे देना!

देवः अरे वाह! ये तो वह अपने कल वाले लड़के की डुप्लीकेट कॉपी है! क्या नाम था उसका? रंगबहादुर!

प्रियाः रंगबहादुर नहीं, राजबहादुर!

शिवबहादुरः राज़बोहादुर? राज़बोहादुर आमारा बोड़ा बाई ए! आप उसका साथ गिया था कोल?

देवः हाँ! तुम्हें मालूम है, कहाँ है हमारा होटल?

शिवबहादुरः ओटल नइं पोता शाएब! लेकिन राज़बोहादुर कोंहा ए, ओ पोता ए! ओ बोता देगा!

प्रियाः कहाँ है राजबहादुर?

शिवबहादुरः पाँस रुपया दो, फिर बोताता हूँ!

देवः ले भैये, ये पाँच रुपए रख! अब बता, कहाँ है राजबहादुर?

शिवबहादुरः ओ देखो शाएब! ओ कोने में टेढ़ा वाला पेड़ दिख रा ए? उसके बोगोल में आमारा पितासी का साय का दुकान ए। आमारा पितासी का नाम ए शींगबोहादुर! राज़बोहादुर उदर ई ओगा!

प्रियाः चलो! तुम इतनी सी बात बताने के भी पैसे लेते हो?

शिवबहादुरः पोएशा के बिना गाड़ी कोइसे सोलेगा? ए लो, वो आ गिया पितासी का दुकान!

देवः सिंहबहादुरजी, दो कप चाय दीजिए!

सिंहबहादुरः अभी लीजिए साहब! ये लीजिए। मेरा लड़का लाया है आपको यहाँ?

प्रियाः जी हाँ, आपके एक लड़के ने कल इस अनजान जगह होटल दिलवाया, तो आज दूसरे लड़के ने रास्ता बताया!

सिंहबहादुरः भटकों को रास्ता बताना तो बड़े पुण्य का काम है!

देवः पुण्य का काम तो वह है, जो किसी बदले की भावना के बिना किया जाय। शिवबहादुर ने तो पाँच रुपए फ़ीस ले कर रास्ता बताया! कहता है, पैसे बग़ैर गाड़ी कैसे चलेगी?

सिंहबहादुरः ठीक तो कहता है, साहब! हमारी तो जो भी कमाई है, बस इन चंद महीनों में ही होती है। सालभर इसी कमाई पर गुज़र करनी पड़ती है।

प्रियाः आप कुछ ऐसा क्यों नहीं करते, कि कमाई भी सालभर हो, और ख़र्च भी आराम से चले?

सिंहबहादुरः वह कैसे होगा मैडम?

प्रियाः भाई, देखिए! पहाड़ों पर इतने सारे लोग रहते हैं। यहाँ बहुत सैलानी आते हैं। ऐसे ही, समुद्री तटों, ऐतिहासिक जगहों, धार्मिक जगहों पर भी बहुत सैलानी आते हैं। लेकिन उन जगहों पर रहने वाले लोग सैलानियों से होने वाली आमदनी पर ही पूरी तरह निर्भर नहीं रहते। उनमें से जो पढ़ते–लिखते हैं, या रोज़गार की ट्रेनिंग लेते हैं, वह और भी कई तरह के काम–धंधे कर सालभर कमाते हैं।

देवः ख़ुद को, और अपने पूरे परिवार को सिर्फ़ सैलानियों के पीछे झोंक कर आप कोई ग़लती तो नहीं कर रहे? अगर सैलानियों की सेवा–ही करनी है, तो वह भी और बेहतर तरीक़े से की जा सकती है! उसके लिए बच्चों से कुलीगीरी करवाना, भीख मँगवाना, सामान बिकवाना! नहीं, यह ठीक नहीं! हमारे बच्चों को हमसे ज़्यादा तरक़्क़ी करनी चाहिए, उन्हें हमसे ज़्यादा सम्मान मिलना चाहिए! उसके लिए आपको उन्हें सही दिशा दिखानी होगी। और, प्रिया! हम जैसे सैलानियों को ग़लत राह पर निकल पड़े इन बच्चों को ज़रा सा भी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। वरना आज से कई साल बाद भी ये, और इनके बच्चे यूँ ही भूख और ग़रीबी से जूझते रहेंगे।

(संगीत)

रुक्मिणी *

(संगीत)

(दूर से लोगों के ठहाके की आवाज़। बात करने की आवाज़ें धीरे–धीरे स्पष्ट होती हैं।)

पुरुष 1: क्या बात है, क्या बात है! भाई, मान गए! हरीश, तुम तो हँसी का ख़ज़ाना हो!

पुरुष 2: हरीश को मीटिंग्स में देखो, तो कितना गंभीर लगता है! लेकिन आज जैसे–जैसे मीटिंग ख़त्म हुई और गाला डिनर शुरू हुआ, हरीश का तो कुछ और ही रंग नज़र आता गया!

पुरुष 1: मल्टी फ़ैसेटेड पर्सनैल्टी है अपना हरीश! सुना है कि एक ज़माने में रणजी ट्राफ़ी खेल चुका है, और दूसरी ओर साहित्य का शौक़ भी रखता है।

पुरुष 2: अच्छा! भाई यह तो मुझे मालूम ही नहीं था। जिस तरह प्याज़ की पर्तें उधड़ती हैं, वैसे ही तुम्हारी पर्सनैल्टी के नए–नए पहलू सामने आ रहे हैं, हरीश! चलो, किसी दिन खुल कर बातें होंगी!

हरीश: बिलकुल! अब चलें!

पुरुष 1: मैं अपनी गाड़ी में छोड़ दूँ तुम्हें, हरीश?

हरीश: नहीं! मैं ख़ुद ही चला जाऊँगा।

पुरुष 2: अरे भाई, रात के साढ़े ग्यारह बज रहे हैं। सारी दुकानें बंद हो चुकी हैं। यहाँ तक कि पान की दुकानें भी बंद हो गई हैं। सन्नाटा छाने लगा है।

हरीशः वह क्या है कि मुझे अच्छा लगता है सुनसान में चलना। और, कोई बहुत दूर थोड़े ही जाना है! बगल में ही तो है मेरा होटेल!

पुरुष 1: ठीक है हरीश, मर्ज़ी तुम्हारी! गुड नाइट!

हरीशः गुड नाइट!

(गाड़ी जाने की आवाज़।)

हरीशः गए दोनों! अब मै हूँ, कल्पना की ऊँचाई की तरह ऊपर बादलों से लुका–छिपी खेलता चाँद है, और यथार्थ की सच्चाई की तरह यह चौड़ी, सपाट, चमकती सड़क है जिसके दोनों तरफ़ लोहे–शीशे–गारे–ईटों के जाल हैं, जिन्हें इमारतें कहते हैं! कितनी साँसें हर घड़ी क़ैद हो कर रह जाती हैं इन इमारतों में! कितने सपने दफ़न हो जाते हैं! कितनी हसरतें दम तोड़ देती हैं! लोगों की आँखें इन इमारतों की चमक–दमक से चुँधिया जाती हैं, लेकिन दर्द का कितना बड़ा सैलाब अंदर हिलोरें मारता है, यह जानने की न किसी को इच्छा है, न वक़्त! वाह रे ज़िंदगी! चलूँ अपने होटेल!

(कदमों की गूँजती आवाज़ रह–रह कर आने लगती है।)

हरीशः सड़क के अंधेरे कोने में खड़ी सस्ते पाउडर और सेंट में सराबोर यह औरतें! (हँसता है।) साहिर साहब ने क्या ख़ूब कहा था – यह सदियों से बेख़्वाब सहमी सी कलियाँ, यह मसली हुई अधखिली ज़र्द कलियाँ, यह बिकती हुई खोखली रंगरलियाँ। वह रिक्शावाला तो मेरे पास ही आ रहा है!

रिक्शावालाः साहब, इंटरटेनमेंट चाहिए?

हरीशः अभी पाँच मिनट पहले तक मैं लोगों को एंटरटेन कर रहा था, तरह–तरह के चुटकुले सुना कर उनका मनोरंजन कर रहा था! और अब तुम मेरा एंटरटेनमेंट कराओगे? क्या एंटरटेनमेंट है दोस्त?

रिक्शावालाः चलिए साहब, लिए चलता हूँ। आप ख़ुद देख कर पसंद कर लीजिएगा अपना इंटरटेनमेंट!

हरीशः एंटरटेनमेंट! कितना सभ्य नाम उढ़ा दिया तुमने हवस की ख़रीद–फ़रोख़्त को! आदमी दूसरों को धोखा देता है, तो ख़ुद को भी धोखा देता है, ताकि जीना आसान लगने लगे। यह नहीं जानता कि शौक़ हर रंग रक़ीबे–सरो–सामाँ निकला, क़ैस तस्वीर के पर्दे में भी उरियाँ निकला, दिल में फिर गिरिया ने इक शोर उठाया ग़ालिब, आह! जो कतरा न निकला था, सो तूफ़ाँ निकला! चलो!

(संगीत)

(तबले की धमक, घुंघरू की आवाज़।)

हरीशः छिः! कैसी गंदी जगह है! सात फुट बाई सात फुट की यह कोठरी जिसमें यह फ़ोल्डिंग चारपाई पड़ी है, उधर लोहे की आलमारी पर न जाने कितनी सारी ग़र्द भरी गठरियाँ लदी हैं, पुलिंदे पड़े हैं, उधर दो फुट लंबा–चौड़ा झरोखा है, और इधर इस छोटी–सी तिपाई पर अगरबत्ती जल रही है, जिसकी ख़ुश्बू सीलन की गमक से बार–बार परास्त हो रही है।

(पायल की आवाज़, दरवाज़े के कब्ज़ों के चरमराने, दरवाज़ा बंद होने और साँकल चढ़ाने की आवाज़।)

हरीशः आ गईं? आओ, बैठो। ऐसा नहीं कि मैं पहली बार ऐसी जगह आया हूँ। और ऐसा भी नहीं लगता कि तुम किसी से इस तरह पहली बार मिल रही हो। यह जगह बदनाम ज़रूर है, लेकिन मंटो से लेकर मोराविया तक न जाने कितने साहित्यकारों का प्रेरणास्रोत रही है। (ठंडी साँस भर कर) फ़ासले ऐसे भी होंगे, यह कभी सोचा न था, सामने बैठा था मेरे, और वह मेरा न था! ऐसे गठरी की तरह न बैठो! मेरी तरफ़

देखो, और मुझे भी देखने दो। इधर देखो, ऐसे! (चौंक कर) अरे! तुम कितनी छोटी हो, जैसे कोई बच्ची ही हो! हाँ! तुम्हारे चेहरे पर मासूमियत की झलक बाक़ी है। और तुम्हारी पलकों की कोर पर उतर आए यह दो मोती इस बात की गवाही दे रहे हैं कि अगरबत्ती की इस महक में तुम्हारा दम घुटता है। तुम यहाँ नई आई हो?

रीताः एक साल हो गया।

हरीशः एक साल! नर्क की यह चक्की तो बस एक महीने में पत्थर को पानी में तब्दील कर देती है! तुम पर एक साल में रंग न फेर सकी? कमाल है! लगता है, तुम्हारे जिस्म से ज़्यादा दिलचस्प तुम्हारा ज़ेहन होगा। तुमसे बात करने का मन कर रहा है।

रीताः यहाँ बात नही करते। सब सुनाई देता है!

हरीशः अच्छा! तो, बाहर चलोगी?

रीताः मौसी से पूछिए! लेकिन उसका अलग पैसा लेगी!

हरीशः बाहर जाने तो देगी न?

रीताः हाँ! शुरू–शुरू में तो मना करती थी, पर पिछले महीने दो बार जाने दिया था।

हरीशः ठीक है, मैं अपने होटेल ले चलूँगा तुम्हें! डरोगी तो नहीं?

रीताः डर शरीर के बचाव के लिए लगता है। जब शरीर ही नहीं बचा, तो डर किस बात का? लाश को न डर लगता है, न ख़ुशी होती है!

हरीशः सही बात है! ज़िंदग़ी है या कोई तूफ़ान है, हम तो इस जीने के हाथों मर चले! आज्ञा ले कर आता हूँ तुम्हारी सम्माननीय मौसीजी से!

(संगीत)

हरीशः इस कारोबार में असली नाम–पते छुपा लिए जाते हैं। नक़ली पहचान पर बदनामी की मुहर लगी भी, तो क्या लगी! जैसे क़ीमती सामान पर चढ़ी प्लास्टिक की पर्त पर गंदगी लग गई हो। कपड़ा फेरा, पुँछ गई! नाम बदल लिया, बदनामी धुल गई! लेकिन फिर भी, मैं बता दूँ कि मेरा असली नाम हरीश है। बताना मेरी मजबूरी है, क्योंकि होटेल में कमरा मेरे असली नाम से ही बुक है। चाहो, तो अपना नाम बता सकती हो!

रीताः रीता!

हरीशः रीता! भूख लगी है? कुछ खाओगी?

रीताः नहीं! आपको जो करना है, जल्दी करिए, और मुझे वापस छोड़ आइए!

हरीशः बिल्कुल! व्यापार तो व्यापार है। सौदे में मुरव्वत कहाँ? रीता, जानती हो, मेरी बीवी है जो मुझे जान से ज़्यादा प्यार करती है। बेटी है, जो तुमसे बड़ी है। शादी हो चुकी है उसकी! एक बेटा भी है। उसकी शादी अभी नहीं हुई। हम सभ्य लोग हैं। या, यूँ कहें, हम अपनी असभ्यता को बड़ी सफ़ाई से ढँके रहते हैं। हम पर कोई उँगली भी नहीं उठा सकता।

रीताः मुझे क्यों सुना रहे हैं यह सब? जल्दी से अपना काम करिए न!

हरीशः क्या काम करिए, काम करिए की रट लगाए बैठी हो? उस सात फुट की कोठरी के बजाय आलीशान होटेल के इस एयरकंडीशंड ख़ुश्बूदार कमरे में दो पल शांत नहीं बैठ सकतीं? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि तुम मेरी बेटी से भी छोटी हो? शर्म न आती हो, न सही, घिन भी नहीं आती तुम्हें? तुम सिर्फ़ बातें नहीं कर सकतीं?

रीताः बात नहीं करने से आप मारेंगे?

हरीशः नहीं बेटी, मैं तुम्हें मारूँगा नहीं। मैं तुम्हारे साथ कोई ज़बर्दस्ती नहीं करूँगा। चाहो, तो चुपचाप सो जाओ उस दूसरे बिस्तर पर। कल सुबह तुम्हें छोड़ आऊँगा मौसी के पास!

रीताः ठीक है।

हरीशः तुम्हें मौसी के पास जाना अच्छा लगेगा?

रीताः दूसरा कोई चारा नहीं है।

हरीशः क्यों? मैं तुम्हें भगा ले जाऊँ, तो?

रीताः नहीं भगा पाएँगे! मौसी को ख़बर हो जाएगी! उसका जाल बहुत बड़ा है। होटल के बाहर ही आपको रोक लिया जाएगा।

हरीशः अच्छा! ऐसा हुआ है कभी?

रीताः जी हाँ! मौसी की लड़कियों को भगाने की हिम्मत कोई नहीं करता। आप उन्हें ख़रीद सकते हैं, भगा कर नहीं ले जा सकते!

(घंटी बजती है।)

हरीशः रात के एक बजे यह कौन आया, देखूँ! (दरवाज़ा खुलने की आवाज़)

वेटरः सलाम साहब! कुछ चाहिए?

हरीशः नहीं। कुछ चाहिए होगा, तो फ़ोन कर दूँगा। थैंक यू!

वेटरः थैंक यू, सर! गुड नाइट!

हरीशः गुड नाइट!

(दरवाज़ा बंद होने की आवाज़)

हरीशः गया! जासूसी करने आया था! सोचता होगा कि दरवाज़ा खुलने में देर लगेगी, मैं किसी और ही हाल में मिलूँगा, और ... वैसे, ग़लत भी क्या है इस तरह सोचने में?

रीताः आप अपने–आप से बोलते रहते हैं, मेरे बाबा की तरह!

हरीशः बाबा?

रीताः हाँ, मेरा बाबा!

हरीशः क्या करता था तुम्हारा बाबा?

रीताः किसान था। रोज़ सुबह खेत पर जो जाता, तो अँधेरा होने पर ही लौटता था। झोंपड़ी के पास आ कर पैर धोता, और फिर ज़मीन पर पसर जाता। ज़रा भी हिले–डुले बग़ैर। कई बार डर लगता, बाबा मर तो नहीं गया! मैं चुपके से पास जा कर देखती। उसके शरीर से बूढ़ी चमड़ी, पसीने, और मिट्टी की मिली–जुली महक आती। मुझे अच्छी लगती। उसकी पसलियाँ ऊपर–नीचे होतीं, धीरे–धीरे। गले में एक गड्ढा–सा हिलता। मुझे तसल्ली हो जाती। मेरा बाबा ज़िंदा है! मैं पुकारती, बाबा! बाबा कहता, बेटी, हुक्का दे!

हरीशः तुम्हारे घर में और कोई नहीं था?

रीताः नहीं! माँ मेरे बचपन में ही गुज़र गई। तीन बहनें थीं। उनको भी बाबा ने ब्याह दिया। हर ब्याह में ज़मीन बिकती गई। जब तीसरी बहन का ब्याह हुआ, ज़मीन का आख़िरी टुकड़ा भी बिक गया।

हरीशः फिर?

रीताः बाबा दूसरे की ज़मीन पर खेती करता। मैं दोपहर में उसे ज्योना पहुँचाती। वह कभी हल जोत रहा होता, कभी फ़सल काट रहा होता, कभी क्यारियाँ सँवार रहा होता। कुछ बुदबुदाता हुआ।

हरीशः क्या बुदबुदाता था वह?

रीताः उसकी ज़िंदगी से जुड़ी अधूरी बातें! अच्छा, अगली बार दे देंगे ... हो जाएगा ... भगवान सबकी सुनते हैं ... अभी उमर नहीं हुई है ... इसको भी पार लगा देंगे ... सब ठीक हो जाएगा ... यही सब बोलता था!

हरीशः क्या वह बहुत बूढ़ा था?

रीताः चालीस भी नहीं पहुँचा था! लेकिन देखो, तो उम्र ज़्यादा लगती थी। हाथ–पैरों में मोटी–मोटी नसें उभरी हुई थीं। आँखें अंदर धँसी थीं। पेट पीठ से मिला हुआ था। झुक कर चलता था। लगता था, माँ की अर्थी और तीन बहनों की डोली का बोझ उसके कंधों से उतरा ही नहीं। जब पैसे मिलते, तब भी उसके कंधे झुके ही रहते। बड़ी देर तक हिसाब जोड़ता। पैसे हर बार उसकी उम्मीद से कम निकलते। वह मायूस हो जाता। समय के साथ उसकी मायूसी में बरक़्क़त होती गई। वह कमज़ोर होता गया, मैं बड़ी होती गई, मँहगाई बढ़ती गई।

हरीशः फिर?

रीताः उसे मेरी शादी की चिंता सताने लगी। वह हर समय बड़बड़ाने लगा। ले दे कर उसका था ही कौन? तीन दामाद, और गाँव के लोग! सबके पास जाता, गिड़गिड़ाता, मेरी बेटी पार लगा दो। बड़ा अच्छा आदमी था। लेकिन सिर्फ़ अच्छा होने से ही तो दुनिया में सब नहीं हो जाता! सब जानते थे, बाबा के पास पैसा नहीं है। उसकी बात सुनते। तसल्ली देते, आशा दिलाते। बाबा लौट आता। मुझे बहुत प्यार करता था। बोलता, लोग कहते हैं, मदद कर देंगे। कुछ दिन ख़ुश रहता। असलियत मालूम पड़ जाने पर फिर बुदबुदाने लगता। उसकी कमर कुछ और झुक जाती। हाथ–पैरों की नसें और उभर आतीं। नींद में बड़बड़ाता, हो जाएगा ... पार लगा देंगे ...

एक दिन मेरा मँझला जीजा आया। बाबा से न जाने क्या बात की। बाबा ख़ुश हुआ। इतना ख़ुश, कि मुझे जीजा के साथ उसके गाँव भेजने पर तैयार हो गया। बोला, दो दिन की तो बात है। मुझे जीजा पसंद नहीं था। मैं बहुत रोई। फिर, मेरे बिना बाबा को खाना कौन खिलाता, उसके पैर कौन धुलाता, उसका हुक्का कौन बनाता? लेकिन, बाबा नहीं माना। मुझे गाँव के बाहर तक छोड़ने आया। अलग होते समय अंटी खोल कर मुझे सारे–के–सारे पैसे दे दिए। पूरे सतरह रुपए थे। मैंने बाबा के पाँव और गाँव की मिट्टी पर सिर लगाया, और टीन की हरी संदूकची लेकर जीजा के साथ चलने लगी।

हरीशः हूँ।

रीताः तीन–चार कोस चलने के बाद बस अड्डा आ गया। मैं समझी, जीजा मुझे ले कर बस में चढ़ेगा। लेकिन वह मुझे एक मोटर के पास ले गया। मोटर में एक आदमी और एक औरत पहले से बैठे थे।

(संगीत)

जीजाः रुक्मिनी, पैर छू इनके, यही तेरे सास–ससुर हैं! हाँ, जा, बैठ जा गाड़ी में।

रीताः तुम संग नहीं आओगे?

जीजाः हम दूसरी गाड़ी से आएँगे। इसमें जगह नहीं है न! ला, तुझको बाबा कुछ पैसा दिया था न? हमको दे दे, हम सँभाल कर रख लेंगे!

रीताः वह तो ...

औरतः दे दो बेटी, ज़िद नहीं करते! और ए जी, तुम बोरे की तरह बैठे क्या हो? उतरो गाड़ी से और दे दो इनको इनका हक़। दे दिया? अब इतनी देर मत लगाओ। चलो भैया, बढ़ाओ गाड़ी!

(कार चलने की आवाज़)

औरतः अरे बेटी, लगता है बड़ी दूर से पैदल चल कर आई हो! कितनी धूल है तुम्हारे चेहरे पर! ये लो, ये इत्र से भींगा रुमाल लो, और चेहरा पोंछ लो, ताज़गी आ जाएगी। ठीक से पोंछो बेटी। लाओ, मैं पोंछ देती हूँ, हाँ, ऐसे!

औरत (बुदबुदाते हुए): हो गई बेहोश! तीन घंटे तक इसे होश नहीं आएगा। और जब होश आएगा ...

(संगीत)

रीताः उसके आगे की बात मैं नहीं सुन सकी। होश आया, तो शायद तीन–चार घंटे गुज़र चुके थे। मोटर किसी अनजान शहर की सीमा पर एक मकान के आगे रुकी। मुझे एक कमरे में ले जाया गया।

(संगीत)

रीताः मैं नहीं रहूँगी यहाँ! मैं वापस जाऊँगी। मेरे बाबा घर वापस आ गए होंगे। छोड़ दो मुझे! मैं बाबा के पास जाऊँगी, मैं बाबा के पास जाऊँगी ... (रो पड़ती है)

(संगीत)

रीताः बाबा के पास मैं फिर कभी नहीं जा सकी। लेकिन मेरा मन बाबा से दूर कभी नहीं जा सका।

हरीशः उस कमरे में क्या हुआ तुम्हारे साथ?

रीताः उसमें मैं एक रात रही। दूसरे दिन मेरे सास–ससुर – वह औरत और वह आदमी – नहीं दिखे। मैं एक दूसरे आदमी के साथ थी।

(संगीत)

आदमीः अरी, तू ग़लत लोगों के चक्कर में पड़ गई थी! किस्मतवाली है, जो मैं आ गया। पूरे पाँच हज़ार रुपए दिए, तब छोड़ा उन्होंने, हाँ! मैं तो मस्तमौला आदमी हूँ! किसी का भला होता हो, तो पैसा क्या चीज़ है, हाथ का मैल! ले, बीड़ी पिएगी?

रीताः नहीं!

आदमी (हँसता है): अच्छा, मत पी! (क़श ले कर) मैं बहुत बड़ा कारोबार करता हूँ। पचास आदमी काम करते हैं मेरे अंडर। बहुत कमाई है। अब तेरे दुःख के दिन गए। मेरा पैसा भी तो तेरा ही है। मेरे साथ शहर में रहना।

रीताः और बाबा?

आदमी (अचकचा कर): बाबा? बाबा कौन? (हँसता है) अच्छा, तेरा बाबा! अरे वह भी हमारे साथ रहेगा आराम से!

रीता (ख़ुशी से): सच? बाबा को ज़िंदगी में पहली बार आराम मिलेगा?

आदमीः हाँ! चल, पास आ। अरी आ ना!

रीताः नहीं!

आदमीः शरमा मत, आ!

(संगीत)

रीताः उस बार मैंने पहली बार जाना, कि हर आदमी बाबा नहीं होता। और उसके बाद, हर रात जानती आई हूँ!

हरीशः उस आदमी ने तुमसे शादी की?

रीताः उसने मुझे चार–पाँच दिन अपने पास रखा। मैं भुलावे में आ गई। बच्ची ही तो थी! फिर, उसने मुझे मौसी के हवाले कर दिया। यहाँ हर रोज़ दस–पंद्रह लोग मुझसे मिलते हैं। हर मुलाक़ात मुझे बाबा से एक कदम और दूर ले जाती है। मुझे दो दिन के लिए भेजा था उसने! अब एक साल हो गया। उसकी आँखें पथरा तो नहीं गई होंगी? वह ... वह ... वह ज़िंदा तो होगा? उसने मुझे क्यों अलग किया? मैं साथ रहती, तो क्या बुरा होता?

हरीश (रुँधे गले से): बेटी! हर बाप चाहता है कि उसकी बेटी सुखी रहे। तुम्हारे बाबा ने भी यही चाहा।

रीताः बाबूजी, सुबह होने में कितनी देर है?

हरीशः अब सुबह होने में देर नहीं!

रीताः तो आप मुझे मौसी के पास छोड़ देंगे?

हरीशः नहीं! छोड़ूँगा नहीं, छुड़ा लूँगा! मेरी एक बेटी की शादी हो गई, तो दूसरी बेटी मिल गई मुझे! हम तुम्हारे बाबा के पास ज़रूर जाएँगे, लेकिन पुलिस में शिकायत दर्ज करने के बाद। तुमने मुझे सबकुछ सचसच बताया है न रीता?

रीताः हाँ, एक बात के सिवाय!

हरीशः कौन सी बात?

रीताः मेरा नाम रीता नहीं, रुक्मिणी है। रीता नाम तो मौसी ने दे दिया।

हरीशः रुक्मिणी, मुझे मालूम है! तुम्हारे बाबा का दिया नाम बड़ा अच्छा है। और तुम्हारे संस्कार भी। काश, तुम्हारे जैसी परेशानी में फँसी हर लड़की तुम्हारी तरह ही उससे उबर सके! काश, अब हर सुबह ऐसी ही हो।

(संगीत)

<u>ताला *</u>

(संगीत)

सरः संकेत!

संकेतः जी, सर! आपने बुलाया?

सरः संकेत! मैं आज हेड ऑफ़िस में मीटिंग अटेंड कर के लौटा हूँ। वे हमारे परफ़ॉरमेंस से ख़ुश हैं।

संकेतः यह तो बड़ी अच्छी बात है, सर!

सरः हाँ! कम्पनी प्रेज़िडेंट ने कानफ़रेंस में सबके सामने हमारी तारीफ़ की। तुम्हारे परफ़ॉरमेंस को तो उन्होंने ख़ास तौर पर सराहा। गुड टाइम्स आर अहेड फ़ॉर यू!

संकेतः सर! वह तो कम्पनी ने मौक़ा दिया, तो मैं कुछ कर पाया। अगर आगे और ऑपरच्युनिटीज़ मिलें, तो मैं शायद और बहुत कुछ कर सकूँ।

सरः संकेत! मार्केटिंग में ऑपरच्युनिटीज नहीं दी जातीं, चैलेंजेज़ दिये जाते हैं। अच्छी मार्केटिंग करने वाले उन चैलेंजेज़ को ऑपरच्युनिटीज में कनवर्ट कर लेते हैं।

संकेतः जी! मेरा मतलब भी वही था।

सरः ऐक्सिलेंट! देखो संकेत, हमारी कम्पनी पिछले तीन साल से लगातार साठ फ़ीसदी की दर से तरक़्क़ी कर रही है। तीन साल पहले हमारा कारोबार था सिर्फ़ पच्चीस करोड़ रुपये, जबकि इस साल हम सौ करोड़

से भी ज़्यादा टर्नओवर लॉग कर चुके हैं। हमारे पर्सनल ग्रूमिंग और पर्सनल केयर प्रॉडक्ट्स टॉप पोजीशन पर हैं। लेकिन ...

संकेतः लेकिन क्या, सर?

सरः लेकिन, हमारे लॉक्स डिविज़न की ग्रोथ धीमी है। तुम लॉक्स डिविज़न का काम नहीं सँभालते, लेकिन हो तो कम्पनी में ही! ऐज़ ऐन अनबायस्ड बाइस्टैंडर, तुम्हारी क्या राय है? लॉक्स डिविज़न की ग्रोथ बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए?

संकेत (सोचते हुए): सर! हमारे लॉक्स की क्वालिटी तो अच्छी है। लेकिन, हमारा कॉम्पिटिशन या तो इस्टैब्लिश्ड ब्रांड्स से है, या सस्ते, लोकल प्रॉडक्ट्स से है। लोकल प्रॉडक्ट ख़रीदने वाला हमारे लॉक्स को मँहगा समझ कर किनारे रख देता है, जबकि सेफ़्टी और ब्रांड कांशस बायर हमारे प्रॉडक्ट्स को ससपिशन से देखता है। वह ज़रा से प्राइस ऐडवांटेज की परवाह नहीं करता, क्योंकि लॉक की एफ़िशियेंसी पर बहुत बड़ी सम्पत्ति की सेफ़्टी डिपेंड करती है।

सरः हूँ! तो, फिर?

संकेतः हमें मार्केट के उस सेगमेंट को टैप करना चाहिये, जिसकी तरफ़ किसी का ध्यान नहीं गया है। न लोकल कम्पनीज़ का, न इस्टैब्लिश्ड कम्पनीज़ का!

सरः तुम किस सेगमेंट की बात कर रहे हो?

संकेतः हमारे देश में प्रगति की रफ़्तार तेज़ है। लोग तीस साल नौकरी करने के बाद जितनी तनख़्वाह साल भर में पाते थे, आज मैनेजमेंट पास लड़के एक महीने में उससे ज़्यादा तनख़्वाह पाते हैं। इन लोगों की डिस्पोज़ेबल इनकम काफ़ी ज़्यादा है। समाज में उन लोगों का हिस्सा भी बड़ी तेज़ी से बढ़ा है, जो सोशलाइट कहे जाते हैं। ग़ौर किया जाय, तो अब कितने ही लोग पाँच–छः लाख रुपये की पेंटिंग आराम से ख़रीद लेते हैं। लोग ऑर्गेनिक फ़ूड खाने लगे हैं, जूट के बैग ले कर चलने लगे हैं, कॉटन पहनने लगे हैं, रेडियो सुनने लगे हैं।

सरः एथनिक इज़ इन फ़ैशन!

संकेतः जी, सर! संस्कृति और विरासत से जुड़ी चीज़ें लोगों को लुभाने लगी हैं। हमारे सिलिंड्रिकल लॉक्स, ट्यूबुलर लॉक्स, रिम लॉक्स, मॉर्टिस लॉक्स, अल्ट्रा लॉक्स वगैरह न अपनी संस्कृति की याद दिलाते हैं, न अपनी विरासत की! अगर हम विशुद्ध ताले बनाएँ, वैसे ताले जो पहले महलों, हवेलियों, और संदूकचियों में लगते थे, तो ग्राहकों का ध्यान खिंचेगा, और हमारी अलग पहचान बनेगी।

सरः संकेत! पुराने क़िस्म के ताले कड़ी या कुंडी में लटकाए जाते थे। अब घरों, दफ़्तरों, हस्पतालों में कुंडी कहाँ होती है? अब तो नॉब वाले सिलिंड्रिकल लॉक्स या चाभी घुसाने वाले अल्ट्रा लॉक्स लगते हैं। देखो, मेरे कैबिन में भी मॉर्टिस लॉक लगा है। जो ताला तुम सजेस्ट कर रहे हो, उसका मार्केट है कहाँ?

संकेतः सर, कड़ी तालों, यानी पैड लॉक्स का मार्केट अब भी है। वरना, पैड लॉक्स बाज़ार से ग़ायब हो चुके होते। लेकिन, फ़ैक्ट यह है कि इस्टैब्लिश्ड और लोकल, सभी कम्पनियाँ पैड लॉक्स आज भी बनाती हैं।

सर (विजयी भाव से): तो फिर, मी टू प्रॉडक्ट लाने का क्या फ़ायदा? जिस तरह हमारे बाक़ी लॉक्स इन कम्पनियों के प्रॉडक्ट्स के आगे नहीं चल रहे, उसी तरह पैड लॉक्स भी नहीं चलेंगे!

संकेतः वही तो मैं कह रहा हूँ सर! हमारे पैड लॉक्स मी टू, यानी आम कड़ी तालों जैसे नहीं होंगे। हमारे ताले ख़ास तरह के होंगे!

सरः जैसे पहले महलों, हवेलियों, और संदूकचियों में लगते थे, है न? ठीक है। यू हैव अ प्वाइंट देयर! ऐसा करो संकेत, यह प्रोजेक्ट तुम अपने ही हाथों में ले लो। इसकी सोर्सिंग और कॉस्टिंग पर रिपोर्ट बनाओ। ठीक है?

संकेतः ठीक है, सर! थैंक यू! एक महीने के अंदर रिपोर्ट आपकी टेबिल पर होगी।

सरः ग्रेट!

(संगीत)

संकेत (बुदबुदाते हुए): पंद्रह दिन गुज़र गए। तीन सप्लायर शॉर्ट लिस्ट किए भी, तो पहले दो तो बिलकुल बेकार निकले। देखें, तीसरे सप्लायर में कुछ दम है, या यह भी पहले दो जैसा ही है। (आवाज़ दे कर) चपरासी! तीसरे साहब को अंदर भेज दो।

ख़ालिद: गुड आफ़्टरनून, सर! मेरा नाम ख़ालिद है।

संकेत: गुड आफ़्टरनून, ख़ालिद! ख़ुशी हुई आपसे मिल कर! मेरा नाम संकेत है। हमारी उम्र एक बराबर ही होगी, इसलिए किसी फ़ार्मैलिटी के बग़ैर, मैं तुम्हें ख़ालिद कहूँ, और तुम मुझे संकेत कहो, तो चलेगा?

ख़ालिद: चलेगा क्या संकेत, दौड़ेगा!

संकेत: ठीक है, मुझे दौड़ने वाले लोग पसंद हैं। अच्छा! अपना प्रॉडक्ट ब्रोशर दिखाओ।

ख़ालिद: संकेत! जिस तरह के एंटीक तालों की तलाश है तुम्हें, वे किसी ब्रोशर में नहीं मिलेंगे!

संकेत: तो, फिर?

ख़ालिद: अब मायूस होने की ज़रूरत भी नहीं। मैं कुछ ऐसे नायाब तालों की तस्वीरें साथ लाया हूँ, जो शायद तुम्हें पसंद आएँ।

संकेत: अच्छा, दिखाओ!

ख़ालिद: हूँ, लिफ़ाफ़ा तो निकालने दो! देखो, इनमें से कुछ तस्वीरें बड़ी पुरानी हैं। रंगीन तो नहीं ही हैं, उतनी साफ़ भी नहीं हैं। तो, तुम्हें थोड़ा ऐडजस्ट करना पड़ेगा!

संकेत: ठीक है। यह ... चौकोर बॉडी और ऊपर चंद्राकार शैकल! ख़ालिद, इसमें तो कोई ख़ास बात नहीं!

ख़ालिदः इसमें ख़ास बात यह है, कि इस ताले में चाभी नीचे लगती है। लगता है, तुम्हें कुछ ख़ास जमा नहीं!

संकेतः ना!

ख़ालिदः अच्छा! अब यह दूसरी तस्वीर देखो। गोल बॉडी, लेकिन चाभी न सामने लग रही है, न नीचे! चाभी लग रही है बाजू में, जो गोल तालों के लिए बड़ी नायाब बात है।

संकेतः हूँ!

ख़ालिदः यह ताला रॉकेट की शक्ल का है। ऊपर पतला, नीचे मोटा, और चाभी लगती है नीचे!

संकेत (ऊब कर): ठीक है, यार, लेकिन इनमें से एक भी ताला ऐसा नहीं है जिसे देख कर आदमी उछल पड़े!

ख़ालिदः संकेत! अभी मैंने तस्वीरें दिखाना बंद कहाँ किया है? यह देखो! यह ताला न गोल है, न चौकोर। इसके छः बाजू हैं।

संकेतः हाँ! यह ताला हेक्सागोनल है। और चाभी लगाने का छेद भी एक नहीं है, चार की वेज़ हैं, एक सामने, तीन साइड में!

ख़ालिदः जी! यह ताला एक ख़ास तरीक़े से चाभी घुमाने पर ही खुलेगा! अब, यह देखो, यह ताला!

संकेतः इसमें क्या ख़ास बात है? इसमें तो सामने ही चाभी लग रही है।

ख़ालिदः नहीं, वह डमी है। इस ताले के बाजू में एक प्लेट है, जिसे खिसकाने पर चाभी लगाने की असली जगह सामने आती है।

संकेतः हूँ! यह ठीक है!

ख़ालिदः और, यह देखो! देखने में पूजा के घंटे जैसा लग रहा है, लेकिन असल में है यह भी ताला! वह भी, पीतल का!

संकेतः यह हुई न कुछ बात!

ख़ालिदः शुक्रिया! अब, यह देखो। पढ़ो, क्या लिखा है?

संकेतः ओम्!

ख़ालिदः हाँ, ओम्! यह ताला जब खुलता है, तो ओम् जैसा दिखता है, और जब बंद होता है, तो दिल की शक्ल अख़्तियार कर लेता है।

संकेतः बढ़िया है। तुम समझ गए हो कि मैं क्या चाहता हूँ!

ख़ालिदः एक बार फिर शुक्रिया। और तस्वीरें देखोगे?

संकेतः नहीं—नहीं, उसकी ज़रूरत नहीं। यह बताओ, ऐसे ताले बन पाएँगे तुम्हारे कारखाने में?

ख़ालिदः क्यों नहीं, ज़रूर बन जाएँगे। डेढ़ सौ साल से हम ताले ही तो बना रहे हैं।

संकेतः नहीं! मेरा मतलब है कि मुझे बढ़िया फ़िनिश चाहिए। मटीरियल भी अलग—अलग होना चाहिए – स्टील, अल्युमिनियम, पीतल।

ख़ालिदः संकेत! हमारा कारखाना छोटा है तो क्या हुआ! हम अलग—अलग धातु के ताले बेहतरीन फ़िनिश के साथ बनाते हैं। इलेक्ट्रोप्लेटिंग, पॉलिशिंग, पेंटिंग वगैरह सब करते हैं। एक बार मौक़ा तो दो।

संकेतः ज़रूर दूँगा। देखो ख़ालिद, हमारी कम्पनी बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ रही है। लेकिन जैसा कि देश के हर नागरिक, हर व्यापारी, और हर कम्पनी का कर्त्तव्य है, हम यह चाहते हैं कि हमारी तरक़्क़ी के साथ समाज और देश भी तरक़्क़ी करे।

ख़ालिदः मैं कुछ समझा नहीं।

संकेतः मैं समझाता हूँ। कुछ लोग प्रदूषण फैलाते हैं, या, बिजली की चोरी करते हैं, या कर्मचारियों के साथ बेइंसाफ़ी करते हैं। हमारी कम्पनी ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहती। हम आदर्श तरीक़े से, ईमानदारी के साथ अपनी जगह बनाना चाहते हैं।

ख़ालिदः मैं अब भी नहीं समझा!

संकेतः ख़ालिद! यह कड़ी ताले तुमसे ख़रीद कर बेचने से पहले हम यह तसल्ली करना चाहेंगे, कि इन तालों को बनाते समय किसी आदमी, समाज, या देश को कोई नुकसान नहीं पहुँचता।

ख़ालिदः मैं तुम्हें यक़ीन दिलाता हूँ कि हम बड़े नेक तरीक़े से काम करते हैं।

संकेतः मुझे विश्वास तो है, लेकिन मैं तुम्हारे कारखाने में ख़ुद जा कर तसल्ली करना चाहूँगा। बोलो, कब आ जाऊँ?

ख़ालिदः तुम्हारी तसल्ली किसी तरह यहीं नहीं हो सकती? नाहक ही उतनी दूर जाएँगे। एक दिन ज़ाया होगा।

संकेतः बिलकुल नहीं। जब तुम्हें मेरे ऑफ़िस आ कर मुझसे मिलने में कोई एतराज़ नहीं, तो मुझे तुमसे तुम्हारे कारखाने में जा कर मिलने में भी कोई संकोच नहीं होगा। कब आ जाऊँ?

ख़ालिदः ठीक है! जब ऐसा ही है, तो अगले हफ़्ते तशरीफ़ ले आइए। ये लो मेरा कार्ड। फ़ोन कर देना, मैं पिक अप कर लूँगा।

संकेतः ठीक है। अगले हफ़्ते मुलाक़ात होगी।

ख़ालिदः ख़ुदा हाफ़िज़!

संकेतः ख़ुदा हाफ़िज़!

(संगीत)

(गाड़ी का हॉर्न)

संकेतः ओह, ख़ालिद! तुम हॉर्न न बजाते, तो मैं न जाने कितनी देर तक तुम्हें ढूँढता रहता। धन्यवाद!

ख़ालिदः अजी, शुक्रिया तो मुझे कहना चाहिए संकेत। हमारे शहर में जो आए हो! बैठो।

(गाड़ी का दरवाज़ा बंद होता है, गाड़ी चलने लगती है।)

संकेतः तो! कैसा चल रहा है?

ख़ालिदः बढ़िया चल रहा है सब!

(हॉर्न की आवाज़)

संकेतः अरे! सँभाल कर!

ख़ालिदः संकेत! मैंने गाड़ी चलाना यहीं सीखा है। इसलिए, सँकरी सी गली में कुत्ते, गाय, और टेम्पो के बीच गाड़ी कैसे निकालनी है, मुझे ख़ूब पता है। जब तक टेम्पो के आगे जम कर खड़े न हो जाओ, वह रास्ता नहीं देगा। गाय कभी रास्ता नहीं देगी, उसके गिर्द घुमा कर गाड़ी बढ़ानी होगी। और, कुत्ते का तो कोई भरोसा ही नहीं। आधी सड़क पार कर वापस भी लौट सकता है (हँसता है)।

(हॉर्न बजता है)

संकेत (हँसता है): बड़ी डीप स्टडी है! बड़ा पुराना शहर है यह।

ख़ालिदः हाँ! और जब यह शहर बना, सड़कें भी तभी बनी थीं! उसके बाद इन सड़को की मरम्मत कभी हुई ही नहीं (हँसता है)।

संकेतः इन सड़कों पर पुराने घरों की नाली का पानी बह रहा है। ऐसे में बनती होंगी, तुरन्त टूट जाती होंगी।

ख़ालिदः यह बात तो है। लो, पहुँच गए हम।

(गाड़ी बन्द होती है। दरवाज़े बन्द होते हैं।)

ख़ालिदः आओ, ऑफ़िस में बैठते हैं। क्या लोगे?

संकेतः कुछ नहीं!

ख़ालिदः अरे, ऐसे कैसे चलेगा? चाय मँगवाता हूँ। करीम मियाँ, स्पेशल चाय भिजवाइए!

संकेतः जब तक स्पेशल चाय आती है, कारखाना देख लें?

ख़ालिदः चलो!

(लोगों और मशीनों की आवाज़)

संकेतः कारखाने में और उजाला होना चाहिए। हर तरफ़ साफ़–साफ़ दिखना चाहिए।

ख़ालिदः संकेत! यह बड़ा पुराना कारखाना है, पुराने ढंग से बना हुआ! जैसे–जैसे पैसे आते जाएँगे, हम इसमें तब्दीली लाते जाएँगे। यह देखो, यहाँ कटिंग हो रही है। और वहाँ हैंड प्रेस चल रही है।

संकेतः इतना छोटा लड़का कर रहा है कटिंग! वाह! क्या नाम है तुम्हारा?

हमीदः हमीद।

संकेतः तुम हमेशा कटिंग करते हो?

हमीदः ऐसा कुछ नहीं है यहाँ कि एक आदमी एक ही काम करेगा! यहाँ सब लोग सारे काम करते हैं। लेकिन, कटिंग का ज़्यादा काम अशरफ़ करता था ... (खाँसता है)

संकेतः अशरफ़ करता था, मतलब?

ख़ालिद (चेतावनी देते हुए): हमीद!

हमीदः मतलब, आज वह नहीं आया।

संकेतः क्यों नहीं आया?

हमीद (संकोच से): हमको नहीं पता ... (खाँसता है)

संकेतः जिस तरह तुम बोल रहे हो, तुम्हें पता तो ज़रूर है! क्या हो गया हमीद को?

हमीदः कल रात चाभी काटने की जगह उसने अपनी उँगली काट ली।

संकेतः ओह, टू बैड! रात में भी काम होता है यहाँ?

हमीदः सुबह आठ बजे से रात आठ–दस बजे तक काम होता है। अशरफ़ थक गया था, उँगली चली गई ... (खाँसता है)

संकेतः रोज़ बारह–चौदह घंटे काम करते हो तुम?

हमीदः (खाँसता है) ... जी!

संकेतः इतना खाँस क्यों रहे हो? जुकाम हो गया है?

हमीदः नहीं साहब ... (खाँसता है) ... साँस में हवा के साथ तालों की पॉलिश वाले मसाले का पाउडर और लोहे की बुकनी ले ले कर यह हाल हो गया है। बहुत पेंट भी अंदर गया है।

संकेतः लेकिन ऐसे तो फेफड़े की बीमारी हो जाएगी। तपेदिक भी हो सकता है।

हमीदः तो नई बात क्या होगी साहब! वह तो बहुत बच्चों को हो जाती है!

संकेतः बच्चों को? क्या तुम्हारे सिवाय और बच्चे भी काम करते हैं यहाँ?

हमीदः यहाँ ज़्यादातर बच्चे ही तो काम करते हैं!

ख़ालिद (चेतावनी देते हुए): हमीद!

हमीदः साहब, यहीं नहीं, ताला बनाने वाले ऐसे हर कारख़ाने में ज़्यादातर बच्चे ही काम करते हैं!

संकेतः क्या उम्र है तुम्हारी?

हमीदः बारह बरस।

संकेतः ओह! और बाक़ी बच्चे भी क्या तुम्हारी ही उम्र के होते हैं?

हमीदः यही, आठ–दस–बारह साल के होते हैं सब!

संकेतः और यही बच्चे इलेक्ट्रोप्लेटिंग भी करते हैं?

हमीदः (खाँसता है) जी, साहब! लेकिन वह काम अच्छा नही है।

संकेतः क्यों?

हमीदः साहब, उसमें तेज़ाब से हाथ जल जाता है। देखिए, मेरे हाथ भी जल गए हैं। बिजली का झटका लगना भी मामूली बात है।

संकेतः अरे, तुम्हारे हाथों का तो वाकई, बड़ा बुरा हाल है। ख़ालिद! क्या हाल कर दिया है तुम्हारे कारखाने ने बेचारे हमीद का! इतना जोख़िम भरा काम बच्चों को यूँ ही सौंप देते हो?

ख़ालिदः ताला बनाने वालों का दस्तूर ही कुछ ऐसा है!

संकेतः यह ताला बनाने वालों का दस्तूर नहीं है। यह उन लोगों का दस्तूर है जिनके दिल में दूसरों के लिए कोई रहम नहीं। जो बच्चों के बचपन का नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं। जिनकी आँखों में शर्म नहीं, जिनके दिमाग़ में कानून की इज़्ज़त नहीं। तुम सिर्फ़ अपना फ़ायदा देखते हो, देश, समाज, और दूसरों की परवाह नहीं करते। धिक्कार है! हम तुम्हारे साथ काम नहीं कर सकते!

ख़ालिदः बस करो, संकेत, बस करो! मेरी अक़्ल पर पड़ा ताला खुल गया है, मैं तुम्हारी बात समझ गया हूँ। मैं यह ग़लत तरीक़े बदल दूँगा। बच्चों को काम पर नहीं लगाऊँगा। कारखाने में हिफ़ाज़त का पूरा इंतज़ाम करूँगा। और फिर तुम्हारे पास दोबारा आऊँगा। बच्चो, मुझे माफ़ कर दो। मेरे ऑफ़िस आ कर तीन–तीन महीने के पैसे लो, और कल से यहाँ आने की बजाय स्कूल का रुख़ करो!

(बच्चे ख़ुशी से चिल्लाते हैं)

(संगीत)

नगीने *

(संगीत)

कनकः (गुस्से में पुकारते हुए) जीवन .... जीवन .... जीवन ....

जीवनः (घबराया हुआ) जी, मैडम साहब!

कनकः (गुस्से में) जीवन! तुम मेरे सेक्रेटरी हो या मैं तुम्हारी सेक्रेटरी हूँ? बोलो! चुप क्यों हो? आई ऐम योर सेक्रेटरी ऑर यू आर माई सेक्रेटरी?

जीवनः मैडम साहब! भला आप क्यों सेक्रेटरी होंगी! सेक्रेटरी तो मैं ही हूँ!

कनकः तो फिर ऐसा क्यों होता है, कि हर बड़े मौक़े की याद तुम मुझे नहीं दिलाते, मुझे तुम्हें याद दिलानी पड़ती है?

जीवनः सॉरी मैडम! क्या हो गया मैडम?

कनकः अगले हफ़्ते स्पेशल किटी पार्टी है! तुमने याद दिलाया?

जीवनः मुझे पता नहीं था, मैडम!

कनकः पता नहीं था तो मुझसे पूछ लेते कि मैडम, इस महीने की किटी पार्टीज़ का शिड्यूल क्या है! अब देखो! अगले शनिवार को पार्टी है। उसमें गिफ़्ट्स देनी होंगी। वरना सब कहेंगी, कनक कंजूस हो गई। पिछली बार सोने के ब्रेसलेट्स दिये थे। इस बार कोई जेम देना चाहिये।

जीवनः जेम, यानी रत्न, मैडम?

कनकः (लापरवाही से) हाँ, जेम! सोना तो कई लोग देते हैं। सोने के बिस्किट देना अच्छा नहीं लगता, और सोने के गहनों में मिलावट होती है। रत्न देने में ऐसी कोई परेशानी नहीं! जिसको जैसा मन करेगा, जड़वा कर पहन लेगी, या गिफ़्ट में दे देगी। इतनी बढ़िया बात मुझे पहले क्यों नहीं सूझी?

जीवनः मैडम साहब! आपका विचार तो सचमुच बहुत अच्छा है!

कनकः है न! ऊँ ... लेकिन कौन से नगीने दूँ?

जीवनः मैडम साहब! वैसे नगीने दीजिये जो आराम से मिल जाएँ, ताकि खोजने में ज़्यादा परेशानी न हो!

कनकः कैसी वाहियात बात कर रहे हो! अरे, भेंट दो, तो ऐसी दो जो कहीं और ढूँढे न मिले, कोई दूसरा दे न सके, और लेने वाला चकाचौंध रह जाए, समझे?

जीवनः जी मैडम, समझ गया!

कनकः तो, सवाल यह है कि नगीना दें कौन सा? अरे भाई, जीवन! एयर कंडीशनर तेज़ करो! इतनी गर्मी में पता नहीं कैसे रह लेते हो! हाँ! तो क्या दूँ ... क्या दूँ ... क्या दूँ ... क्या दूँ? जीवन! तुम किसी काम के आदमी नहीं हो! दूसरी मैडमों के सेक्रेटरी कितने सारे नाम बता देते इतनी देर में!

जीवनः (सकुचाते हुए) मैडम साहब! आप लाल दे सकती हैं!

कनकः लाल? लाल क्या?

जीवनः लाल, यानी रूबी! जिनसे बहुत प्यार हो, उन्हें लाल रंग की रूबी देनी चाहिये। कहते हैं कि लाल रत्न सूरज देवता से सम्बन्ध रखता है!

कनकः अच्छा! हाँ, रूबी तो सुंदर भी होती है! लेकिन, सब को रूबी दूँगी, तो बड़ा घिसा–पिटा लगेगा।

जीवनः मैडम साहब, आप पन्ना भी दे सकती हैं! नया घर बनाने पर, नया काम शुरू करने पर, या शादी होने पर हरे रंग का पन्ना दे सकते हैं। कहते हैं, पन्ने का सम्बन्ध बुध ग्रह से होता है!

कनकः पन्ना हरे रंग का होता है? कहीं तुम एमरैल्ड की बात तो नहीं कर रहे?

जीवनः जी, मैडम साहब! पन्ने को अंग्रेज़ी में एमरैल्ड ही कहते हैं।

कनकः हाँ! पन्ना भी अच्छी गिफ़्ट होगा! और कोई नगीना?

जीवनः वफ़ादारी और मानसिक शांति के लिये शनि का रत्न, नीलम या सफ़ायर ठीक रहता है, और, दूसरी तरफ़, लाल रंग का गार्नेट या रक्तमणि भी दिया जा सकता है।

कनकः तुम तो नगीनों के बारे में बहुत कुछ जानते हो! चलो, एक चिंता तो मिटी! कल ही ख़रीद लेते हैं!

जीवनः जी, मैडम साहब!

कनकः लेकिन, मैं अगर इन्हें यहाँ के जौहरी से ख़रीदूँगी, तो फिर दूसरे भी ख़रीद लेंगे! उन्हें अंदाज़ लग जाएगा कि मैंने कौन सा नग कितने रुपयों में ख़रीदा होगा।

जीवनः सो तो है, मैडम जी!

कनकः तो, फिर क्या करें, जीवन?

जीवनः मैडम साहब! क्यों न इन्हें सीधा थोक बेचने वालों से ख़रीदें?

कनकः हाँ, यह ठीक रहेगा! कहाँ मिलेंगे यह थोक बेचने वाले?

जीवनः मैडम साहब! उनके अलग–अलग शहर होते हैं। कहीं हीरा तराशने का काम ज़्यादा होता है, तो कहीं पन्ना चमकाने का!

कनकः ठीक है! ऐसा करो, तुम कल ही इन शहरों की ओर रवाना हो जाओ। वहाँ जा कर मुझे फ़ोन करो, दाम और क्वालिटी के बारे में।

जीवनः जी, मैडम साहब!

(संगीत)

(गाड़ियों का शोर)

जीवनः मैडम साहब के सामने तो मैंने बेलगाम हाँक दी, और उन्होंने मुझे यहाँ भेज भी दिया, लेकिन अब मैं क्या करूँ? सुबह–सुबह मैगज़ीन में जो कुछ पढ़ा था, ऊटपटांग उगल दिया, और उन्होंने भी सब सच समझ लिया! लेकिन अब बेटा जीवन, अपने जीवन की रक्षा चाहता है, तो बुद्धि का सहारा ले, वरना शाम को मैडम साहब को फ़ोन पर क्या बताएगा? ऐसा करता हूँ, कि टैक्सीवाले से पूछ कर चलता हूँ। इन लोगों को तो शहर के चप्पे–चप्पे की जानकारी होती है।

(संगीत)

जीवनः वह टैक्सीवाला बड़ा अच्छा था! उसने मुझे न सिर्फ़ यहाँ तक छोड़ा, बल्कि तुम्हें भी साथ कर गया। तुम यहाँ के रहने वाले हो, इसलिए तुम्हारे साथ जाने में आसानी होगी। क्या नाम है तुम्हारा?

अनवरः अनवर!

जीवनः अनवर तुम करते क्या हो?

अनवरः साहब! पहले मैं हीरे तराशता था। आँख ख़राब हो गई और अब तबीयत भी ठीक नहीं रहती, सो जो छोटा–मोटा काम मिल जाता है, वही कर लेता हूँ।

जीवनः वाह! तुम हीरे तराशते थे?

अनवरः जी! आप क्या करते हैं, साहब?

जीवनः मैं? मैं एक बहुत अमीर सेठ के घर नौकरी करता हूँ। सच कहूँ, तो सेठ की नहीं, सेठानी की नौकरी करता हूँ। मैं उनका सेक्रेटरी हूँ। इतनी दौलत है उनके पास, कि दोनों हाथों से लुटाएँ, तो भी ख़त्म नहीं होगी। उन्हीं के लिए नगीने देखने आया हूँ।

अनवरः तो इतनी दूर क्यों आए? अपने शहर के जौहरी से ले लिए होते!

जीवनः हमने सोचा कि जौहरी ख़ुदरा भाव पर गिने—चुने जवाहरात दिखाएगा, जबकि यहाँ ज़्यादा नगीने देखने को मिल जाएँगे, और वह भी थोक के भाव में!

अनवरः साहब! मेरे हिसाब से तो यहाँ नगों पर दरमियानी काम ही होता है।

जीवनः दरमियानी काम, मतलब?

अनवरः दरमियानी काम मतलब, पत्थर यहाँ आते हैं, उन्हें चुन कर, अलग—अलग तरीक़े से तराश कर, पॉलिश कर के जौहरियों के पास भेज दिया जाता है, जो उन्हें गहनों में जड़ते हैं। लेकिन, साहब! मुझे लालरत्न, रक्तमणि, मूँगा का यह लाल रंग उन पर मेहनत करने वालों के लहू की याद दिलाता है! हीरे की चमचमाहट यह याद दिलाती है कि उसे तराशने वालों की आँखें किस कदर कमज़ोर हो जाती हैं! पन्ने की हरियाली मज़दूरों में हर समय रहने वाली हरारत का एहसास दिलाती है! और, नीलम का नीलापन मायूस कर देता है कि ये मज़दूर नीले आसमान के नीचे कभी कोई ऐसा काम करने लायक़ नहीं रहेंगे जो उन्हें बिला जोख़िम दो वक़्त की रोटी अता कर सके!

जीवनः क्यों? ऐसी क्या ख़राबी है इन रत्नों में?

अनवरः ऐब इन जवाहरातों में नहीं है, उस तरीक़े में है, जिसे इख़्तियार कर पत्थर से हीरा बनाते हैं। देखेंगे?

जीवनः ज़रूर!

अनवरः तो, चलिए मेरे साथ!

(संगीत)

जीवनः अरे! यह कहाँ लिये जा रहे हो मुझे? कितनी गन्दी गली है, कीचड़ भरी!

अनवरः जब आपको ही यहाँ आने में घिन लग रही है, तो आपकी सेठानी तो शायद ख़्वाब में भी यहाँ का रुख़ न करें! लेकिन अपने बदन पर जिन लालो–जवाहर की नुमाइश करते वह अघाती न होंगी, उनकी पैदाइश इन्हीं गन्दी गलियों में बेतरतीब बने इन सीलन भरे मकानों में होती है।

जीवनः कितनी बदबू है यहाँ! दोनों तरफ़ नाला बजबजा रहा है! काला झाग भरा कीचड़ जमा है इसमें!

अनवरः घरों का कूड़ा हो, कारखानों का कचरा हो, या इंसानी मैला हो – सब कुछ इसी नाले की नज़र होता है। यह नाला ऐसे ही खुला रहता है। मक्खियाँ इस पर ऐसे ही भिनभिनाती रहती हैं। पीने के पानी के पाइप में इसकी गंदगी किसी न किसी सुराख़ से रिसती रहती है। और, इसी गंदगी के गिर्द मकानों में हीरे तराशे जाते हैं, उन्हें दो कौड़ी से सौ कौड़ी का बनाया जाता है!

जीवनः हीरा कैसे तराशते हैं, मैं देख सकता हूँ?

अनवरः साहब! हीरा तो हीरा होता है! वहाँ बाहर के आदमी को आने की इजाज़त नहीं देते।

जीवनः अनवर! तुम तो यहाँ काम कर चुके हो। तुम्हारी कुछ तो जान–पहचान होगी!

अनवरः मेरी जान–पहचान? अच्छा! उस मकान में चलते हैं। मेरी भांजी काम करती है वहाँ, सलमा! वहाँ कोशिश करते हैं। देखिए, सँभल कर, इधर गड्ढा है, उधर से आइए! हाँ, ऐसे!

जीवनः बाप रे! कीचड़ में कमल खिलता है, यह तो सुना था! लेकिन कीचड़ में हीरा बनता है, यह आज पहली बार देख रहा हूँ!

अनवरः पहुँच गए! (पुकारता है) सलमा! ओ सलमा! (साँकल खड़काता है)

सलमाः कौन?

अनवरः मैं, अनवर!

(दरवाज़ा खुलता है)

सलमाः मामूजान! आदाब, मामूजान!

अनवरः आदाब, सलमा! सलमा, यह जीवन साहब हैं। बाहर से तशरीफ़ लाए हैं।

जीवनः नमस्ते!

सलमाः नमस्ते, साहब! अंदर आइए!

जीवनः ओह!

अनवरः क्या हुआ साहब?

जीवनः मैं समझ रहा था कि अंदर बड़ा आधुनिक वातावरण होगा। एयरकंडीशंड जगह, मखमल से ढँकी टेबिल, टेबिल पर लैम्प और मशीनें, सामने आरामदेह कुर्सियाँ, नीचे कार्पेट, वर्दी पहने कर्मचारी। लेकिन यहाँ तो ज़मीन पर बैठ कर काम हो रहा है! और फ़र्श भी कैसा? गंदा! न जाने कैसा सफ़ेद पानी फैला है इस पर दूर तक। और वर्दी की जगह घरेलू कपड़ों में बच्चे बैठे हैं! पूरी जगह सीलन ही सीलन है।

अनवरः मैंने कहा था न आपसे! आपको इस जगह खड़ा रहना भी नागवार लग रहा है, लेकिन इन बच्चों को देखिए! सलमा दस साल की है, वह बच्चा सात साल से ज़्यादा का नहीं होगा, और वो दोनों भी

दस–बारह साल के मालूम होते हैं। इतने छोटे बच्चों को तो किसी के आने पर चौंकना चाहिए, लेकिन ये सिर झुकाए अपने काम में मशगूल हैं।

जीवनः हाँ! ऐसा क्यों?

अनवरः क्योंकि इन्हें दिहाड़ी नहीं मिलती। जितने पत्थर तराशे, उस हिसाब से पैसे मिलते हैं। वैसे यह बताऊँ, हमारी सलमा है बड़ी होशियार! सलमा, कुछ अच्छा काम दिखाओ!

सलमाः मामूजान! यह देखिए, सँभाल कर ...

अनवरः वल्लाह! क्या चीज़ है!

जीवनः क्या है? इतना छोटा कि उँगली का पोर उससे कई गुना बड़ा है। साँस छोड़ूँगा, तो यह उड़ जाएगा!

सलमाः यह आधे प्वाइंट का पत्थर है। इसे मैंने पचास तरफ़ से तराशा है।

जीवनः प्वाइंट क्या होता है?

अनवरः जवाहरात का वज़न कैरट में तौलते हैं। पाँच कैरट का एक ग्राम होता है, और एक कैरट में सौ प्वाइंट होते हैं।

जीवनः यानी, इस हीरे का वज़न एक ग्राम का हज़ारवाँ भाग है! वाह सलमा, तुमने तो कमाल कर दिया!

(सलमा हँसती है)

जीवनः सलमा! जैसे तुम पत्थरों को तराश कर हीरा बनाती हो, वैसे ही अपने दाँतों का भी ख़याल रखा करो। लगता है, जैसे सड़ रहे हों! इसी उम्र में दाँत गवाँ बैठोगी, तो उम्र भर दाँतों का काम आँतों से लेना पड़ेगा! (हँसता है)

सलमाः यहाँ का पानी और माहौल ही कुछ ऐसा है, कि सबके दाँत सड़ जाते हैं।

जीवनः यह तो बड़ी अजीब बात है।

अनवरः आपको अजीब ज़रूर लग रही है, लेकिन बात सच है। और, आपने बस दाँत देखे, बाल नहीं देखे? कैसे बदरंग बाल हैं सबके!

जीवनः वह तो यहाँ की गंदगी में हो गए हैं। धोने पर ठीक हो जाएँगे।

अनवरः नहीं! धोने पर भी उनका रंग वही रहेगा। यहाँ काम करने वालों के बाल बदरंग हो ही जाते हैं।

जीवनः (मच्छर मारता है) दिन में भी मच्छर काट रहे हैं!

सलमाः मच्छर तो दिन भर मंडराते है यहाँ! एक न एक बार सबको मलेरिया ज़रूर होता है। और मलेरिया न हो, तो भी सिर, कंधों, और पैरों में दर्द बराबर रहता है। पेट अलग ख़राब रहता है।

अनवरः और साहब! अगर यहाँ ज़्यादा दिनों तक काम किया जाए, तो टी बी हो जाती है।

जीवनः मेरी समझ में यह नहीं आता, कि जब आपको पता है कि यह जगह सेहत को घुन की तरह चाट जाती है, तो बच्चों को क्यों भेजते हैं यहाँ?

सलमाः साहब! यहाँ खाना मिलता है। रात में सोने को मिल जाता है। पैसे अलग मिलते हैं।

अनवरः हम ग़रीबों के लिए यह क्या कम राहत की बात है? फिर जो बच्चे यहाँ काम सीख लेते हैं, बाद में अच्छी रक़म कमा लेते हैं।

जीवनः ऐसा सोचना सरासर ग़लत है। तोता जब पिंजरे में रहता है, तो समझता है कि दुनिया पिंजरे जितनी ही बड़ी है। जब पिंजरे से छूटता है, तो उसे उसकी क्षमता और आकाश की ऊँचाई का पता चलता है। बच्चे

पढ़े–लिखेंगे, तो कहीं ज़्यादा बड़े काम कर सकेंगे, कहीं ज़्यादा सुख से ख़ुद भी रह सकेंगे, आपको भी रख सकेंगे। आप उनके सुनहरे भविष्य का गला क्यों घोंट रहे हैं? इसी को रोकने के लिए सरकार ने कानून भी बनाया है।

(फ़ोन बजता है)

जी मैडम साहब! नहीं मैडम! यहाँ ऐसा एक भी पत्थर नहीं जिसे भेंट में दे कर आपको गर्व हो। यहाँ जो असली नगीने हैं, वह इंसानी बच्चे हैं, जिन्हें तराशने की जगह उन पर धूल की पर्त चढ़ाई जा रही है! जी, मैं वापस आ रहा हूँ। जी, मैं आज ही वापस आ रहा हूँ!

(संगीत)

चूड़ियाँ *

अंक एक

(रेलगाड़ी के रुकने की आवाज़। चायवालों, कुली, पकौड़ेवालों, मैगज़ीनवालों इत्यादि की चिरपरिचित आवाज़ें। आवाज़े धीरे–धीरे कम होती हैं और अंत में समाप्त हो जाती हैं।)

कल्पनाः ट्रेन रुकी–सी मालूम पड़ रही है। कोई स्टेशन आया है क्या?

आकाशः अजी मेम साहब! आप जैसी एयरकंडीशंड डब्बों में चलनेवालों को कहाँ पता चले कि ट्रेन चल रही है या ठहरी हुई है। आपकी तो ट्रेन भी स्टेशन तक नहीं पहुँचती, स्टेशन ही ख़ुद–ब–ख़ुद आ जाते हैं।

कल्पनाः अच्छा जी! तो यह सलीका है नई–नवेली दुल्हन से बात करने का?

आकाशः नई–नवेली? मेरे विचार में तो हमारी शादी को महीनों गुज़र गए हैं!

कल्पनाः वाह रे भगवान! तेरी लीला अपरम्पार है। तूने मर्द नाम का एक प्राणी रच दिया।

आकाशः क्या मतलब? मैं ठीक ही तो कह रहा था कि हमारी शादी नई नहीं है, इसे छः महीने गुज़र चुके हैं।

कल्पनाः वही तो मैं समझा रही हूँ मेरे आका! ख़ैर, छोड़ो। कोई दूसरी बात करते हैं। अच्छा, यह बताओ कि अपनी नई गाड़ी कैसी चल रही है?

आकाशः नई वाली? फ़र्स्ट क्लास!

कल्पनाः हाँ, वैसे अभी तीन महीने ही तो हुए हैं उसे ख़रीदे। क्या लाइफ़ होगी उस गाड़ी की?

आकाशः आठ–नौ साल!

कल्पनाः ए आकाश! इन्सान की लाइफ़ क्या होगी?

आकाशः सत्तर–पचहत्तर साल, और क्या?

कल्पनाः हूँ! तो आठ–नौ साल की लाइफ़वाली गाड़ी तीन महीने तक नई रहती है, पर सत्तर–पचहत्तर साल की लाइफ़वाली लड़की, जिसके साथ तुम्हें पचास साल गुज़ारने हों, सिर्फ़ छः महीनों में पुरानी हो जाती है?

(आकाश झेंप कर हँसता है।)

कल्पनाः ख़ैर! यह बताओ कि यह स्टेशन कौन–सा है?

आकाशः यह स्टेशन है ... यह स्टेशन है ... यह स्टेशन है फ़िरोज़ाबाद!

कल्पनाः अरे, यहाँ तो प्लेटफ़ॉर्म पर चूड़ियाँ भी बिक रही हैं! ए आकाश, चलो, उतर लें, ज़रा अच्छी–अच्छी चूड़ियाँ ख़रीद लें!

आकाशः ट्रेन चलने का वक़्त हो रहा है कल्पना!

कल्पनाः नहीं, हम कुछ नहीं जानते! हमें तो बस चूड़ियाँ चाहियें!

आकाशः क्यों बच्चों–जैसी ज़िद पर उतर आती हो तुम कभी–कभी?

कल्पनाः तो, हम बच्चे नहीं हैं क्या? सिर्फ़ पच्चीस साल के ही तो हैं! ए आकाश, उतर लो न! फिर अगली ट्रेन से चले जाएँगे। नहीं तो, यहाँ से टैक्सी कर लेंगे! उतरो न!

आकाशः अच्छा बाबा! चलो, उतरो फटाफट! वह, उधर, वह बैग पकड़ लो। यह सूटकेस मैं लिए लेता हूँ।

(स्टेशन की आवाज़ें तेज़ हो उठती हैं। ट्रेन जाने की आवाज़।)

आकाशः लो, ख़रीदो चूड़ियाँ!

कल्पनाः अब, जब उतर ही गए हैं तो बाज़ार से चूड़ियाँ क्यों न लें? अच्छी–भी मिलेंगी, सस्ती भी!

आकाशः समझती नहीं हो! एक बैग तुम्हारे हाथ में, एक सूटकेस मेरे हाथ में। अब इन्हें टाँगे–टाँगे चूड़ियाँ ख़रीदें दुकान–दुकान जा कर? आदमी की जब तक शादी नहीं होती, अच्छा–ख़ासा समझदार रहता है। अपनी शामत बुलवानी हो तो, भाई साहब, कर लीजिए शादी! चलो, बाहर निकलें। चलो! अब बोल क्यों नहीं रही हो? हूँ? हाय राम, गुस्सा हो गई क्या? अरे कल्पो, मैं तो यूँ ही बोल रहा था!

कल्पनाः क्यों? तुमने तो अपनी शामत बुलवा ली है न मुझसे शादी करके? फिर मुझसे क्यों बात करना चाहते हो? मैं नहीं जाऊँगी। यहीं रहूँगी। मुझे नहीं ख़रीदनी चूड़ी–वूड़ी!

आकाशः अगर तुम सीधी तरह न उठीं तो फ़ायर बिग्रेडवालों को फ़ोन कर दूँगा!

कल्पनाः वह क्यों?

आकाशः वह इसलिए कि पानी की तेज़ धार जब सर पर पड़ेगी, तब सारा गुस्सा अपने–आप ठंडा हो जाएगा!

(दोनो हँसते हैं।)

आकाशः चलो, एक काम करते हैं। मेरे एक परिचित हैं यहाँ, मेहरा साहब! उनका शीशे का कारख़ाना है यहीं–कहीं। उनको फ़ोन करते हैं।

अंक दो

मेहराः चलिए भाभीजी, लीजिए, ठंडा लीजिए!

कल्पनाः थैंक यू!

मेहराः आप यहाँ आए, बहुत अच्छा किया जी! चलो, हमारा शो रूम देख लो। जो पसंद आए, ले लेना!

आकाशः चलिए!

कल्पनाः वाह! कितने सुदर शैंडेलियर्स हैं! कितने प्यारे लैम्प शेड्स हैं! और ये ग्लासेज? मन तो कर रहा है कि सब–के–सब उठा लूँ!

आकाशः और उन्हें गोद में ले कर बैठ जाऊँ ताकि सब झनझना के टूट जाएँ!

मेहराः अजी नहीं, ऐसा पैक कर देंगे कि टूटना क्या क्रैक तक नहीं आएगा! कहोगे तो भिजवा भी देंगे!

कल्पनाः मेरा मतलब वह नहीं था। मैं तो यह जानना चाहती थी कि जिन्होंने इन्हें बनाया होगा, वह कितने बड़े आर्टिस्ट होंगे?

आकाशः हाँ मेहरा साहब! इतनी सुंदर शक्ल अख़्तियार करने से पहले शीशा किन हालात से गुज़रता है ...

मेहराः अरे, आप तो शायरी करने लगे!

आकाशः तो चलिए न, ले चलिए हमें अपने दीवान में!

(सब हँसते हैं।)

मेहराः चलिए। ओह! कुछ कस्टमर्स आ गए। इफ़ यू डोन्ट माइन्ड तो मैं आपके साथ एक आदमी कर देता हूँ।

आकाशः हाँ हाँ, कोई बात नहीं!

(संगीत)

अंक तीन

(लोगों के बातचीत करने, ब्लोअर्स के चलने, कभी–कभी किसी चीज़ को ज़ोर से रखने की आवाज़।)

कल्पनाः उफ़! कितनी गर्मी है। यह लोग इतनी गर्मी में कैसे काम कर लेते हैं? अरे, वह सुन्दर–सा क्या है, ऑरेन्ज–ऑरेन्ज?

आकाशः वह नारंगी रंग पिघला हुआ काँच है, शीशा। अब यह नहीं मालूम कि वे दो लड़के उस गोले को डंडे में क्यों लपेटे हैं?

कर्मचारीः उधर मत जाइए मैडम! उधर फ़र्श पर काँच बिखरा है।

कल्पनाः यह लो! वे दोनो लड़के तो एक–दूसरे से उल्टी तरफ़ चलने लगे। वाह! उस गोले से मोटा–सा तार निकला और पतला होने लगा! जैसे नूडल्स बनते हैं!

कर्मचारीः यह बड़ा ख़तरनाक काम है मैडम! यह पिघला शीशा इतना गर्म होता है कि चमड़ी पर गिरने से पहले ही उसे जला देता है। इसकी बूँद हड्डी में सीधे सुराख़ कर देती है। वह तो यहाँ के कारीगर हैं जो यह काम कर लेते हैं।

कल्पनाः तो कोई जलता नहीं यहाँ?

कर्मचारीः जलते हैं, अक्सर जलते हैं।

कल्पनाः तब तो बड़ी मुश्किल होती होगी! काम रुक जाता होगा?

कर्मचारीः अरे नहीं, काम क्यों रुकेगा? इतने बच्चे हैं, आते रहते हैं। काम चलता रहता है।

आकाशः डोंट टेल मी! यह सब बच्चे हैं?

कर्मचारीः हाँ! बारह साल के, चौदह साल के! इसी उम्र से सीखते हैं ये। चूड़ियाँ तो और भी छोटे बच्चे बना लेते हैं!

कल्पनाः अच्छा? चूड़ियाँ कैसे बनाते हैं?

कर्मचारीः अब देखिए, वह गला शीशा जिसे दो लड़के खींच रहे थे, अब वह एक तार की शक्ल में ढल चुका है। अलग–अलग मोटाई के तारों से अलग–अलग चीज़ें बनती हैं। यह पतला तार हम चूड़ियाँ बनाने में इस्तेमाल करते हैं।

कल्पनाः आह! चूड़ियाँ! हम चूड़ियाँ बनती देखेंगे!

कर्मचारीः आप तो यहीं परेशान हो गईं, वहाँ तो और ज़्यादा परेशान हो जाएँगी।

आकाशः अरे नहीं, चूड़ियों के चक्कर में ही तो हम अपना सफ़र आधा छोड़ कर आए हैं! चूड़ियाँ तो बनती ज़रूर देखेंगे।

कर्मचारीः वहाँ तो मैं नहीं जा पाऊँगा। आप को इस लड़के के साथ भेज देता हूँ।

(संगीत)

<u>अंक चार</u>

कल्पनाः एँह हें, कितनी गंदी गली है, पानी से पचपचाई हुई!

आकाशः और उसी में दो गाएँ भी खड़ी हैं। देखो, सँभालना, कहीं मार न दे!

कल्पनाः बाप रे! अब इसी में यह हाथगाड़ी भी खड़ी है।

आकाशः इसी में तो चूड़ियाँ हैं! अरे भाई, रुकोगे कि चलते ही रहोगे?

बच्चाः बस! वह आगे तीन गलियों के बाद घर है।

कल्पनाः तो, चूड़ियाँ क्या घरों में बनती हैं?

बच्चाः हाँ, बहुत से घरों मे चूड़ियाँ बनती हैं।

आकाशः तुम भी बनाते हो?

बच्चाः नहीं! मैं तो यहाँ कारख़ाने में काम करता हूँ न! मेरी बहन बनाती है।

कल्पनाः तुम कारख़ाने में काम करते हो? और, यह तुम्हारे मुँह पर चकत्ते कैसे हैं?

बच्चाः चकत्ते?

कल्पनाः हाँ, चकत्ते! तुम्हारे मुँह–हाथ–पैरों पर यह दाग़ कैसे हैं?

बच्चाः वह! छींटा पड़ने से जल जाता हूँ, तो दाग़ पड़ जाते हैं।

कल्पनाः लेकिन तुम्हारी बहन को तो आराम है! अपना काम, अपनी कमाई!

बच्चाः बस! अब उन सीढ़ियों पर चढ़ कर ऊपर चली जाइएगा। मैं जाता हूँ, वरना कारख़ाने में परेशानी होगी।

आकाशः ठीक है।

(सीढ़ियाँ चढ़ने की आवाज़।)

कल्पनाः बड़ा अँधेरा है इन सीढ़ियों पर, और अंदर भी।

वंदनाः कौन?

कल्पनाः अरे, यहाँ तो कोई है!

वंदनाः आपलोग कौन हैं? आपके आने से हम चौंक गए और काम ख़राब हो गया।

कल्पनाः यह औरत इस पीली–सी रोशनी वाले लैम्प पर झुक कर क्या कर रही है?

आकाशः चूड़ियाँ बना रही है शायद।

कल्पनाः ऐसे? खिड़कियाँ बन्द कर के? यहाँ कितनी गर्मी है! हवा का एक झोंका तक नहीं।

वंदनाः हम चूड़ियाँ ऐसे ही बनाते हैं।

कल्पनाः खिड़कियाँ बन्द कर के?

वंदनाः खिड़कियाँ ही नहीं, दरवाज़े भी बन्द कर के। अभी पता नहीं कैसे खुला रह गया था।

आकाशः गर्मी नहीं लगती आपको?

वंदनाः गर्मी की परवाह करें या दिहाड़ी की?

कल्पनाः दिहाड़ी मतलब?

आकाशः हर दिन के काम पर मिलने वाले वेतन को दिहाड़ी कहते हैं। लेकिन, यह चूड़ियाँ आप अपने लिए नहीं बनातीं?

वंदनाः (हँसती है) अपने लिए? अपने लिए तो हम यह काम कभी न करें! यह तो हम अपने परिवार के लिए करते हैं।

कल्पनाः हाँ, परिवार चलाने के लिए कुछ–न–कुछ तो करना ही पड़ता है!

आकाशः दरअसल, हमें मेहरा साहब की फ़ैक्ट्री से एक लड़का लाया है। उसकी बहन भी चूड़ियाँ बनाती है।

कल्पनाः हम समझे कि हम उसकी बहन के पास ही आए हैं। आप उसकी रिश्तेदार हैं?

वंदनाः हम उसकी बहन ही हैं!

आकाशः लेकिन, वह तो बड़ा छोटा–सा लड़का था!

वंदनाः हमारी कितनी उम्र समझ रहे हैं आप?

आकाशः यही, कोई पच्चीस–छब्बीस साल!

वंदनाः (हँसती है) हम अभी चौदह साल के भी नहीं हुए हैं। यह जो आपके साथ आई हैं, इनसे बस पाँच–छः साल छोटे होंगे हम।

आकाशः हे भगवान, परिस्थितियाँ आदमी पर कैसा असर दिखाती हैं! एक तरफ़ तो तुम हो कल्पना – सामान्य जीवन जीती पच्चीस साल की एक महिला, जिसे बीस साल का समझा जा रहा है ...

कल्पनाः और दूसरी तरफ़ है चौदह साल से भी छोटी यह बच्ची, जो अभी से पच्चीस की मालूम होती है!

आकाशः ऐसी जगह काम करती है जहाँ दम घुटता है! वह भी, घंटों, लैम्प पर झुके हुए, हवा की जगह किरासन तेल का धुँआ साँसों में भरती।

वंदनाः इस काम को करने वाली लड़कियाँ जवान नहीं होतीं। बस, बूढ़ी हो जाती हैं। साँसों की बीमारी, आँखों की कमज़ोरी, रीढ़ का दर्द लिए।

वंदनाः तो यह काम करती ही क्यों हो? कुछ और करतीं!

वंदनाः क्या करते? हमें और कुछ आता ही नहीं। कुछ सिखाया ही नहीं गया कभी।

आकाशः फिर भी, यह तो बच्चों के खेलने, पढ़ने के दिन हैं। काम करने की ऐसी क्या ज़रूरत पड़ गई?

वंदनाः ज़रूरत काम करने की नहीं पड़ी थी साहब, काम करने की नहीं पड़ी थी! ज़रूरत पड़ी है पैसों की। पैंतीस साल की हमारी माँ दीमक लगी लकड़ी की तरह खोखली हो गई है। बिना सहारे के चल भी नहीं सकती। हमारा बाप हर समय खाँसता है। उसके हाथ–पैर सीधे नहीं रह पाते। साहूकार का कर्ज़ अदा करना, दो वक़्त की नहीं, तो एक वक़्त की ही सही, रोटी का इन्तज़ाम करना – इसके लिए पैसे तो चाहियें न? हमारे स्कूल जाने से पैसे थोड़े–ही न आ जाते?

कल्पनाः लेकिन तुम और तुम्हारा भाई जो यह काम कर रहे हो, इसमें तो आगे जा कर तुम्हारा भी वही हाल होगा – वही बीमारियाँ, वही लाचारी, वही बेसमय का बुढ़ापा।

वंदनाः तो क्या करें? आत्महत्या कर लें?

कल्पनाः नहीं, पर कोई तो हल होगा?

आकाशः हाँ, कोई तो हल होगा, बल्कि है! मुझे विश्वास है कि एन्सीएल्पी की कोई–न–कोई शाखा यहाँ भी होगी।

वंदनाः एन्सीएल्पी? यह एन्सीएल्पी क्या है?

आकाशः एन्सीएल्पी यानी नॅशनल चाइल्ड लेबर प्रॉजेक्ट। तुम जैसे बच्चों की सहूलियत के लिए ही तो सरकार ने यह प्रॉजेक्ट बनाया है, जहाँ पढ़ाई, पौष्टिक आहार, आर्थिक ज़रूरतों, सेहत जैसी तमाम चीज़ों का ख़याल रखा जाता है। इसके अलावा कई ग़ैर सरकारी संस्थाएँ भी मदद करती हैं बाल मज़दूरों की।

वंदनाः यानी हम जैसे बच्चों के लिए भी कहीं कोई भविष्य है, कोई आशा है।

कल्पनाः वैसे भी, चौदह साल से कम उम्र के बच्चों का काम करना तो बिलकुल ग़ैर कानूनी है।

वंदनाः हम कल ही, बल्कि आज ही घर लौटने से पहले एन्सीएल्पी का पता करेंगे। आपके आने पर हमारे हाथ काँपे ज़रूर थे, चूड़ी ख़राब ज़रूर हुई थी, पर हमारा जीवन सँवरने की उम्मीद बँध गई!

कल्पनाः आकाश, चलें! ट्रेन पकड़नी है।

(संगीत)

अंक पाँच

आकाशः तो, मेहरा साहब, चलें हम!

मेहराः भाभीजी, यह क्या? आपलोग ऐसे ही जा रहे हैं? सेवा का कोई मौक़ा ही नहीं दिया?

कल्पनाः जी, कहीं देर न हो जाए!

मेहराः अरे, नहीं होगी देर! कुछ तो लीजिए! और कुछ नहीं तो चूड़ियाँ–ही सही! दिखाऊँ?

कल्पनाः नहीं, चूड़ियाँ नहीं!

मेहराः सोचिए, बग़ैर चूड़ियों की खनखनाहट के सुबह कैसी होगी!

कल्पना, आकाशः अब ऐसी ही सुबह होगी!

(संगीत)

कला *

कलाः (इठलाते हुए)

चिड़ियाँ करती है चीं चीं
गैया करती बाँय बाँय
पेड़ पे बैठा कौआ पूछे
किसको खाएँ, किसको खाएँ!

चिड़ियाँ करती है चीं चीं
गैया करती बाँय बाँय
पेड़ पे बैठा कौआ पूछे
किसको खाएँ, किसको खाएँ!

चिड़ियाँ करती है चीं चीं

अम्मा, खाना दो न! भूख लगी है।

अम्माः बस! थोड़ी देर और।

कलाः अम्मा! क्या पका रही हो?

अम्माः रागी।

कलाः (ठुनकते हुए) क्या अम्मा! आज भी रागी बना रही हो, कल भी रागी बनाया था, परसों भी रागी बनाया था, रोज़–रोज़ रागी बना देती हो! (लाड़ से) कुछ और क्यों नहीं बनातीं, अम्मा?

अम्माः कला बेटी! हम ग़रीब हैं। रागी से ही पेट भर लेते हैं, यह क्या कम है? बहुत लोगों को तो रागी भी नसीब नहीं होती।

कलाः (भोलेपन से) जब उनको रागी भी नहीं मिलती, तब वे लोग क्या खाते हैं?

अम्माः कुछ नहीं खाते! भूखे ही सो जाते हैं।

कलाः (सोचते हुए) अम्मा! तुम झूठ बोलती हो कि हम ग़रीब हैं। सब घरों में तो छोटे–छोटे बर्तनों में खाना पकता है। हमारे घर में तो इतने बड़े बर्तन में खाना पकता है जी! (ख़ुशी से) हम तो अमीर हैं, हम तो अमीर हैं!

अम्माः धत्, बुद्धू! हमारे घर में बड़े बर्तन में खाना इसलिए पकता है क्योंकि हमलोग बहुत सारे हैं। छोटे बर्तन में इतने लोगों का खाना नहीं अँटेगा।

कलाः (हैरानी से) हमलोग बहुत सारे हैं? कैसे?

अम्माः गिन, कितने हैं हमलोग?

कलाः अच्छा, गिनती हूँ। (इठलाते हुए) एक हुए अप्पा, एक हुई अम्मा, एक भाई रामन, दूसरा भाई लक्ष्मण, तीसरा भाई मुरुगन, चौथा भाई केसवन, एक बहन पार्वती, एक बहन ज्योति, एक जीजी अशोकन, एक भांजा सुंदरम ... दस लोग हैं हम!

अम्माः हुँह! (नक़ल उतारते हुए) दस लोग हैं हम! और तू नहीं है क्या? पूरे ग्यारह लोग हैं हम!

कलाः अरे, हाँ! हम तो ग्यारह हैं। हम ग्यारह लोग तो एक कमरे में रहते हैं। लेकिन ऐश्वर्या बताती थी, कि अमीर लोगों के घर में बहुत सारे कमरे होते हैं।

अम्माः होते होंगे, बेटी।

कलाः तो अम्मी, अमीर लोगों के घर में तो और भी ज़्यादा लोग रहते होंगे?

अम्माः धत्, पगली! जैसे–जैसे दौलत पास आती है, लोग दूर होते जाते हैं। सब अलग–अलग जगह चाहते हैं। सुना है कि अमीर होते ही एक ही शहर में दो सगे भाई भी अलग–अलग मकानों में रहने लगते हैं।

कलाः छिः! मैं तो कभी तुमसे अलग नहीं रहूँगी।

अम्माः मत रहना! तू भी अपने पति और बच्चों के साथ इसी कमरे में डेरा जमा लेना।

कलाः (ख़ुशी से) अहा! मैं अम्मा–अप्पा के साथ रहूँगी, मैं अम्मा–अप्पा के साथ रहूँगी! अम्मा! तुम तो खेत में मज़दूरी कर के दो घंटा पहले ही आ गई। अप्पा अबतक क्यों नहीं आए?

अम्माः उनका ठेकेदार ज़्यादा कड़क है। उस पर तबीयत भी ढीली मालूम पड़ती है उनकी। आते ही होंगे। लो, आ गए! (पति से) आ गए जी? तुम्हारी लाड़ली तुम्हारे ही बारे में पूछ रही थी। (चिंता से) यह क्या? यह कैसी सूरत बनाए हुए हो? तबीयत तो ठीक है न? हे भगवान! तुम्हारा शरीर तो तप रहा है। (उल्टी करने की आवाज़) ओह! यह तो ख़ून है। तुम ख़ून की उल्टी कर रहे हो! आराम करो।

माधवनः उल्टी करने के बाद आराम हुआ है। कई दिनों से ऐसा ही चल रहा था। तुमको नहीं बताता था। लेकिन आज तो ज़रा–सा भी काम नहीं हो सका। ठेकेदार ने कल से काम पर आने से मना कर दिया है।

अम्माः कोई बात नहीं। भगवान बहुत बड़ा है। कहीं और काम मिल जाएगा तुम्हें। चलो! मुँह धो कर आओ, खाना लगाती हूँ।

माधवनः अच्छा, कुएँ पर जाता हूँ हाथ–मुँह धोने।

अम्माः (धीमे से) कला! तू भी साथ जा तो! देख, कोई ज़रूरत हो तो दे देना।

कलाः अच्छा, अम्मा। जाती हूँ। चिड़ियाँ करती हैं चीं चीं, गैया करती बाँय (चिल्ला कर) अम्मा! अम्मा! अप्पा बेहोश हो कर गिर गए ... अम्मा! (रोती है)

(संगीत)

<u>अंक दो</u>

बासप्पाः (दक्षिण भारतीय लहजे में) देको अम्मा। अम तुमारा बात समज गया। तुमारा पति बीमार, अमको बउत दुक। माधवन अमारा बाई जैसा। लेकिन अम क्या करे?

अम्माः अन्ना! दया करो। दवा के बिना मेरा पति मर जाएगा। पाँच हज़ार रुपए दे दो।

बासप्पाः अम्मा! तुम बड़ा बोला। पइसा पेड़ पे नईं उगना। अम बी गरीब। अम बैंक से पइसा लाना, सबको देना।

अम्माः तो हमारे लिए भी बैंक से पैसा ला दो, अन्ना! तुम्हारे पैर धो कर पियूंगी।

बासप्पाः लेकिन, पइसा देने के बदले बैंक को कुच गारंटी होना। तुम क्या देना?

अम्माः हमारा घर है न! वह दे दूँगी।

बासप्पाः वो गर! उसको गर बोलते क्या? एक कमरा, उसमें तुम दस–पंदरा लोग जानवर की तरह रहना!

कलाः तुम ही जानवर की तरह रहते होगे!

अम्माः चुप कर, कला! अन्ना! मेरे पास तो बस, वह एक घर ही है!

बासप्पाः वो गर का अम क्या करना? उसका बदले पइसा नईं मिलना। तुमारा गर बेकार ओना।

कलाः तुम्हारा ही घर बेकार होगा!

बासप्पाः अम्मा! समजाना अपनी चोकरी को, नईं तो यहाँ से जाना!

अम्माः नहीं नहीं, अन्ना! तुम देवता हो। सबकी मदद करते हो। (रोती है) मेरी झोली में भी कुछ डाल दो। मेरे सुहाग की क़सम है तुमको!

बासप्पाः अच्चा, अच्चा! पइर से उटना, पइर से उटना! कसम दिला के तुम मुश्किल में डालना। देको अम्मा! बैंक तुमको पइसा नई देना। अम तुमको अपना तरफ़ से जादा से जादा तीन अजार रुपया देना, लेकिन एक शर्त पर! मंजूर ओना, तो बोलना!

अम्माः मुझे तुम्हारी हर शर्त मंजूर है। लेकिन अन्ना! पाँच हज़ार रुपए चाहियें। दवा बड़ी मँहगी है, और बहुत दिनों तक खानी पड़ेगी।

बासप्पाः देको अम्मा! अमसे जितना ओना, अम करना। तुमको जादा पइसा मंगना, तो किसी दूसरा मुदाली के पास जाना।

अम्माः मैं ग़रीब अनपढ़ किसके पास जाऊँगी? मैं तो तुम्हीं को जानती हूँ।

बासप्पाः तो, तीन अजार मिलना। बोलो, चाहिए?

अम्माः हाँ अन्ना! चाहिए।

बासप्पाः तो इस कागज पर अंगूटा लगाना। अम तुमको तीन अजार रुपया देना, तुम अमको रोज बस पाँच रुपया देना। जिस दिन पूरा तीन अजार रुपया देना, पाँच रुपया देना बंद!

अम्माः अन्ना! एक बार फिर समझाना!

बासप्पाः ओफ़–ओह! कितना गँवार ओना! सीदा बात बी नईं समजना। देको, अम तुमको तीन अजार रुपया देना। तुम आज पाँच रुपया देना, कल पाँच रुपया देना, परसों पाँच रुपया देना। रोज पाँच रुपया देना! ये

रुपया सूद में जाना। जिस दिन तुम अमको तीन अजार रुपया एक साथ देना, उस दिन तुमारा कर्ज उतरना। जब तक तीन अजार रुपया एक साथ नईं देना, सूद का पाँच रुपया रोज देना।

अम्माः लेकिन, मैं रोज़ पाँच रुपये कैसे दूँगी, अन्ना? हमारे घर में तो कुल तीस रुपये थे, जिन्हें ख़र्च करके कला के अप्पा को अस्पताल ले गए।

बासप्पाः अम्मा! बगवान बउत बड़ा ओना। वो परेशानी देना, तो परेशानी का इलाज बी देना। तुमारा ये लड़की, कला, कितना बड़ा ओना?

अम्माः कला दस–ग्यारह साल की है।

बासप्पाः बस! कला को सेट के पास बेजना, बीड़ी रोल करने को। छे–सात साल का बच्चा ए–वन बीड़ी रोल करना! कला तो इतना बड़ा। आराम से करना। खूब पइसा कमाना। अमको रोज पाँच रुपया देना। बाकी से माधवन को मक्कन किलाना!

अम्माः अच्छा! लेकिन, कला से हो पाएगा?

कलाः अम्मा! मुझसे हो जाएगा। मैं नहीं करूँगी, तो अप्पा के इलाज के लिए पैसा कैसे मिलेगा? मैं कर लूँगी!

बासप्पाः शाब्बास! कला, तुम कल सुबा साड़े छे बजे मेरे पास आना। और अम्मा, तुम ये पूरा तीन अजार रुपया लेना।

अम्माः (ख़ुशी से) भगवान तुम्हारा भला करें अन्ना! (चौंक कर) पाँच रुपये कम हैं अन्ना?

बासप्पाः आज का सूद नईं देना क्या, अम्मा?

<u>अंक तीन</u>

कलाः (उत्साह से) अम्मा! अप्पा! मैं तैयार हो गई हूँ बासप्पा मुदाली के पास जाने के लिए!

अम्माः अरी, ठहर! उसने तो साढ़े छः बजे बुलाया था। अभी तो साढ़े पाँच भी नहीं बजे होंगे।

कलाः अम्मा! मैं जितनी जल्दी जाऊँगी, जितनी जल्दी पैसे कमाऊँगी, बासप्पा मुदाली का कर्ज़ उतनी जल्दी वापस होगा। अप्पा! तुम चिंता मत करना। घर पर आराम करना।

माधवनः हाँ, हाँ, आराम ही करूँगा। ठीक से जाना बेटी। ठीक से जाना!

कलाः हाँ, अप्पा! (धीमी होती आवाज़) चिड़ियाँ करती है चीं चीं, गैया करती बाँय बाँय, पेड़ पे बैठा कौआ पूछे, किसको खाएँ, किसको खाएँ!

अंक चार

सेठः देख, छोकरी! यह काम बड़ी होशियारी का है। इन लोगों को देख। कैसे सफ़ाई से एक–एक पत्ता उठाते हैं, उसको मोड़ते हैं, और फिर धागा बाँधते हैं। सब बीड़ियाँ नीचे से पतली, ऊपर से मोटी! सबकी लम्बाई एक जैसी। जा, बैठ जा उस पेड़ के नीचे, और काम शुरू कर!

कलाः जी, बैठती हूँ! (हँसती है) यह पत्ता तो हाथ में ही नहीं आता, फिसल–फिसल जाता है। उँह! कितनी बदबू है इसमें! उबकाई आती है। इन लोगों को देखो! कैसे सर झुकाए फटाफट बीड़ी बाँध रहे हैं! बीड़ी बाँधते हैं, नीचे गिराते हैं, दूसरा पत्ता उठाते हैं, बीड़ी बाँधते हैं, नीचे गिराते हैं।

सेठः ए छोकरी! भुनुर–भुनुर क्या कर रही है? ठीक से काम कर। दिनभर में दो हज़ार बीड़ियाँ बाँधनी होंगी। दिन में दो बजे से सवा दो बजे तक खाने की छुट्टी होगी। हर दस दिन पर पूरे एक दिन की छुट्टी! दो हज़ार बीड़ियाँ रोज़ बाँधी, तो हफ़्ते में अस्सी रुपये मज़दूरी मिलेगी। इन सबको पता है। तू नई है, इसलिए बता रहा हूँ! समझ गई? अब काम कर!

कलाः जी। (स्वगत) हफ़्ते में अस्सी रुपये। बासप्पा को एक दिन में दिए पाँच रुपये। दो दिन में देंगे पाँच–पाँच दस रुपए। हफ़्ते में देंगे ... हफ़्ते में कितने रुपये देंगे? पता नहीं। घर जा कर पूछूँगी। जीजा पढ़ा–लिखा

नहीं है, लेकिन इतना हिसाब लगा लेगा। ज़रूर पैसे बचेंगे, और हम बासप्पा का कर्ज़ उतार देंगे!

अंक पाँच

अम्माः उठ, कला! काम पर नहीं जाना?

कलाः अम्मा! कितना गंदा काम है। हर समय तम्बाकू की बदबू आती है। दिन भर सर झुकाए–झुकाए गर्दन में दर्द हो गया है। पैर और उँगलियाँ अलग दुखती रहती हैं।

अम्माः बेटी! तेरे अप्पा मज़दूरी कर पाते, तो तुझे न जाना पड़ता। अब, जब तक कर्ज़ नहीं उतरता, जाना तो पड़ेगा ही न?

कलाः लेकिन जीजा तो कहता था कि उसके दोस्त के अप्पा ने भी पाँच हज़ार रुपया कर्ज़ लिया था। कर्ज़ चुकाने के लिए उसका दोस्त सात साल की उम्र से बीड़ी बाँधने लगा। दोस्त ने सतरह साल काम किया, लेकिन कर्ज़ उतरने की जगह बढ़ कर चौदह हज़ार रुपये हो गया!

अम्माः जीजा यह भी तो कह रहा था कि बासप्पा मुदाली ने हम पर रहम कर के बहुत कम ब्याज पर कर्ज़ दिया है। जा बेटी, जा!

अप्पाः जा, बेटी। मैं ठीक हो कर फिर से काम करने लगूँगा, तब तुझे नहीं जाना पड़ेगा। जा!

अंक छः

(ट्रक रुकने, दरवाज़ा बंद होने की आवाज़)

राजिन्दरः ओ भाई सेठ जी! आ गया राजिन्दर! गले को, फेफड़े को, और जिस्म को बरबाद करने वाली तुम्हारी धौंकनी बीड़ी ट्रक में ले जाने के लिए!

सेठः अरे, क्या अनाप–शनाप बकते हो! जानते हो, बीड़ी सिर्फ़ भारत में ही नहीं, अमरीका में भी पी जाती है।

राजिन्दरः अच्छा! पानी के साथ पीते हैं या सोडा के साथ?

सेठः मज़ाक नहीं कर रहा। पिछले साल दस करोड़ बीड़ियाँ अमरीका भेजी गईं।

राजिन्दरः ओ सेठ! अमरीका दी गल छड! चल, मेरी ट्रक में माल लदवा, ताकि मैं चलूँ! अरे, ये बीड़ी बँधवाने का काम भी यहीं करवाने लगे?

सेठः काम थोड़ा फैल गया है न, इसलिए।

कलाः (दुःख से) चिड़ियाँ करती है चीं चीं, गैया करती बाँय बाँय, पेड़ पे बैठा कौआ पूछे, किसको खाएँ, किसको खाएँ!

सेठः (मारता है) काम–धाम साढ़े बाइस, जब देखो सुब्बुलक्ष्मी की तरह राग अलापती रहती है! मुँह ऊपर कर, मुँह ऊपर उठा! हाँ, अब नीचे कर। देख! तेरी ठुड्डी और गले के बीच अभी ये जो माचिस की डिबिया फँसाई है मैंने, यह शाम तक नहीं गिरनी चाहिए। उधर डिबिया गिरी, और इधर तेरी पीठ पर मेरी चप्पल चली, समझी?

राजिन्दरः हाय हाय, तुम आदमी हो या कसाई? छोटी बच्ची के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं? कितना अच्छा गा रही थी!

सेठः राजिन्दर! मेरे धंधे में दख़ल न दे। इतना ही प्यार उमड़ रहा है, तो दे तीन हज़ार रुपये, और आज़ाद करा ले इस छोकरी को।

राजिन्दरः आज़ाद करा ले? तो, क्या ये ग़ुलाम है तुम्हारी?

सेठः हाँ, ये सब ग़ुलाम हैं मेरे! मैंने इन सबको पैसे दिए हैं। किसी का बाप मर रहा था, किसी का घर बह गया था, किसी पर कोई और विपत्ति आ गई थी। पैसे लेते समय तो सब दुम हिलाते आ गए! अब काम लेता हूँ, तो क्या गुनाह करता हूँ?

राजिन्दरः बच्चों से जबरन काम लेते हो, और पूछते हो कि क्या गुनाह करता हूँ? मुझे सब पता है, तुम और तुम्हारे दलाल साल में तीन सौ

फ़ीसदी पर कर्ज़ देते हो, ताकि कोई चुका ही न सके। इन लोगों के अनपढ़ होने का नाजायज़ फ़ायदा उठा कर जो चाहे लिखते हो, और कागज़ पर अंगूठा लगवाते हो।

सेठः राजिन्दर! तू ट्रक ड्राइवर है, और ट्रक ड्राइवर ही बना रह! अपनी औकात समझ!

राजिन्दरः औकात ही तो समझानी है!

अंक सात

अम्माः बेटी! अब तो तू झटपट तैयार हो जाती है। न गर्दन में दर्द होता है, न पैर में, न उँगलियों में!

कलाः अम्मा! उस दिन सरदारजी पता नहीं किन लोगों को ले कर आए। सेठ और बासप्पा मुदाली को पुलिस पकड़ कर ले गई। मेरा स्कूल में नाम लिखवा दिया। स्कूल जाने में दर्द कैसा? मैं चली स्कूल, अम्मा! (धीमी होती आवाज़) चिड़ियाँ करती है चीं चीं, गैया करती बाँय बाँय, पेड़ पे बैठा कौआ पूछे, किसको खाएँ, किसको खाएँ!